संक्षिप्त
जैन महाभारत

प्रोफेसर प्रकाश चन्द्र जैन

प्रस्तुत कृति का संयोजन तीन महत्त्वपूर्ण पुराणों पांडव पुराण (श्रीमद् भट्टारक शुभचंद्र स्वामी), हरिवंश पुराण (आचार्य श्री जिनसेन स्वामी), उत्तर पुराण (आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी) के आधार पर किया गया है। इस संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त सारवान कृति को विद्वान लेखक ने 21 अध्यायों में संजोया है। जिससे यह कृति गागर में सागर उक्ति को चरितार्थ करती है।

प्रस्तुत कृति में भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ मुनिसुव्रतनाथ एवं नेमिनाथ के जीवन चरित्र के साथ ही कौरवों, पाण्डवों, नारायण श्री कृष्ण एवं बलभद्र बलदेव के जीवनवृत्त पर भी विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत की गई है। वसुदेव, प्रद्युन्न, गुरु द्रोण एवं गांगेय आदि जैसे पात्रों के जीवन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। एक पठनीय एवं संग्रहणीय कृति।

—आचार्य अशोक सहजानन्द
अध्यक्ष : स्वाति अकादमी, दिल्ली-53
ashok.sahajanand@gmail.com

संक्षिप्त
जैन महाभारत

लेखक
प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन

केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट
दिल्ली-110053

प्रकाशक
केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट
बी-5/263, यमुना विहार, दिल्ली-110053
मो. : 8010339910
e-mail : ashok.sahajanand@gmail.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित
I.S.B.N. 81-85781-87-7
संस्करण : प्रथम, 2014
मूल्य : 350 रु.

मुद्रण व्यवस्था एवं वितरण
मेघ प्रकाशन
239, गली कुंजस, दरीबाकलां, चांदनी चौक, दिल्ली-110006
मो. : 9811532102
e-mail : meghprakashan@gmail.com
website : www.meghprakashan.com

SANCHIPT JAIN MAHABHARAT
By Prof. Prakash Chandra Jain

संत शिरोमणि

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज
आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज
आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज एवं
मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी महाराज
जैसे महामुनियों के
पावन चरणों में
सादर समर्पित है
यह कृति

— प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन
टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपनी बात

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में जैन साहित्य के तीन पुराणों से सामग्री प्राप्त की गई है। लेखक इन तीनों पुराणों के लेखकों, अनुवादकों आदि की विस्तार से जानकारी देना अपना परम कर्तव्य समझता है एवं उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

पांडव पुराण के लेखक श्रीमद् भट्टारक शुभचंद्र स्वामी हैं। इस महापुराण की रचना विक्रम संवत् 1608 की भाद्र शुक्ल दोज को राजस्थान प्रांत के बागड़ क्षेत्र के सागवाड़ नगर के श्री आदिनाथ दिगंबर जैन मंदिर में पूर्ण की गई। वे लिखते हैं कि मूलसंघ में पद्मनंदी नाम के आचार्य हुए। फिर उसके पश्चात् क्रमशः सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति आचार्य हुए। तदुपरांत चन्द्रसूरि एवं विजयकीर्ति आचार्य हुए। उन्हीं के पद-चिन्हों पर चलने वाले सर्वश्रेष्ठ श्रीमद् भट्टारक शुभचन्द्र हुए। इन्हीं यतीन्द्र शुभचन्द्र जी ने पाण्डव पुराण की रचना की। यह पुराण मूल रूप में पद्य रूप में है। इसी पुराण का लोकप्रिय नाम जैन महाभारत भी है। श्री शुभचन्द्राचार्य के ब्रह्मचारी शिष्य श्रीपाल थे। यह बड़े ही प्रतिभाशाली, विद्वान, तर्कशास्त्री व शुद्धा-शुद्धियों के पूर्ण ज्ञाता थे। इन्हीं श्रीपाल महोदय ने पाण्डव पुराण का परिमार्जन कर यह अर्थ युक्त आदर्श भाषा टीका लिखी। पाण्डव पुराण की जिस प्रति का लेखक ने सहारा लिया है, उसके संपादक श्री नन्दलालजी जैन विशारद हैं। इस प्रति का प्रकाशन जैन साहित्य सदन, श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिर, चांदनी चौक, दिल्ली से हुआ है। पुराण के अंत में पुराण के मूल लेखक अपनी लघुता प्रकट कर लिखते हैं कि मैं उन साधु पुरुषों का आह्वान करता हूं; जिनका स्वभाव इस ग्रंथ के दोषों का परिमार्जन कर अन्य को भी संतोष प्रदान करने का है। वे लिखते हैं कि शास्त्रों की दृष्टि से जो अशुद्धियां इस पुराण में रह गई हों; विज्ञजन उन्हें उदारता पूर्वक सुधार लें।

दूसरे पुराण 'हरिवंश पुराण' के मूल कर्ता आचार्य

श्री जिनसेन महाराज थे। पुराण के अंत में लिखा है कि शक संवत् 705 में जब उत्तर दिशा में इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा में कृष्णराज पुत्र श्रीबल्लभ, पूर्व दिशा में अवन्तिराज एवं पश्चिम दिशा में वीरजय वराह का शासन था, तब वर्धमानपुर में नन्न राजा द्वारा बनाये गये श्री दिगम्बर पार्श्वनाथ जिनालय में इस पुराण की रचना हुई। इस पुराण का शेष बचा भाग दोस्तटिका नगरी के श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिनालय में पूर्ण हुआ। पुन्नाट संघ के श्री जिनसेन कवि ने इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ का हिन्दी रूपान्तरण डॉ. पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य ने किया। इस ग्रंथ के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 683 तक गौतम गणधर से लेकर लोहाचार्य (विक्रम संवत् 213) तक की आचार्य परम्परा श्रुतावतार आदि अनेक ग्रंथों में मिलती है। इसके बाद की अविछिन्न आचार्य परम्परा केवल इसी ग्रंथ में निम्नानुसार उपलब्ध हैं–

आचार्य श्री विनयधर, श्रुतगुप्ति, ऋषिगुप्ति, शिवगुप्त, मन्दरार्य, मित्रवीर्य, वलदेव, वलमित्र, सिंहवल, वीरवित, पदमसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदंड, नन्दिसेण, दीपसेन, धरसेनाचार्य, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिसेण, ईश्वरसेन, नन्दिसेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेण, जयसेन, अमितसेन, कीर्तिसेण व आचार्य जिनसेन स्वामी (हरिवंश पुराण के कर्ता विक्रम संवत् 840)।

डॉ. पन्नालालजी जैन के अनुसार हमें तीन हरिवंश पुराण मिलते हैं–

1. अपभ्रंश में जिसके रचियता महाकवि श्री रइधू हैं 'कुरवाई जिनालय' में इसकी प्रति है (बीना के पास) जिला सागर।

2. संस्कृत में ब्रह्मचारी जिनदास का हरिवंश पुराण– 'भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में इसकी प्रति स्थित है।'

3. हरिवंश पुराण आचार्य श्री जिनसेन स्वामी रचित, संस्कृत में– इसे संस्कृत कथा साहित्य में तीसरा स्थान प्राप्त है।

आचार्य श्री जिनसेन जो हरिवंश पुराण के कर्ता हैं; वे महापुराण आदि के कर्ता आचार्य जिनसेन स्वामी से भिन्न हैं।

आप पुन्नाट संघ के थे। पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है। इस हरिवंश पुराण में प्रधानतः 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन है। यह तथ्य प्रत्येक सर्ग के अंत में लिखे 'इति अरिष्टनेमि पुराण संग्रह' से सिद्ध है। इस प्रति को भारतीय ज्ञानपीठ के सौजन्य से जैन साहित्य सदन, लाल मंदिर, चांदनी चौक दिल्ली से प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ में आठ अधिकार हैं– 1. लोक के आकार का वर्णन, 2. राजवंशों की उत्पत्ति, 3. हरिवंश का अवतार, 4. वसुदेव की चेष्टाओं का कथन, 5. नेमिनाथ चरित्र, 6. द्वारिका निर्माण, 7. युद्ध का वर्णन एवं 8. नेमिनाथ भगवान का निर्वाण।

ग्रंथानुसार राजगृही नगरी को यहां स्थित पांच पर्वतों के कारण पंचशैलपुर भी कहा जाता है। इस नगरी के पूर्व में ऋषि गिरि, दक्षिण में तिकोने आकार के वैभार व विपुलाचल पर्वत, दक्षिण-पश्चिम में वलाहक पर्वत जो डोरी सहित धनुषाकार पर्वत है, तथा उत्तर-पूर्व दिशा में पाण्डुक पर्वत स्थित है, जो गोलाकार है। श्री वासुपूज्य तीर्थंकर को छोड़कर शेष सभी तीर्थंकरों के समवशरण इस नगरी के पर्वतों पर आये थे, जिससे ये सभी पर्वत अत्यन्त पवित्र हैं। यह नगरी तीर्थंकर श्री मुनिसुब्रतनाथ की जन्मभूमि भी है। ग्रंथानुसार एक बार भगवान महावीर स्वामी के राजगृही पर्वत पर आये समवशरण में वहां के राजा श्रेणिक ने गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम से हरिवंश के बारे में जानने की जिज्ञासा प्रकट की थी–तब भगवान ने अपनी दिव्य देशना के माध्यम से हरिवंश के बारे में बतलाया था, जिसे श्री गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को विस्तार से हरिवंश के बारें में उनकी जिज्ञासा को शांत किया था।

तीसरा पुराण उत्तर पुराण है; जिसे आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी ने लिखा है। ये आचार्य श्री जिनसेन स्वामी के शिष्य थे। इस पुराण के लेखन का काल 897 ईस्वी है। इस पुराण में हरिवंश, कुरूवंश एवं यदुवंशों का विवरण निहित है। इन वंशों की वंशावली प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव के

कुछ समय बाद से प्रारंभ होती है, जो अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के काल तक चलती है। इन वंशों में कौन-कौन से महापुरुष-तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्री, बलभद्र, नारायण एवं प्रतिनारायण हुए, उनका विवरण भी इन वंशों के प्रमुख नरेशों के साथ दिया गया है।

कौरव एवं पाण्डव भाई-भाई थे; किन्तु राज्य-लिप्सा के मोह ने कौरवों को किस प्रकार अंधा बना दिया। उन्होंने पाण्डवों का भी राज्य हस्तगत करने के लिये कौन-कौन से हथकंडे अपनाये। उसका विवरण भी इस पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है। पाण्डवों ने किस प्रकार धर्मबुद्धि पूर्वक कौरवों के अत्याचारों को सहन किया एवं अपनी बात एवं सत्य पर कायम रहकर जंगलों व नगरों में भटक-भटक कर किस प्रकार अनेक दु:ख खुशी-खुशी सहन किये, इस बात को भी पुस्तक में रखने का प्रयास किया गया है। अंत में जब कौरवों की ओर से अति हो गई तो किस बहादुरी के साथ पाण्डवों ने कौरवों व उनके पक्ष की विशाल सेनाओं का सामना कर उन्हें विश्व के सबसे बड़े युद्ध में कैसे पराजित किया, उस युद्ध का विवरण भी विस्तार से इस पुस्तक में दिया गया है।

इसके अलावा इस पुस्तक में उपरोक्त वंशों में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों—भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, मुनिसुव्रतनाथ एवं नेमिनाथ इत्यादि के जीवन के बारे में भी विशिष्ट सामग्री की प्रस्तुति देने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ प्रमुख पात्रों एवं स्त्री-पुरुष क्रीड़ा के आठ रूपों का वर्णन भी है— भुजाओं का गाढ़-आलिंगन, चुम्बन, चूसण, दंशण, कण्ठ ग्रहण, केशग्रहण, नितम्ब स्फालन व अंग-प्रत्यंग का स्पर्श।

इसमें गांगेय/भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन के जीवन चरित्र पर तो प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही नारायण श्रीकृष्ण एवं बलभद्र बलदेव के चरित्र को भी ग्रंथों के आधार पर चित्रित करने का भरपूर प्रयास किया गया है।

इस ग्रंथ में लेखक का कुछ भी अपना नहीं है। उसे जो उपरोक्त तीनों पुराणों से मिला, उसी के आधार पर इस संक्षिप्त जैन महाभारत को लेखक ने अपनी शैली में लिखकर प्रबुद्ध वर्ग के सामने रखने का एक लघु प्रयास किया है। फिर भी यदि प्रबुद्ध पाठकों को इस रचना में कुछ खामियां एवं अशुद्धियां दृष्टिगोचर हों, तो उनके विचार सादर आमंत्रित हैं, ताकि उसे अगले संस्करण में सुधारा जा सके।

अंत में लेखक आदरणीय श्री दशरथ जैन, पूर्व मंत्री-मध्यप्रदेश शासन एवं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी जैन के प्रति आभार व्यक्त करता है; जिन्होंने लेखन कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हमें अपना सहयोग प्रदान किया है। अन्त में लेखक केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट दिल्ली के संस्थापक एवं अध्यक्ष अशोक सहजानन्द जी एवं व्यवस्थापक श्री मेघराज जी का हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता है, जिन्होंने बहुत सुन्दर रूप में पुस्तक का प्रकाशन किया है। जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में ट्रस्ट का कार्य निश्चय ही अभिनंदनीय है।

– प्रो. प्रकाश चंद्र जैन
नूतन विहार कॉलोनी
टीकमगढ़ (म.प्र.)

अनुक्रम

1.	कुरूवंश, हरिवंश व यदुवंश की उत्पत्ति	13
2.	बसुदेव का नगर–त्याग व पुनर्मिलन	35
3.	कंस जन्म	43
4.	पाण्डु व धृतराष्ट्र विवाह तथा कौरवों, पाण्डवों का जन्म	47
5.	एकलव्य की गुरु–भक्ति	60
6.	कृष्ण जन्म व लीलायें तथा कंस–वध	63
7.	तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म	71
8.	कृष्ण का विवाह	75
9.	लाक्षाग्रह का जलना व पाण्डवों का बचकर निकलना	80
10.	कौरव पाण्डवों का पुनर्मिलन तथा अभिमन्यु–जन्म	95
11.	द्यूत–क्रीडा में पाण्डवों की हार तथा द्रौपदी चीरहरण	97
12.	पांडवों का अज्ञातवास व कीचक–मरण	102
13.	प्रद्युम्न की लीलायें	112
14.	कृष्ण–दूत का दुर्योधन के पास जाना व विदुर की मुनि दीक्षा	116
15.	कुरूक्षेत्र का युद्ध – महाभारत	118
16.	द्रौपदी का हरण व वापिसी	155
17.	महाबली नेमिनाथ का वैराग्य	159
18.	तीर्थंकर नेमिनाथ को केवलज्ञान प्राप्ति व धर्मोपदेश	163
19.	द्वारिका का भस्म होना	169
20.	पांडवों का वैराग्य व मोक्षगमन	174
21.	तीर्थंकर नेमिनाथ का मोक्ष कल्याणक	177

कुरूवंश, हरिवंश व यदुवंश की उत्पत्ति

हम इस पुस्तक का प्रारंभ पांडव पुराण में वर्णित कुछ उद्धरणों से करते हैं। पांडव पुराण के प्रारंभ में उल्लेख है कि कथायें 4 प्रकार की होती हैं–

1. जिस कथा के श्रवण से रागभाव कम हों, उसे संवेगनी कथा कहते हैं।
2. जिस कथा में धर्म का वर्णन हो, धर्म के फल का वर्णन हो, तथा जिसमें वैराग्य का भी वर्णन हो, उस कथा को निर्वेगनी कथा कहते हैं।
3. उचित तर्क–वितर्कों द्वारा मिथ्या–मतों के खंडन करने वाली कथा को आक्षेपनी कथा कहते हैं।
4. जिस कथा के कहने व सुनने मात्र से ज्ञान का विकास हो, जिस कथा में रत्नत्रय धर्म का समर्थन किया गया हो तथा जिसमें मिथ्यात्व का खंडन हो; ऐसी कथाओं को विक्षेपणी कथा के नाम से जाना जाता है।

पुराण प्रारंभ में लिखता है कि जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्य खंड के विदेह क्षेत्र में कुंडलपुर नगर में नाथ वंश के नरेश सिद्धार्थ का शासन था। उनकी महारानी का नाम त्रिशला देवी था। इन्हें प्रियकारिणी के नाम से भी संबोधित किया जाता था। त्रिशला देवी के गर्भ में स्वर्ग से चयकर जब तीर्थंकर महावीर स्वामी पधारे; तो स्वर्ग से आई 56 देव कुमारियां उनकी सेवा करती थीं। गर्भ धारण करने पर माता त्रिशला ने सुन्दर 16 स्वप्न देखे थे। उन स्वप्नों का फल अपने भर्तार से जानकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं थीं। इन्हीं के गर्भ से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन तीन ज्ञान के धारी तीर्थंकर बालक महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। दूसरे दिन चतुर्दशी को इन्द्र–इन्द्राणी देवताओं के साथ तीर्थंकर बालक को सुमेरू पर्वत पर अभिषेक हेतु ले गये। जहां सभी ने तीर्थंकर बालक का जन्माभिषेक उत्सव बड़े ही धूमधाम से

मना कर उनका नाम वर्धमान रखा। 30 वर्ष की आयु में लौकांतिक देवों ने आकर वर्धमान स्वामी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तब वर्धमान पालकी में सवार होकर दीक्षा वन चले गये व केशलौंच कर निर्ग्रंथ दशा को प्राप्त कर वे चार ज्ञान के धारी बन गये। बारह वर्ष तक उन्होंने तप किया। तत्पश्चात जृम्भिका ग्राम में ऋजुकूला नदी के किनारे एक शिला पर ध्यानस्थ होकर चार घातिया कर्मों का नाश कर वैसाख सुदी दशमी के दिन वे केवलज्ञानी बन गये। बाद में वे मगध देश के राजगृही नगर स्थित विपुलाचल पर्वत पर पधारे, जहां इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। इसके मध्य में विराजमान होकर केवली भगवान महावीर स्वामी ने मुनि व श्रावक धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने कहा– मुनियों के ममता भाव नहीं होता। वे निर्ग्रन्थ व निष्परिग्रही होते हैं। उन्होंने श्रावक धर्म के 4 भेद बतलाये–

1. **शील**– ब्रह्मचर्य ही शील है। आत्मा का यही सत्य स्वभाव है। इसके पालने से अन्यान्य व्रतों की रक्षा होती है व अन्यान्य गुण स्वतः प्राप्त होते हैं।
2. **तप**– पांचों इंद्रियों को वश में करना तप कहलाता है। यह तप बाह्य व अभ्यंतर के भेद से छह-छह प्रकार का होता है।
3. **दान**– दान चार प्रकार का होता है। दान उत्तम, मध्यम, व जघन्य पात्रों को मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक दिया जाता है।
4. **भावना**– जैनधर्म के सिद्धांतों का अध्ययन व मनन करने को भावना कहते हैं। इससे आत्म बल की वृद्धि होती है।

विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर स्वामी का पुनः समवशरण आने पर राजगृही नरेश महाराजा श्रेणिक ने भगवान की वंदना व स्तुति करने के उपरांत ऋद्धिधारी गणधर गौतम स्वामी से पूछा–हे दयानिधे, मैं कुरूवंश के दीपक पांडवों के चरित्र को सुनने व जानने की इच्छा रखता हूँ। तब भगवान की दिव्य देशना खिरनी प्रारंभ हुई। तभी उस वाणी

को धारण कर गौतम स्वामी बोले, हे श्रेणिक ध्यानपूर्वक सुनो–

भगवान श्री ऋषभनाथ ने जगत प्रसिद्ध कुरूवंश में उत्तम लक्षणों के धारक दो श्रेष्ठ राज्यों की स्थापना की; जिनके अधिपति क्रमशः राजा सोम व राजा श्रेयांस थे। राजा सोम की पत्नी का नाम लक्ष्मीमति था। वे कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर के शासक थे। जब भगवान आदिनाथ ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली, तब वे एक बार आहार चर्या हेतु हस्तिनापुर नगर पधारे; जहां राजा सोम व श्रेयांस ने पूर्व जन्म की आहार चर्या का स्मरण कर उन्हें नवधाभक्ति पूर्वक आहार दान दिया। वैसाख सुदी तृतीया को ये आहार दान दिया गया था। आहार दान के प्रभाव से उनके यहां पांच आश्चर्य हुए तथा वे अक्षयनिधि के स्वामी बन गये। तभी से संपूर्ण भारतवर्ष में वैसाख सुदी तृतीया का दिन अक्षय–तृतीया पर्व के नाम से मनाया जाता है। राजा सोम के जयकुमार नाम का प्रतापी पुत्र था। उनके विजय आदि 14 पुत्र और थे। जयकुमार ऋषभ पुत्र भरत के प्रधान सेनापति थे। राजा सोम वैराग्य धारण कर मुनि बन गये। इसके पूर्व उन्होंने अपना राज्य जयकुमार को दे दिया था। बाद में राजा सोम गहन तपश्चरण कर मोक्ष पधारे।

उसी समय काशी देश की वाराणसी नगरी में राजा अकंपन राज्य करते थे। उनकी धर्मपरायणा रानी का नाम सुप्रभा था। इन दोनों के 1000 पुत्र व 2 पुत्रियां थीं। एक का नाम सुलोचना व दूसरी का नाम लक्ष्मीमति था। एक बार राजा अंकपन ने अपनी बड़ी पुत्री सुलोचना के लिए प्रथम बार स्वयंवर का आयोजन किया। उस स्वयंवर में अनेक देशों के नरेश व राजपुत्र आये थे। इसी स्वयंवर में भरत के पुत्र अर्ककीर्ति व राजा सोम पुत्र जयकुमार भी उपस्थित थे। सुलोचना ने इस स्वयंवर में जय कुमार के गले में वरमाला डालकर उनको वरण किया; पर यह बात भरत पुत्र अर्ककीर्ति को नागवार गुजरी; जिससे अर्ककीर्ति ने क्रोधित होकर राजा अकंपन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु जयकुमार ने राजा

अकंपन का साथ देकर अर्ककीर्ति को शीघ्र ही बंदी बना लिया। बाद में जयकुमार अपने पुत्र अनंतवीर्य को राज्य देकर मुनि बन गये व भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ) के 71वें गणधर बन गये।

इस प्रकार राजा सोम व श्रेयांस दान तीर्थ के प्रवर्तक, राजा अकंपन स्वयंवर विवाह विधि के प्रवर्तक व भगवान ऋषभदेव मोक्षमार्ग के प्रवर्तक बने। जयकुमार घोर तपश्चरण कर उसी भव से मोक्ष गये व रानी सुलोचना भी आर्यिका बनकर तपश्चरण कर अच्युत स्वर्ग में देव हुईं।

राजा अनंतवीर्य के बाद कुरू वंश में कुरूचंद्र, शुभंकर, धीर, वीर, धृतिंकर, धृतदेव, गुणदेव व धृतिमित्र राजा हुए। तत्पश्चात सुप्रतिष्ठ, भ्रमघोष, हरिघोष, हरिध्वज, रविघोष, महावीर्य, पृथ्वीनाथ, प्रभु, गजवाहन, विजय आदि राजाओं ने हस्तिनापुर का राजपाट संभाला। तत्पश्चात चतुर्थ चक्रवर्ती सनतकुमार, सुकुमार, वीरकुमार, विश्व, वैश्वनर, विश्वध्वन, वृहत्केतु वहां के राजा बने। तत्पश्चात वहां का राज्य राजा विश्वसेन ने संभाला। आपकी धर्मपरायणा पत्नी का नाम ऐरादेवी था। भाद्रकृष्ण सप्तमी को 16वें तीर्थंकर, जो पांचवें चक्रवर्ती व बारहवें कामदेव भी थे, माँ ऐरादेवी के गर्भ में आए। वही शान्तिनाथ भगवान बने।

इसी समय विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के नगर रथनुपूर में ज्वलनजटी का शासन था। इसकी पुत्री का विवाह जिसका नाम स्वयंप्रभा था, पोदनपुर नरेश प्रजापति पत्नी मृगावती के पुत्र त्रिपृष्ठ से हुआ था। त्रिपृष्ठ नारायण था व उसका भाई विजय बलभद्र था।

भगवान शान्तिनाथ जन्म के पूर्व पांचवें भव में अमिततेज नाम के नरेश थे। अमिततेज का जीव मरकर रतिचूलक देव बना व विजय बलभद्र मरकर उसी स्वर्ग में मणिचूलक देव बनें। वहां से चयकर प्रभाकारी नरेश स्तमित सागर के यहां रानी वसुंधरा के उदर से अमिततेज का जीव अपराजित नाम के बलभद्र के रूप में जन्मा व उसी राजा की रानी अनुमति के गर्भ से विजय बलभद्र का जीव अनंतवीर्य नाम के

नारायण के रूप में जन्मा। यहां से मरण कर अनंतवीर्य तो प्रथम नरक गये व अपराजित अच्युत स्वर्ग में इन्द्र बने। बाद में विजय के जीव ने नरक से निकलकर व्योम बल्लभ नगर के राजा मेहवाहन पत्नी मेघमालिनी के घर पुत्र के रूप में जन्म लिया। उनका नाम मेघनाद रखा गया।

उधर अमिततेज का जीव अच्युत स्वर्ग से चयकर रत्नसंचपुर नरेश श्री क्षेमंकर के यहां बज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। मेघनाद मरण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र बना तथा वहां से चयकर इन्हीं क्षेमंकर नरेश के यहां सहस्त्रायुध नामक पुत्र के रूप में जन्मा। बाद में क्षेमंकर महाराज ने बज्रायुध को राज्य दे दिया तथा वे तपश्चरण कर मोक्ष चले गये। बाद में अमिततेज का जीव बज्रायुध व विजय का जीव सहस्त्रायुध भी मुनि बन गये, समाधिमरण कर अघोर विमान में उत्तम देव हुए। बाद में अमितगति का जीव जो बज्रायुध था, विमान से चयकर पुंडरीकनी नगरी के राजा घनरथ के यहां मेघरथ नाम का पुत्र हुआ तथा विजय का जीव जो सहस्त्रायुध था, इन्हीं नरेश के यहां मनोरमा रानी के उदर से जन्म लेकर द्रढरथ नाम के पुत्र के रूप में जन्मा। बाद में मेघरथ का विवाह प्रियमित्रा व मनोरमा से तथा द्रढरथ का विवाह मनमोहनी व सुमति नाम की कन्याओं से हुआ। पर बड़े होने पर अपने पिता केवली धनरथ के उपदेश सुनकर दोनों विरक्त हो गये। उन्होंने बड़े पुत्र मेघसेन को राज्य का भार सौंप दिया। दोनों मुनि घोर तत्पश्चरण कर सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में इन्द्र, प्रतीन्द्र बने। मेघरथ का जीव जो पूर्व भव में अमितगति था, सर्वार्थ सिद्धि देवलोक से चयकर कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नरेश महाराज विश्वसेन के घर महारानी ऐरादेवी के गर्भ में पधारे, जहां गर्भ के 6 माह पहले से ही वहां दैवीय रत्नों की वृष्टि हो रही थी। जन्म के बाद सौधर्म इन्द्र उस नन्हें बालक को सुमेरू पर्वत की पांडुक शिला पर ले गया; जहां उसने देवी-देवताओं के साथ भक्तिभाव पूर्वक 1008 कलशों से तीर्थंकर बालक का अभिषेक किया व नृत्योत्सव कर

जन्मोत्सव मनाया व उनका नाम श्री शान्तिनाथ रखा। बाद में शान्तिनाथ जी ने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया।

राजा विश्वसेन की दूसरी रानी यशस्वती के गर्भ से द्रढरथ का जीव– जो पहले विजय का जीव था–स्वर्ग से चयकर जन्म लेकर चक्रायुध पुत्र के रूप में जन्मा। बाद में यही चक्रायुध भगवान शान्तिनाथ के गणधर बने। एक बार दर्पण में मुख देखने पर चक्रवर्ती शान्तिनाथ को वैराग्य हो गया। वे मुनि बनकर घोर तपश्चरण करने लगे। आपको प्रथम आहार दान शिवमंदिरपुर नरेश सुमित्र ने दिया था। 16 वर्ष तपश्चरण के बाद पौष शुक्ल दशमी को उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई व ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को सम्मेदाचल पर्वत से उन्होंने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया। आपकी समवशरण सभा में 36 गणधर उपस्थित रहते थे। आप कुरूवंश के शिरोमणि थे। चक्रायुध ने भी बाद में तपश्चरण कर मोक्षलक्ष्मी का वरण किया।

कुरूवंश में तीर्थंकर शान्तिनाथ के पश्चात् उनके पुत्र श्री मन्नारायण हस्तिनापुर के महाराजा हुए। इनके पश्चात् फिर क्रमशः शान्तिवर्धन, शान्तिचंद्र, चंद्रचिह्न व कुरु नरेश हुए। कई पीढ़ियों पश्चात् इसी वंश में महाप्रतापी शूरसेन नरेश हुए। उनकी धर्मपरायणा स्त्री का नाम श्रीकांता था। सवार्थसिद्धि देवलोक से चयकर आपकी कोख में 17वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ के रूप में पधारे। आप भगवान शान्तिनाथ की भांति ही कामदेव व चक्रवर्ती भी थे। आप श्रावण कृष्ण दशमी को माता के गर्भ में आए। आपका जन्म वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को हुआ। अन्य तीर्थंकर भगवंतों की भांति आपका जन्माभिषेक भी इन्द्रों ने पांडुक शिला पर ले जाकर वहां 1008 कलशों से अभिषेक कर मनाया। किन्तु राज्यारोहण के अनेक वर्षों के पश्चात् पूर्व भव स्मरण से आपको वैराग्य हो गया। आप 6 दिवस पश्चात् आहार ग्रहण करते थे। धर्ममित्र नाम के श्रावक ने सर्वप्रथम आपको खीर का आहार दान दिया था; जिससे उसके घर पंच-आश्चर्य हुए थे। मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात्

आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई तथा आप संपूर्ण लोक के 100 इन्द्रों से पूजित त्रिलोकीनाथ बन गये। आपके समवशरण में हमेशा 35 गणधर, 60000 यतीश्वर व 60300 आर्यिकायें उपस्थित रहकर धर्माराधना करते थे। आपने सम्मेद शिखर पर्वत से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को सकल कर्मों का नाश कर मोक्षलक्ष्मी का वरण किया।

चक्रवर्ती व तीर्थंकर कुंथुनाथ भगवान के पश्चात् कुरूवंश में अनेक राजा-महाराजा हुए। तत्पश्चात सुदर्शन नाम के महापराक्रमी नरेश हुए। उनकी भार्या का नाम महारानी मित्रसेना था। आपके ही गर्भ में फाल्गुन शुक्ल तृतीया को एक महाप्रतापी बालक आया। उसका जन्म अगहन शुक्ल चतुर्दशी को हुआ। इस तीर्थंकर बालक का जन्मोत्सव भी इन्द्र ने सभी देवी-देवताओं के साथ तीर्थंकर बालक को पांडुक शिला पर ले जाकर वहां 1008 कलशों से अभिषेक कर मनाया व उनका नाम अर/अरहनाथ रखा। राज्यभार ग्रहण करने के बाद आपने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। कई सौ साल बाद आपको अकस्मात् संसार से विरक्ति उत्पन्न हो गई, अतः आपने अपने ज्येष्ठ पुत्र अरविंद को राज्य का भार सौंपकर वैजयंती नामक पालकी से दीक्षा वन जाकर पंचमुष्टि केशलौंच कर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। आपने अगहन शुक्ल दशमी को दीक्षा ग्रहण की। आप मनःपर्ययज्ञानी हो गये। घोर तपश्चरण कर 16 वर्ष पश्चात् सकल घातिया कर्मों का नाश कर कार्तिक शुक्ला द्वादशी को आपको आम्र वृक्ष के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात कुबेर रचित समवशरण में विराज कर वर्षों तक आपने संसारी जीवों के कल्याण हेतु धर्मोपदेश दिया। तथा अंत में सम्मेदाचल पर्वत में सकल कर्मों का नाश कर आपने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया। आप अठारहवें तीर्थंकर के साथ-साथ चक्रवर्ती व कामदेव भी थे।

अरहनाथ चक्रवर्ती के बाद उनके पुत्र अरविंद कुरूवंश के शासक बने। उसके बाद शूर, पद्मरथ, रथी, मेघरथ राजा बने। मेघरथ की धर्मपरायणा स्त्री रानी पदमावती थी। पदमावती

के दो पुत्र थे। बड़े का नाम विष्णु व छोटे का नाम पदमरथ था। जब राजा मेघरथ व विष्णु ने जिन दीक्षा धारण कर ली; तो कुरूवंश के अगले शासक पदमरथ बने। उस समय उज्जैन में महाराजा श्रीवर्मा का राज्य था। उनके मंत्रियों में प्रमुख मंत्री बलि, बृहस्पति, प्रहलाद व नमुचि थे। इसी समय 700 मुनियों के साथ आचार्य श्री अकंपन महाराज उज्जैन पधारे। जब उज्जैन नरेश श्रीवर्मा अपने सभासदों के साथ मुनिसंघ के दर्शनों को गये; तो ध्यानस्थ होने के कारण उन्होंने राजा आदि को आशीर्वाद नहीं दिया। तब चारों मंत्रियों ने उन मुनिश्वरों को ढोंगी वृषभ–तुल्य कहा। उसी समय संघ के एक मुनि श्री श्रुतसागर महाराज उन्हें आते दिखे; जिन्हें मंत्रियों आदि ने युवा वृषभ कहकर उनका मजाक उड़ाया। इससे वाद-विवाद व बाद में शास्त्रार्थ छिड़ गया। उन मुनिश्वर ने विद्वता के अभिमानी उन मंत्रियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया व आचार्य श्री के पास आकर इस संपूर्ण घटना के बारे में उन्हें बता दिया। बाद में गुरु आज्ञा पाकर श्रुतसागर महाराज विवाद के स्थान पर आकर ध्यानस्थ हो गये। रात्रि में एकांत पाकर उन चारों मंत्रियों ने श्रुतसागर महाराज पर शस्त्राघात करना चाहा; पर वे चारों मंत्री वहीं स्तंभित हो गये। जब प्रातःकाल यह समाचार उज्जैन नरेश श्रीवर्मा को मिला, तो उन्होंने उन चारों मंत्रियों के सिर के बाल मुंडवाकर, गधे पर बिठाकर अपने राज्य से उन्हें निष्कासित कर दिया।

यही निष्कासित मंत्री घूमते-फिरते हस्तिनापुर पहुँच गये। वहां अपनी वाक्य पटुता व चतुराई से इन चारों निष्कासित मंत्रियों ने हस्तिनापुर नरेश को प्रभावित कर मंत्री पद प्राप्त कर लिया। इस समय राजा पद्मरथ वहां के नरेश थे। कुछ समय पश्चात् जब शत्रु राजा ने हस्तिनापुर पर आक्रमण किया, तो उन मंत्रियों में से बलि नाम के मंत्री ने अपने युद्ध कौशल से युद्ध में शत्रु राजा को पराजित कर बंदी बना लिया और महाराज पद्मरथ को सौंप दिया। महाराज पद्मरथ इस विजय से एवं बली के कार्य से अत्यन्त संतुष्ट हुए

तथा बलि से वरदान मांगने को कहा। तब बलि ने कभी आवश्यकता पड़ने पर सात दिन के लिए राज्यभार देने का वर मांगा; जिसे महाराज पद्मरथ ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दैवयोग से अकंपनाचार्य महाराज का 700 मुनियों का संघ विहार कर कुछ दिनों बाद हस्तिनापुर आया व वहां चातुर्मास की स्थापना कर ली। स्थापना के पूर्व आचार्य श्री ने सभी मुनियों को किसी भी वाद-विवाद में न पड़ने का निर्देश दिया। जब मंत्री बलि को उस संघ के आगमन के बारे में मालूम चला; तो उसने उज्जैन की घटना का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से राजा पद्मरथ से अपना उधार वर मांगा व उनसे सात दिवस का राज्य का अधिकार ले लिया। बाद में उसने पुराने वैर के वशीभूत होकर सभी मुनि संघ को सेना से घेर लिया व मुनि संघ के चारों ओर यज्ञ के बहाने अग्नि प्रज्जवलित कर उसमें दुर्गंधित वस्तुयें होमकर मुनि संघ को दारुण कष्ट देना प्रारंभ कर दिया। इस अत्याचार से द्रवित होकर महान ऋद्धियों के धारी मुनि श्री विष्णुकुमार धर्म वात्सल्य से प्रेरित होकर राजकाज से दूर निर्लिप्त राजा पद्मरथ के पास गये व मंत्री बली के अत्याचारों के बारे में उन्हें बताया व इस घोर अत्याचार को रोकने के लिए उन्हें कहा। तब राजा पद्मरथ ने वर की बात कह कर उन्हें अपनी विवशता बतलाई व कहा कि यदि इसे आप रोक सकते हो; तो इसे अवश्य रोक दें। तब विष्णु कुमार मुनि ने राजन् से कहा कि जब तुम कुछ नहीं कर सकते, तो मुझे ही कुछ करना पड़ेगा।

वापिस आकर मुनि श्री विष्णुकुमार ने तपोबल से वामन का रूप धारण किया व वे सीधे यज्ञ भूमि में पहुँचे गये। वहां पहुँचकर उन्होंने राजन बलि से कहा कि मैं वेद-वेदांतों का ज्ञाता ब्राह्मण विद्वान हूँ व आप सभी के मनोरथों को पूर्ण करने में पूर्णरूपेण सक्षम हूँ। इसलिए मुझे भी कुछ दान देकर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। तब राजा बलि ने कहा, आपकी जो भी मनोकामना है, प्रकट कीजिये। आप सत्पात्र

हैं, अतः मैं उन्हें अवश्य पूर्ण करूंगा, क्योंकि दान देने से सुख की प्राप्ति होती है। राजा बलि की स्वीकारोक्ति पर मुनि श्री विष्णुकुमार से वामन बने ब्राह्मण ने राजा बलि से तीन पग जमीन मांगी। तब सभी उपस्थित जनों ने उस वामन ब्राह्मण से कहा– बली नरेश बहुत दानी हैं, आप और भी कुछ मांग लीजिए।

तब उस वामन रूपी ब्राह्मण ने कहा–व्यर्थ की प्रशंसा से उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, अतः बलि नरेश तुम संकल्प जल लेने को तैयार हो जाओ। तब अस्थाई राजा बलि ने संकल्प पूर्वक कहा– मैंने आपको तीन पग जमीन दान में दी। तब विष्णु कुमार मुनि श्री (वामन) ने विक्रिया ऋद्धि से अपना शरीर इतना विशाल बना लिया कि उससे सारा संसार घिर गया। उनका यह रूप देखकर सभी उपस्थित जन विस्मत हो गये। तब उन्होंने एक पग सुमेरू पर्वत पर रखा, दूसरे पग को मानुषोत्तर पर्वत पर रखा। इससे सारे संसार में त्राहि-त्राहि मच गई। तब सुर, असुर, नारद आदि सभी मुनि श्री से प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभु घोर अनर्थ हो जायेगा। आपके पद चाप से समस्त पृथ्वी कंपायमान हो रही है, कृपया कर अपने पैर समेट लें व सृष्टि की सर्वनाश से रक्षा करें। चामर जाति के देव भी वीणा से मुनि श्री को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे। तब दो पैर धरती पर रखने के बाद मुनि श्री ने बलि राजा से पूछा–हे राजन्! आपने प्रसन्न होकर तीन पग जमीन दान में दी थी, किन्तु अब मैं तीसरा पग कहां रखूं। जब राजा बलि कोई उत्तर न दे सका, तो मुनि विष्णुकुमार ने उन्हें बंदी बना लिया व मुनि संघ पर हो रहे अन्याय व अत्याचार को समाप्त कर दिया। इस प्रकार उन्होंने समस्त मुनि संघ की रक्षा की। तब राजा बलि ने अपने कुकृत्य पर पश्चाताप कर मुनि श्री से क्षमा याचना की व अधर्म से विमुख होकर धर्ममुखी हो जैनधर्म धारण कर लिया। तब मुनि श्री, बलि के मन में धर्म का संचार कर अपनें स्थान को वापिस लौट गये। यह घटना श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को घटित हुई थी; इस कारण तभी से इस दिन को हम सभी रक्षाबंधन

के पर्व के रूप में मनाते हैं। हरिवंश पुराण में भी लगभग ऐसी ही कथा का वर्णन है।

राजा पद्मरथ के बाद कुरूवंश में महाराजा पद्मनाभ, महापदम, सुपद्म, कीर्ति, सुकीर्ति, बसुकीर्ति, बासुकी आदि अनेक महाराजा हुए। इसके पश्चात् महाशक्तिशाली नरेश शांतनु कुरूवंश में हस्तिनापुर के राजा हुए। इनकी धर्मप्रिया रानी का नाम सबकी था। इन दोनों के महापराक्रमी पाराशर नाम का पुत्र था। पाराशर की शादी रत्नपुर नरेश जीमजहु विधाधर की पुत्री गंगा से हुई थी। पाराशर गंगा से गांगेय नाम के पुत्र ने जन्म लिया। गांगेय ने अल्पवय में ही समस्त विद्यायें सीख लीं थी। एक बार पाराशर नरेश यमुना तट पर गये, जहां वे एक धीवर प्रमुख की कन्या गुणवती पर मोहित हो गये। तब राजन उस मल्लाहों के मुखिया के पास गये व उससे उन्होंने गुणवती की याचना की। यह सुनकर धीवर प्रमुख ने कहा कि हे राजन, आपके पहले ही गांगेय नाम का सुन्दर बालक है, वह सभी विद्याओं में प्रवीण है, अतः आप राज्य का उत्तराधिकारी तो उसे ही बनायेंगे, फिर मेरी पुत्री से जन्में-पुत्रों का भविष्य क्या होगा। यह सुनकर राजा पाराशर वापिस लौट गये व चिंतित रहने लगे।

तब एक वयोवृद्ध मंत्री से अपने पिता की चिंता का राज जानकर गांगेय उस धीवर के घर गये व कहा कि आपने मेरे पिता को दुखित कर अच्छा नहीं किया। तब धीवर ने विनम्रता पूर्वक कहा कि हे राजकुमार! जो मनुष्य अपनी कन्या को उसके सौत के पुत्र की माता बनने के लिए किसी को सौंपता है, वह कन्या को बलात कुंये में धकेलता है। यह सुनकर राजपुत्र गांगेय ने कहा, हे धीवरराज! ये आपका भ्रम है। मैं कुरूकुल का हूँ। उत्तम गुणों के लिए यह कुल संसार में प्रसिद्ध है। आप विश्वास रखें—मेरे कारण आपकी पुत्री से उत्पन्न पुत्र को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। मैं गुणवती को अपनी माता गंगा से भी अधिक सत्कार दूंगा। मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी पुत्री के पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त होगा।

तब धीवर ने भविष्य में होने वाली संतानों में भेद की बात कहीं। यह सुनकर गांगेय ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर कहा कि मैं कभी विवाह नहीं करूंगा, अतः ऐसी स्थिति निर्मित ही नहीं होगी। गांगेय की यह बात सुनकर धीवर प्रमुख बोला, हे नरोत्तम! संसार में आपका नाम सदा अमर रहे। क्योंकि आपने अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए ऐसी कठोर एवं दृढ़ प्रतिज्ञा की है। हे युवराज! वास्तव में वह गुणवती नाम की कन्या मेरी है ही नहीं, यह तो वास्तव में रत्नपुर नरेश रत्नांगद व उनकी प्राणप्रिया रत्नावती की पुत्री है। जिसे किसी विद्याधर ने हरण कर यमुना किनारे स्थित अशोक वृक्ष के नीचे डाल दिया था। ऐसा आकाशवाणी से मुझे पता चला था। मेरे कोई संतान नहीं थी, अतः मैंने उसे उठा लिया व अपनी पत्नी की गोद में दे दिया। यह वही कन्या है। ऐसा कहकर उस धीवर प्रमुख ने गुणवती को राजपुत्र गांगेय के हवाले कर दिया। इन्हीं गांगेय को अपनी इस भीष्म प्रतिज्ञा के लिए भीष्म पितामह के नाम से जाना जाता है।

तब गांगेय गुणवती को लेकर महलों में आये व विधिवत अपने पिता पाराशर को सौंपकर उन्हें चिंतामुक्त कर दिया। इसी गुणवती को कालांतर में गंधिका के नाम से जाना गया, जिसके यहां कुछ समय पश्चात् व्यास नाम का तेजस्वी पुत्र हुआ। व्यास अपनी विद्वता के लिए जग प्रसिद्ध थे। व्यास का विवाह सुभद्रा नाम की कन्या से हुआ। व्यास व सुभद्रा के तीन पुत्र हुए– धृतराष्ट्र, पांडु एवं विदुर।

उधर चंपापुर नरेश मार्कण्डेय/ सिंहकेतु के बाद क्रमशः हरिगिरि, हेमगिरि, बसुगिरि, शूर आदि नरेशों ने चंपापुर पर शासन किया। शूर/शूरसेन नरेश की पत्नी का नाम सुरसुन्दरी था। इनके यहां अंधकबृष्टि नामक पुत्र ने जन्म लिया। जब राजकुमार अंधकबृष्टि बड़े हुए तो उनका विवाह भद्रा नाम की कन्या से किया गया। बाद में अंधकबृष्टि चंपापुर के महाराजा बने। अंधकबृष्टि नरेश के यहां रानी भद्रा ने एक के बाद एक 10 पुत्रों को जन्म दिया। वे सभी पुत्र अति बलशाली व सुन्दर थे। इन पुत्रों के नाम क्रमशः समुद्रविजय,

स्तमित सागर, हिमबल, विजय, अचल, धारण, पूरण, सुवीर, अभिनंदन व वसुदेव थे। कुन्ती व माद्री उनकी दो अति सुन्दर कन्यायें भी थीं। कुन्ती अनेक कलाओं में निपुण व अति सुन्दर थी। अंधकबृष्टि के 8वें पुत्र सुवीर जिनकी प्राणप्रिया रानी का नाम कलिंगी था, बाद में मथुरा के शासक बने। सुवीर के पुत्र का नाम भोजकबृष्टि था। भोजकबृष्टि का विवाह सुमति नाम की सुन्दर रूपसी से हुआ था। भोजकबृष्टि जब मथुरा नरेश बने, तो उनकी महारानी सुमति से सबसे पहले उग्रसेन का जन्म हुआ। महासेन व देवसेन पुत्रों का जन्म बाद में हुआ। भोजकबृष्टि के यहां एक रूपसी कन्या ने भी जन्म लिया था, जिसका नाम बाद में गांधारी रखा गया था। उस समय राजगृही नगरी में ब्रहद्रथ नरेश का शासन था। इनकी धर्मपरायणा स्त्री का नाम सुन्दरी था। जो यथा नाम तथा गुणवती थी। ब्रहद्रथ के यहां जब पुत्र रत्न ने जन्म लिया तो राजगृही में भारी उत्सव मनाया गया। बाद में ब्रहद्रथ ने अपने पुत्र का नाम जरासंध रखा। वह प्रतिनारायण था व नरेश बनने पर इसने भरत क्षेत्र के तीन खंडों पर आधिपत्य जमा लिया था। उपरोक्त वर्णन पांडव पुराण से लिया गया है। यह पुराण उपरोक्तानुसार कुरूवंश की वंशावली को बताता है। इसी चंपापुरी को बाद में शौरीपुर या शौर्यपुर के नाम से जाना जाने लगा। वर्तमान में यह बटेश्वर के पास यमुना तट पर स्थित है।

हरिवंश पुराण में उक्त विवरण कुछ अलग तरह से दिया हुआ है। इसमें पांडव पुराण की भांति ही कुरूवंश के स्थान पर हरिवंश का वर्णन है। आचार्य श्री जिनसेन स्वामी पुराण के प्रारंभ मे लिखते हैं कि यमुना तट पर स्थित कौशांबी में कभी राजा सुमुख का शासन था। इनकी महारानी का नाम वनमाला था। एक बार वरधर्म नाम के मुनिराज जब आहार चर्या हेतु महल में पधारे तब नरेश ने नवधाभक्ति पूर्वक उन्हें आहार दान दिया। राजा सुमुख एवं रानी वनमाला मरणोपरांत विजयार्ध पर्वत में क्रमशः आर्य नाम के विद्याधर व मनोरमा हुए। एक देव इन दोनों को

वहां से उठाकर चंपापुर नगरी लाया व वहां के नरेश की मृत्यु हो जाने व उनके कोई संतान न होने से उन्हें वहां का महाराजा व महारानी मनोनीत कर दिया। उन दोनों से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरि रखा गया। यह तीर्थंकर श्री शीतलनाथ जी के धर्मतीर्थंकाल की बात है। यही राजा हरि हरिवंश की उत्पत्ति के प्रथम कारण बने। महाराजा हरि के महागिरि नाम का पुत्र हुआ, जो बाद में वहां का शासक बना। तत्पश्चात् इस हरिवंश में हिमगिरि, बसुगिरि, गिरि आदि सैंकड़ों नरेश हुए।

इसी हरिवंश में मगध देश के स्वामी महाराज सुमित्र हुए। वे धर्मात्मा व न्यायप्रिय थे। आप इस देश के कुसाग्रपुर नगर के अधिपति थे। रानी पदमावती जो एक महान धर्मपरायणा स्त्री थी, आपकी पत्नी व महारानी थीं। उन्हीं के यहां दैवीय रत्नों की वृष्टि 15 माह तक होती रही। पश्चात् महारानी पद्मावती ने माघ कृष्ण 12 को श्रवण नक्षत्र में एक तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। इन्द्र ने देवी-देवताओं के साथ आकर सुमेरू पर्वत पर ले जाकर उनका भक्तिभाव पूर्वक 1008 कलशों से अभिषेक कर उनका जन्मोत्व मनाया व तीर्थंकर बालक का नाम मुनिसुब्रतनाथ रखा। आप हरिवंश रूपी आकाश के सूर्य थे। आप महाराजा बने, किन्तु एक दिवस आकाश में विशाल मेघसमूह के विलोपन को देखकर इस संसार से विरक्त हो गये व मुनि दीक्षा धारण कर ली। तपबल से समस्त घातिया कर्मों का नाश कर आपने केवलज्ञान प्राप्त किया व जन-जन के कल्याण हेतु समवशरण सभा में विराजमान होकर धर्मोपदेश दिया व अंत में सम्मेदाचल पर्वत पर पधार कर समस्त कर्मों का नाश कर वहीं से आपने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया। कुशाग्रपुर नगर को वर्तमान में राजगृही के नाम से जाना जाता है।

आपके दीक्षा लेने के पश्चात् आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री सुव्रत हरिवंश के स्वामी हुए। सुव्रत नरेश के यहां भी एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ। जिसका नाम दक्ष रखा गया। दक्ष नरेश के यहां इला नाम की महारानी के गर्भ से ऐलेय नाम

का पुत्र हुआ तथा मनोहारी नाम की पुत्री हुई। किन्तु दुर्भाग्य से अपनी पुत्री के युवा होने पर दक्ष उस पर आसक्त हो गये। प्रजा की आज्ञा से उन्होंने अपनी पुत्री मनोहरी से विवाह कर लिया। इसे दक्ष की पत्नी इला देख न सकी। अतः वह अपने पुत्र ऐलेय को लेकर किसी दुर्गम स्थान में चली गई। महारानी इला ने बाद में इलावर्धन नाम का एक सुन्दर सा नगर बसाया व अपने पुत्र ऐलेय को वहां का राजा बना दिया। इन्होंने बाद में अंग देश में ताम्रलिप्ति नगर बसाया। नर्मदा किनारे भी ऐलेय ने महिष्मति नाम की सुन्दर नगरी की रचना की व यहीं रहकर राज्य करने लगा। वृद्धावस्था में उसने अपने पुत्र कुणिम को राज्यभार सौंपकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। कुणिम नरेश ने बाद में विदर्भ देश में वरदा नदी के किनारे कुण्डित नाम का नगर बसाया। कुणिम नरेश का पुत्र पुलोम था। राजा बनने पर उसने भी एक अलग नगर पुलोमपुर बसाया। कुणिम नरेश के दो पुत्र थे—पोलोम एवं चरम। आयु के अंत में उसने राज्यभार अपने दोनों पुत्रों का सौंप दिया व स्वयं मुनि दीक्षा ले ली। पोलोम व चरम शासकों ने मिलकर रेवा नदी के तट पर एक अति सुन्दर नगरी की रचना करवाई व उसका नाम इन्द्रपुर रखा। इन्होंने जयंती व वनवास्य नगरों की रचना भी करवाई। बाद में पोलोम ने अपने पुत्र महीदत्त व नरेश चरम ने अपने पुत्र संजय को राज्य का भार सौंपकर जिनदीक्षा धारण कर ली।

इसके बाद नरेश महीदत्त ने कल्पपुर नाम का नगर बसाया। राजा महीदत्त के दो पुत्र थे। बड़े का नाम अरिष्टनेमि व छोटे का नाम मत्स्य था। बड़े होने पर मत्स्य नरेश ने भद्रपुर व हस्तिनापुर के नरेशों को परास्त कर उन्हें जीता व स्वयं हस्तिनापुर रहने लगा। मत्स्य नरेश के 100 पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम अयोधन था। इस तरह हस्तिनापुर का शासन मत्स्य के बाद अयोधन ने संभाला। इसके बाद हस्तिनापुर में क्रमशः मूल, शाल, सूर्य आदि राजाओं ने राज्य किया। सूर्य ने एक शुभ्रपुर नाम का नगर बसाया। सूर्य के बाद उसका पुत्र अमर हस्तिनापुर का शासक बना। इसने भी वज्र

नाम का नगर बसाया। अमर के बाद क्रमशः देवदत्त, मिथिलानाथ, हरिषेण, नभसेन, शंख, भद्र, अभिचंद्र आदि वहां के राजा बने। अभिचंद्र ने विंध्याचल के ऊपर चेदि राष्ट्र की स्थापना की व शुक्तिमती नदी के किनारे इसी नाम की नगरी भी बसायी। अभिचंद्र की महारानी का नाम वसुमति था। जिनसे वसु नाम का पुत्र हुआ।

इसी नगरी में क्षीरकदंब नाम का ब्राह्मण रहता था। जो शास्त्रों का महान ज्ञाता था। क्षीरकदंब की स्त्री का नाम स्वस्तिमति था। इनके पर्वत नाम का एक पुत्र था। क्षीरकदंब ने नरेश पुत्र वसु, स्वपुत्र पर्वत एवं नारद को गूढ़ार्थ सहित सभी शास्त्र पढ़ाये। एक बार वे इन्हें आरण्यक वेद पढ़ा रहे थे; तभी आकाश में गमन करते हुए चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने कहा कि इनमें से दो अधोगति को व दो उर्ध्वगति को प्राप्त होंगे। मुनियों के ये वचन सुनकर क्षीरकदंब ने शिष्यों से अपने-अपने घर जाने को कहा व स्वयं मुनि बनकर तपस्या व मनन चिंतन करने लगे। अपने पति के घर न आने से व्याकुल स्वस्तिमति ने पर्वत व नारद को उन्हें खोजने भेजा। अनेक दिनों के प्रयास के बाद वे नारद व पर्वत को एक वन में मुनिवेष में ध्यानरत मिले। उन्होंने वापिस आकर यह समाचार गुरु माता को बतलाया। इसके बाद नारद ने क्षीरकंदब मुनि महाराज से अणुव्रत ग्रहण कर लिये। राजा अभिचंद्र भी अपने पुत्र बसु को राज्य का भार सौंप कर मुनि बन गये।

राजा बसु सत्यवादी व न्यायप्रिय थे व आकाश स्फटिक पर ही बैठते व चलते थे। राजा बसु की एक रानी इक्ष्वाकु वंश व दूसरी रानी कुरूवंश की थी। इन दोनों से राजा बसु के 10 पुत्र हुए थे। एक दिन नारद अपने गुरु के पुत्र पर्वत से मिलने आये। वे गुरु पत्नी से भी मिले। उस समय पर्वत अपने अनेक शिष्यों से घिरा वेद वाक्यों की व्याख्या कर रहा था। उसने बोला– 'अजैर्यश्टव्यमं'। इसमें अज शब्द आया है। 'अज' याने बकरा अर्थात् बकरे से ही यज्ञ करना चाहिए। तभी वहां उपस्थित नारद ने अज्ञानी पर्वत के उक्त अर्थ पर

आपत्ति की व कहा कि अपने गुरु ने तो कहा था कि 'अज' अर्थात् पुराना धान्य जिसमें अंकुरित होने की क्षमता न हो। यही 'अज' का सनातन अर्थ है। दोनों में विवाद बढ़ने पर पर्वत बोला कि राजा वसु की सभा में शास्त्रार्थ कर इसका निर्णय होगा। यह कहकर नारद घर चला गया। पर्वत ने घर आकर यह वृतान्त अपनी माँ से कहा। तब पर्वत की माँ ने उसे समझाया कि नारद की बात ही सत्य है। पर प्रातः होने पर पुत्र मोह में पर्वत की माँ राजा बसु के घर गई व बसु से गुरु दक्षिणा मांगते हुए याचना की कि हे पुत्र, यद्यपि तुम सभी तत्व-अतत्व को जानते हो, पर सभा में तुम्हें पर्वत के वचनों का ही समर्थन करना है, नारद के नहीं। गुरु दक्षिणा पाकर स्वस्तिमती निश्चिंत होकर घर चली गई।

प्रातः उचित समय पर नारद व पर्वत सर्व शास्त्रों के ज्ञाताओं से घिरे राज दरबार में पहुँचे। दोनों के बीच धर्मार्थ प्रारंभ हुआ। पूर्व पक्ष पर्वत ने रखा व नारद ने उसके अर्थ को उसकी स्वयं की कल्पना बतलाया व कहा कि गुरु जी ने हम तीनों को एक सा ज्ञान दिया था। यह पर्वत 'अज' का विपरीत अर्थ कर रहा है। वह बोला—जैसे गो शब्द—पशु, किरण, मृग, इंद्रिय, दिशा, बज्र, घोड़ा, वचन और पृथ्वी अर्थ में प्रसिद्ध है, परन्तु सभी अर्थों में उसका पृथक-पृथक ही उपयोग होता है। शब्दों के अर्थ में जो प्रवृत्ति है, वह या तो रुढ़ि से होती है, या क्रिया के अधीन होती है। 'अज' का गुरु प्रतिपादित अर्थ तो 'जौ' है। अर्थात् तीन वर्ष पुराना धन्य। ना जायन्ते इति अजाः। प्राणियों के घात करने वाले को स्वर्ग नहीं मिल सकता। तब सभा में उपस्थित सभी विद्वानों ने एक मत से नारद की बात का समर्थन किया। पर गुरु दक्षिणा के कारण राजा बसु ने जैसे ही पर्वत की बात का समर्थन किया; तभी उसका स्फटिक मणिमय आसन पृथ्वी में धंस गया व राजा बसु पाताल में जा गिरा व मरकर सातवें नरक पहुँचा। तब सभी ने राजा बसु की घोर निंदा की व पर्वत को नगर से बाहर निकाल दिया। पर्वत भी मरकर नरक पहुँचा, मिथ्या-पोषण की उन्हें सजा मिली। बाद में बसु पुत्र

सुबसु नागपुर व बृहद्ध्वज मथुरा में जाकर शासन करने लगे। नारद मरकर स्वर्ग गया।

काफी समय पश्चात् बृहद्ध्वज के सुबाहु पुत्र ने शासन संभाला व उसके बाद क्रमशः दीर्घबाहु, वज्रबाहु, लब्धाभिमान, भानु, यवु, सुभानु व अंत में भीम मथुरा के शासक बने। इस प्रकार हरिवंश में हजारों राजा हुए। भगवान मुनिसुव्रतनाथ के पश्चात् तीर्थंकर नमिनाथ हुए। इन्हीं के तीर्थकाल में हरिवंश में सूर्य के समान प्रतापी यदु नरेश हुए। यही यादवों की उत्पति के प्रमुख कारण थे। इनका नरपति नाम का पुत्र बाद में महाराजा बना। नरपति नरेश के शूर व सुवीर नाम के दो पुत्र थे। इन्हीं को राज्य का भार सौंप कर नरपति ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। ज्येष्ठ पुत्र शूर ने अपने लघु भ्राता सुवीर को मथुरा का शासक बनाया व स्वयं कुशाग्र देश में शौर्यपुर नाम का नगर बसाकर वहां राज्य करने लगे। समय व्यतीत होने पर शूर नरेश के यहां अंधकबृष्टि आदि अनेक बलशाली पुत्र हुए। किन्तु अपने पुत्रों के बड़े हो जाने पर शूर व सुवीर नरेश उन्हें राज्य भार सौंपकर सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज के पास दीक्षा ग्रहण कर तप करने लगे। बाद में शूर पुत्र अंधकबृष्टि का विवाह सुभद्रा नाम की कन्या से हुआ। इन दोनों से स्वर्ग से चयकर आये क्रम-क्रम से 10 पुत्र हुए। इनके नाम क्रमशः समुद्रविजय, अक्षोम्य, स्तमित सागर, हिमवान, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिचंद्र व वसुदेव थे। यहां पांडव पुराण में वर्णित अंधकबृष्टि के पुत्रों के नामों में 8 नाम तो यथावत हैं; केवल सुवीर की जगह अक्षोम्य व अभिनंदन की जगह अभिचंद्र का नाम आया है। ये सभी अतिबलशाली, कुशाग्र बुद्धि के घनी व सुन्दर थे। अंधकबृष्टि की दो सुन्दर व गुणवान पुत्रियां थीं। जिनके नाम क्रमशः कुन्ती व माद्री थे। वहीं मथुरा नरेश भोजकवृष्टि की महारानी पदमावती ने भी होनहार तीन पुत्रों को जन्म दिया। इनके नाम क्रमशः उग्रसेन, महासेन, व देवसेन रखे गये। पांडव पुराण में भोजकवृष्टि की महारानी का नाम सुमति कहा गया है; परन्तु उनके पुत्रों के नामों में कोई अंतर नहीं है। मेरी समझ में

हरिवंश पुराण का शौर्यपुर नगर ही पहले चंपापुर के नाम से जाना जाता होगा। जिसका नाम बाद में राजा शूर/शूरसेन के नाम पर शौरीपुर रखा गया होगा।

इधर उत्तर पुराण भी उपरोक्त विवरण का बहुत ही संक्षेप में कुछ इस प्रकार वर्णन करता है। यह वर्णन पांडव पुराण से अधिक मेल खाता है। उत्तर पुराण के अनुसार भरत क्षेत्र में वत्स देश की कौशांबी नगरी में मघवा नरेश का शासन था। आपकी महारानी वीतशोका थी। इनसे रघु नामक पुत्र हुआ जो बाद में कौशांबी का शासक बना। राजा रघु मर कर सूर्यप्रभ देव बने। इसी नगरी में सुमुख नाम का धनी सेठ रहता था। एक बार कलिंग देश से वीरदत्त नाम का वैश्य पुत्र अपनी स्त्री वनमाला के साथ आया व सुमुख सेठ के यहां आश्रय पाकर रहने लगा। सुमुख सेठ वनमाला की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया; अतः उसने उसके पति वीरदत्त को व्यापार करने 12 वर्ष के लिए बाहर भेज दिया। जब वीरदत्त 12 वर्ष पश्चात् वापिस लौटा, तो अपनी पत्नी को सुमुख सेठ की पत्नी के रूप में देखकर संसार से विरक्त व व्यथित हो गया। फिर उसने प्रोष्ठल मुनि के पास जाकर मुनि दीक्षा ले ली। उसने अंत में समाधिपूर्वक मरण किया व स्वर्ग में चित्रांगद नाम का देव बन गया।

उधर सुमुख सेठ आयु के अंत में मरण कर भरत क्षेत्र के हरिवर्ष देश के भोगपुर नगर में हरिवंशीय राजा प्रभंजन के यहां उनकी मृकण्ड रानी से पुत्र रूप में जन्मा व उसका नाम सिंहकेतु रखा गया। वनमाला भी मरकर उसी देश के वस्वालय नगर के स्वामी राजा वज्रचाप की धर्मप्रिया रानी शुभा के यहां पुत्री रूप में जन्मी। जहां उसका नाम विधुन्माला रखा गया। इसके बाद सिंहकेतु का विवाह विधुन्माला से हो गया। कभी वीरदत्त से चित्रांगद बने देव ने जब उन्हें देखा तो पूर्व भव के बैर का स्मरण कर उन्हें उठाकर ले जाने लगा। पर तभी रघु नरेश से बने सूर्यप्रभ देव ने उन्हें रोककर समझाया। तब चित्रांगद देव ने उन्हें चंपापुर के वन में छोड़ दिया। यहां का नरेश कुछ ही समय पहले पुत्रविहीन होकर

मरा था। तब लोगों ने हाथी पर बैठकर नगर की ओर आ रहे सिंहकेतु को राज्य का उत्तराधिकारी जानकर उन्हें राजसिंहासन पर बैठा दिया। विद्युन्माला यहां की महारानी बन गई। सिंहकेतु हरिवंश का ही था, अतः उसकी माता मृकण्ड के नाम पर सिंहकेतु का नाम मार्कण्डेय रख दिया। उसी की संतति में हरिगिरि, हिमगिरि, बसुगिरि आदि अनेक राजा हुए। उन्हीं में कुशार्थ देश के शौर्यपुर नरेश शूरसेन हुए। शूरसेन के पुत्र का नाम वीर था। उसकी स्त्री का नाम धारिणी था। राजा वीर की महारानी ने अंधकबृष्टि व नरबृष्टि नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। राजा वीर को शूरवीर के नाम से भी जाना जाता था। बाद में बड़े होने पर अंधकबृष्टि का विवाह सुभद्रा से हुआ। नरेश अंधकबृष्टि के सुभद्रा से उत्पन्न 10 पुत्र व 2 पुत्रियां थीं। इनमें सबसे बड़े समुद्रविजय व सबसे छोटे वसुदेव थे। पुत्रियों में कुन्ती ज्येष्ठ व माद्री लघु थी। शूरवीर/वीर के द्वितीय पुत्र नरबृष्टि का विवाह पदमावती से हुआ था। पदमावती ने महाप्रतापी तीन बालकों– उग्रसेन, महासेन व देवसेन को जन्म दिया। इनकी एक पुत्री भी थी; जिसका नाम गांधारी था। उत्तर पुराण में राजा शूर/शूरसेन को वीर/शूरवीर कहा गया है। यमुना तट पर स्थित यह चंपापुरी नगरी ही बाद में शासक शूर के नाम पर शौरीपुर कहलाने लगी।

राजा बसु का सुबसु नाम का पुत्र जो कुंजरावर्तपुर/नागपुर में रहता था–का पुत्र बृहदरथ मागधेषपुर में रहने लगा था। उसके दृढरथ नाम का पुत्र पैदा हुआ। बाद में दृढरथ के नरवर, उसके पश्चात् दृढरथ, सुखरथ, दीपन, सागरसेन, सुमित्र, पृथु, बिंदुसार, देवगर्भ, शत्रुधन राजा बने। अनेक राजाओं के बाद उसी वंश में निहतशत्रू नाम का राजा हुआ। तत्पश्चात् शतपति, वृहदरथ, राजा बने। ये सभी राजगृह के स्वामी थे। वृहदरथ के पुत्र जरासंध ने जब राजगृह का शासन संभाला, तो उसने अपनी विभूति लंका नरेश रावण की तरह विस्तृत कर ली। वास्तव में रावण की भांति वह भी 9वां प्रतिनारायण था। जरासंध की पटरानी का नाम कालिंदसेना था। अपराजित आदि जरासंध के अनेक भाई थे– कालभवन

आदि उसके अनेक पुत्र थे। जरासंध महापराक्रमी, विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी के विद्याधरों का अधिपति तथा पूर्व एवं पश्चिम समुद्री तटों का स्वामी था।

इसी समय शौर्यपुर के उद्यान में सुप्रतिष्ठ मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। यह समाचार सुनकर अंधकबृष्टि राजा सेना सहित प्रजाजनों के साथ उनके धर्मोपदेश सुनने को गये। केवली भगवान ने विस्तार से धर्मसभा में उपस्थित जीवों को धर्म का मार्ग बतलाया। उन्होंने अंधकबृष्टि के पूछने पर उनके पूर्व भव बतलाये। उनके दसों पुत्रों के भी पूर्व भवों का वर्णन किया। प्रवचन के उपरांत सभी अपने-अपने स्थानों को चले गये। तब अंधकबृष्टि ने संसार से विरक्ति के पहले समुद्रविजय का राज्याभिषेक किया। वसुदेव आदि को उनके पादमूल में सौंपा। तत्पश्चात सुप्रतिष्ठ केवली की शरण में जाकर मुनिधर्म अंगीकार कर लिया। इसके बाद मथुरा के शासक भोजकवृष्टि ने भी मथुरा के शासन का भार उग्रसेन को सौंप दिया व उन्होंने भी मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। समुद्रविजय की पटरानी का नाम शिवादेवी था; जो अत्यन्त शीलवान व गुणवान थी। उनके भाइयों में अक्षोम्य की रानी का नाम धृति, स्तमित सागर की स्वयंप्रभा, हिमवान की सुनीता, विजय की सीता, अचल की प्रियलामा, धारण की प्रभावती, पूरण की कालिंगी व अभिचंद्र की रानी का नाम सुप्रभा था। इन सभी का विवाह समुद्रविजय ने करवाया था।

समुद्रविजय के सबसे छोटे भाई वसुदेव कामदेव के समान सुन्दर थे। छोटे होने के कारण वे प्रतिदिन स्वेच्छा से गंधवारण हाथी पर सवार होकर नगर के बाहर जाते थे। चतुरंगणी सेना उनके साथ रहती थी। वे अति सुन्दर होने पर भी अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित उनका शरीर अप्रतिम सौंदर्य युक्त हो जाता था। जब वे बाहर निकलते, तो नगर की स्त्रियां उन्हें देखकर अपना काम भूल जाती थी व किसी के मना करने पर भी वे वसुदेव को देखे बिना नहीं मानती थी। उन्हें देखकर स्त्रियों में आकुलता उत्पन्न हो

जाती थी व वे सुधबुध भूलकर कामवासना से ग्रसित हो जाती थीं। यह देखकर नगर के वृद्धजनों ने राजा समुद्रविजय से अनुरोध किया कि वसुदेव जब प्रतिदिन नगर से बाहर निकलते हैं; तो नगर की स्त्रियां उनका रूप देखकर पागल हो जाती हैं व अपने शरीर की सुधबुध भी भूल जाती है। अतः आप कुछ कीजिये। ऐसा कहकर नगरवासी चले गये। जब एक दिन घूम-फिर कर हारे-थके वसुदेव समुद्रविजय के कक्ष में आये, तो उन्होंने वसुदेव को गोदी में बिठा लिया व बड़े प्यार से कहा कि तू कुछ कमजोर सा हो गया है। तुम्हारी कांति व्यर्थ के भ्रमण से बदली सी मालूम देती है। अतः तुम अपने स्वास्थ्य की खातिर महल या अंतःपुर के बगीचे में ही मंत्री पुत्रों के साथ भ्रमण कर लिया करो। इसके बाद वसुदेव ऐसा करने लगे।

हरिवंश पुराणानुसार एक दिन कुब्जा नाम की दासी महारानी शिवादेवी के विलोपन हेतु जा रही थी। तब वसुदेव ने उससे विलोपन छीनकर उसे तंग किया। तब वह बोली– इसी कारण से तो तुम्हें बंधनागार में डाला गया है। यह सुनकर वसुदेव ने इसका मतलब जानना चाहा। तब उस दासी ने वसुदेव को सब सच-सच बता दिया। किन्तु उत्तर पुराण के अनुसार एक दिन निपुण कुमार नाम के सेवक ने वसुदेव से यह बात कह दी कि तुम्हें बाहर निकलने से मना करने हेतु ही महल के आसपास ही भ्रमण करने को कहा गया है; क्योंकि आपके देखने मात्र से नगर की स्त्रियां कामातुर होकर सभी मदिरापान की हुई के समान हो जाती है। अतः प्रजा की शिकायत पर ही आप पर यह प्रतिबंध लगाया गया है।

वसुदेव का नगर-त्याग व पुनर्मिलन

वास्तविकता जानकर, एक दिन रात्रि में राजा समुद्रविजय से विमुख होकर व एक नौकर को साथ लेकर– वसुदेव रात्रि में नगर के बाहर गये व एक मुर्दे को अपने वस्त्राभूषण पहना कर बोले–'मैं अग्नि में प्रवेश कर रहा हूँ'; ऐसा कहकर उस मुर्दे को अग्नि में डालकर वे अदृश्य हो गये। इसके पहले उन्होंने अपनी माता के नाम एक पत्र भी लिखा कि वसुदेव अपकीर्ति के भय से महाज्वालाओं वाली अग्नि में गिर कर मर गया है। मेरे राजा व चुगलखोर प्रजा सुखी रहें। तब साथ गये नौकर ने वसुदेव को मरा जानकर महलों में आकर इस घटना की सूचना राजा समुद्रविजय को दी। तब समुद्रविजय आदि सभी भाई श्मशान की ओर गये व चिता में वसुदेव के वस्त्राभूषण देखकर, यह जानकर कि वसुदेव ने अपने आप को समाप्त कर लिया है, सभी अति दु:खी हुए व उसका विधि-विधान पूर्वक क्रियाकर्म कर दिया, व सभी लोग काफी दु:खी मन से वापिस आ गये।

उधर वसुदेव एक ब्राह्मण का वेश धारण कर विजयखेट नगर पहुँचे तथा वहां सुग्रीव नाम के गंधर्वाचार्य के यहां रहने लगे। गंधर्वाचार्य की सोमा व विजयसेना नाम की दो सुन्दर कन्यायें थीं। वे दोनों गंधर्व कला में पारंगत थीं। वसुदेव भी गंधव विद्या में अति निपुण थे। गंधर्वाचार्य ने पहले से ही सोच रखा था कि जो भी व्यक्ति गंधर्व विद्या में इन्हें परास्त कर देगा, वे इन कन्याओं का विवाह उससे कर देंगे। वसुदेव ने उन दोनों कन्याओं को गंधर्व विद्या में परास्त कर दिया तथा इस प्रकार उन कन्याओं से विवाह कर लिया। इसके बाद वसुदेव कई महीनों तक वहीं रहें। उनका विजयसेना से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ; जिसका नाम अक्रूर रखा गया। परन्तु इसके बाद वसुदेव अज्ञात रूप से वहां से निकल गये। वे आगे जाकर एक सरोवर में स्नान करने लगे व वहां विचित्र प्रकार की ध्वनियां करने लगे; जिससे समीप स्थित सोमा नाम के हाथी की नींद खुल गई व वह हाथी वसुदेव

की ओर दौड़ा। पर वसुदेव निडर होकर उसके बाहरी दांतों को झूला बनाकर उन पर झूलने लगे तथा बाद में उस हाथी पर चढ़ गये। तभी वहां आकाशमार्ग से जा रहे दो विद्याधर कुमार हाथी से उठाकर वसुदेव का हरण कर ले गये व उसे विजयार्ध पर्वत के कुंजरावर्त नगर के बाहर उपवन में छोड़ दिया। तब वे विद्याधर वसुदेव से बोले कि आपको यहां के नरेश अशनिवेग की आज्ञा से यहां लाया गया है। तुम उन्हें अपना श्वसुर समझो। तब मंगलाचार पूर्वक वसुदेव का नगर प्रवेश कराया गया व नरेश पुत्री श्यामा से उनका विवाह कर दिया गया। एक दिन श्यामा ने 17 तार वाली वीणा के राग छेड़े। वसुदेव उसके वीणा बादन को सुनकर अति प्रसन्न हो गये व उन्होंने श्यामा से वर मांगने को कहा। तब श्यामा ने वसुदेव से कभी जुदा न होने का वर मांगा व कहा कि मेरा शत्रु अंगारक अवसर पाकर तुम्हें हर ले जा सकता है। उसी ने मेरे पिता का राज्य भी छीन लिया है। आप चाहें तो ये राज्य वापिस दिला सकते हैं, क्योंकि ऐसा एक मुनिराज ने बतलाया था। श्यामा से ये घटनायें सुनकर वसुदेव ने श्यामा की बात को स्वीकार कर लिया।

पर एक दिन जब संभोग क्रीड़ा के पश्चात् वसुदेव गहन निद्रा में थे; तभी अंगारक ने वहां आकर वसुदेव का हरण कर लिया। किन्तु तभी श्यामा की नींद खुल जाने से श्यामा ने बहादुरी से आकाश में अंगारक का पीछा किया व उसे रोककर तलवार तान कर उसके सामने खड़ी हो गई। तब अंगारक ने श्यामा से कहा कि तू मेरी बहन भी है और स्त्री भी है; अतः तू मेरे मार्ग से हट जा। अंगारक के श्यामा से ऐसा कहने पर दोनों में घमासान होने लगा; तभी वसुदेव ने मुष्टिकाओं से अंगारक के ऊपर तीक्ष्ण प्रहार किये, जिससे प्राण रक्षा हेतु अंगारक ने वसुदेव को आकाश में ही छोड़ दिया। इस कारण आकाश से नीचे जमीन पर आकर वसुदेव चंपा नगरी के बाहरी उद्यान में स्थित तालाब में आकर गिरे। फिर तालाब से निकल कर समीप स्थित बासुपूज्य भगवान के जिनालय में ठहर गये। प्रातः होने पर ब्राह्मण का वेश

धारण कर वे नगर में गये; जहां चारुदत्त सेठ की पुत्री गंधर्व सेना को गंधर्व संगीत में परास्त कर उन्होंने उससे विवाह कर लिया।

फिर एक बार बेताल कन्या वसुदेव को रात्रि में हरण कर श्मशान ले गई; फिर उन्हें स्नान कराकर उत्तमोत्तम आभूषण पहनाकर नीलेश्या के पिता सिंहदृष्टा—जो असित नगर पर्वत के स्वामी थे—के पास ले गई व नीलेश्या से वसुदेव का पाणिग्रहण संस्कार कराया। एक बार एक मयूर नीलेश्या को हर ले गया। तब वसुदेव गोपों की बस्ती में गये। उस बस्ती का नाम गिरि तट था। वहां वासुदेव नाम का ब्राह्मण व उसकी पुत्र सोमश्री रहती थी। दोनों ही वेदों में अति निपुण थे। एक बार कभी ज्योतिषी ने कहा था कि जो सोमश्री को वेदों की चर्चा में जीत लेगा; वही उसका पति होगा। वसुदेव ने यह काम कर दिखाया व सोमश्री को अपनी पत्नी बना लिया।

एक बार जब वसुदेव गिरितट नगर के उद्यान में विद्या सिद्ध कर रहे थे; तभी कुछ धूर्त उन्हें पालकी में बिठाकर तिलवस्तु नगर ले गये। वहां के लोग एक नरभक्षी राक्षस से परेशान थे। उस राक्षस का सामना जब वसुदेव से हुआ; तो वसुदेव ने उसे परास्त कर दिया। यह देखकर प्रजा अति प्रसन्न हुई। फिर वहां की प्रजा वसुदेव को रथ पर बिठाकर अपने नगर ले गई और खुशी-खुशी 500 कन्याओं का विवाह वसुदेव से करा दिया। एक बार मदनवेगा के पिता जो नरेश थे; उनको उनका दुश्मन राजा त्रिशिखर परास्त कर ले गया व उन्हें बंदी बना लिया। वसुदेव ने त्रिशिखर को परास्त कर व बाद में उसका वध कर मदनवेगा के पिता को मुक्त करा लिया। तब मदनवेगा के पिता ने अपनी पुत्रियों वेगवती व मदनवेगा का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया। बाद में मदनवेगा ने—जो विद्याओं में निपुण थी—वसुदेव को विद्याधरों के प्रकार बतलाये। वसुदेव व मदनवेगा से अनावृष्टि नाम का पुत्र हुआ।

एक बार त्रिशिखर विद्याधर की विधवा पत्नी शूर्पणखी मदनवेगा का रूप धारण कर वसुदेव के पास गई व छलपूर्वक

उसका हरण कर लिया। रास्ते में उसे मानसवेग नाम का विद्याधर मिला। उसने मार डालने हेतु वसुदेव को मानसवेग को सौंप दिया। इसी बीच वसुदेव घास की गंजी पर नीचे गिर गये। जहां जरासंध का यशोगान सुनकर वह जान गये कि यह राजगृह नगर है। यहां पर वसुदेव ने जुए में एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें जीतीं तथा दानी बनकर वहीं सबको बांट दी। इसके कुछ समय पूर्व ही निमित्त ज्ञानियों ने जरासंध को बतलाया था कि जो जुए में एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें जीतकर बांट देगा; उसका पुत्र ही तुम्हारा बध करेगा। यह जानकर कि यही वसुदेव है; जरासंध के सैनिकों ने वसुदेव को पकड़ लिया एवं चमड़े की भातड़ी में बांधकर उसे पहाड़ की चोटी पर ले जाकर नीचे फेंक दिया, ताकि वसुदेव का प्राणांत हो जावे। पर विद्याधरी वेगबती ने जो वसुदेव की पत्नी थी, उन्हें बीच में ही थाम लिया। उस बीच वसुदेव सोचते हैं कि जीव अकेला ही इस संसार में जन्म व मरण कर सुख-दुःख भोगता है; किन्तु फिर भी आत्मीयजनों के संग्रह करने में लिप्त रहता है; अतः वे ही धीर, वीर व सुखी हैं, जो भोगों को छोड़कर आत्महित हेतु मोक्षमार्ग में स्थित होते हैं। तभी वेगबती ने पर्वत तट पर भाथड़ी से वसुदेव को बाहर निकाला, तब वे दोनों परस्पर प्रेमपूर्वक एक दूसरे से मिले। फिर वेगबती ने उनके हरण के बाद अपने दुखों का वर्णन वसुदेव से किया व कहा कि मैंने आपको बहुत खोजा पर मदनबेगा के पास आपकों देखकर संतुष्ट हो गई व यहीं रहने लगी। पर तभी मारने की इच्छा से आपको नीचे फेंका गया; तब मैंने आपको बीच में ही पकड़ लिया। इस समय हम और आप पंचनद तीर्थ के ह्रीमत पर्वत पर हैं।

एक दिन वसुदेव व वेगबती जब क्रीड़ा कर रहे थे, तो उन्होंने नागपास में बंधी एक सुन्दर कन्या को देखा व उसे बंधन मुक्त कर दिया। बंधन मुक्त हो जाने पर वह कन्या बोली– हे नाथ! आपकी कृपा से आज मेरी विद्या सिद्ध हो गई। इतना कहकर उसने यह सिद्ध विद्या बसुदेव के कहने पर वेगबती को दे दी। एक बार श्राबस्ती नगरी में वसुदेव

कामदेव के मंदिर में पहुँचे जहां के कपाट कई दिनों से बंद रहते थे। वहां उपस्थित जनों ने वसुदेव को बताया कि जो भी इस मंदिर के कपाट खोलकर इसमें पूजा करेगा, उसका विवाह नगर सेठ की कन्या बंधुमति से कर दिया जायेगा। तब वसुदेव ने उस मंदिर के बंद कपाट खोलकर उसमें पूजा की। यह देखकर नगर सेठ ने अपनी कन्या बंधुमति का विवाह वसुदेव से कर दिया। उसी नगर के राजा के यहां प्रियंगुसुन्दरी नाम की सुन्दर कन्या थी। ज्वलनप्रभा नाम की नागकन्या ने वसुदेव को उस सुन्दरी के गुणों व रुप की प्रशंसा कर वसुदेव के मन में उस कन्या के प्रति प्रेम जागृत कर दिया। तब उन दोनों ने उसी कामदेव के मंदिर में जाकर परस्पर गंधर्व विवाह कर लिया। यहां वसुदेव अपनी दोनों पत्नियों के साथ अनेक वर्षों तक रहे।

बाद में वसुदेव ने गांधार देश के नगर गंधसमृद्ध में प्रवेश किया; यहां भी अपने बुद्धि कौशल के आधार पर गांधार नरेश गंधार व उनकी महारानी पृथ्वी से उत्पन्न पुत्री प्रभावती के साथ विवाह किया। एक दिन वसुदेव व प्रभावती महलों में सो रहे थे, तभी बैरी शूर्पक वसुदेव को ले उड़ा; किन्तु वसुदेव के मुक्कों की मार से भयभीत होकर उन्हें हवा में ही छोड़ दिया; जिससे वसुदेव गोदावरी के कुंड में आकर गिरे। वे यहां से कुंडपुर ग्राम गये; जहां का राजा पदमरथ था। यहां भी वसुदेव ने अपने कला-कौशल से वहां के राजा की सुन्दर कन्या से विवाह किया। किन्तु दुर्भाग्य ने यहां भी वसुदेव का पीछा नहीं छोड़ा। अब की बार नीलकंठ ने वसुदेव का हरण कर लिया पर वे उससे बचकर चंपानगरी के तालाब में गिरे। फिर वहां के मंत्री की पुत्री से विवाह किया। पर यहां से बैरी शूर्पक फिर उन्हें हर ले गया, पर अब वे उससे युद्ध करते हुए भागीरथी नदी में गिर गये।

वहां मलेच्क्ष रहते थे वे वसुदेव को पकड़कर मलेच्क्ष राजा के पास ले गये। किंतु मलेच्छ राजा ने उसे अपनी कन्या भेंट में दे दी। यही मलेच्छ कन्या से वसुदेव को जरत कुमार नाम के पुत्र की प्राप्ति हुई। यहीं पर वसुदेव ने अवंति,

सुन्दरी, शूरसेना व जीवद्धसा आदि कन्याओं से भी विवाह किया तथा वे अरिष्टपुर नगर पहुँच गये। यहां के राजा का नाम रूधिर था। राजा रूधिर की रूपसी पटरानी का नाम मित्रा था। रूधिर के ज्येष्ठ पुत्र का नाम हिरण्य था। उसकी गुणवान व सुन्दरी पुत्री का नाम रोहणी था। उत्तर पुराण में अरिष्टपुर नरेश का नाम हिरण्यवर्मा व उनकी पटरानी का नाम पदमावती बतलाया गया है।

एक बार अरिष्टपुर में वहां के नरेश ने अपनी पुत्री रोहणी के विवाह हेतु स्वयंवर आयोजित किया। इस स्वयंवर में जरासंध, उसके पुत्र, समुद्रविजय, उग्रसेन, राजा पांडु, विदुर, शल्य, शत्रुंजय, चंद्राभ, पदमरथ आदि अनेक राजा-महाराजा व राजपुत्र आये थे। वेष बदलकर वसुदेव भी इस स्वयंवर में जा पहुँचे व पणंव वादकों के पास जाकर बैठ गये। तभी धाय ने कुमारी रोहणी को उपस्थित सभी राजाओं व राजपुत्रों का परिचय कराया व उनके पास ले गईं। सभी को दिखाने के बाद जब धाय रोहिणी को लेकर वापिस जाने लगी; तभी पणंव की मधुर ध्वनि रोहणी के कानों में गूंजी। उसने मुड़कर देखा तो कामदेव से सुन्दर शरीर वाले वसुदेव पर उसकी निगाह पड़ी। तब शीघ्र ही मुड़कर रोहणी ने वसुदेव के गले में वरमाला डाल दी। यह देखकर वहां उपस्थित राजाओं ने कहा कि पणंव वादक को इस कन्या ने अपना वर चुना, यह अन्याय है। तभी वसुदेव ने उठकर कहा कि यदि स्वयंवर की विधि न जानने वाले अपने पराक्रम से मदमस्त हैं, तो सामने आकर सामना करें। तब राजा रुधिकर, दधिमुख व वसुदेव विद्याधरों के रथों पर आरुढ होकर वहां उपस्थित सभी राजाओं व राजपुत्रों से भिड़ गये। समुद्रविजय व वसुदेव के बीच भीषण युद्ध हुआ; जिसमें वसुदेव ने कभी भी पहले बार नहीं किया; क्योंकि वे अपने बड़े भाई व अन्य भाइयों को पहचान गये थे। अतः वसुदेव ने केवल उनकी ओर से छोड़े गये शस्त्रों का निराकरण ही किया। अंत में वसुदेव ने अपने नाम से चिन्हित बाण समुद्रविजय की ओर छोड़ा, जिसमें लिखा था कि हे महाराज! जो अज्ञात रूप से

आपके घर से निकल गया था, वही मैं आपका छोटा भाई वसुदेव हूँ। 100 वर्ष बीत जाने पर वह आपके पास आया है व आपके चरणों में प्रणाम करता है। तभी समुद्रविजय आदि ने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये व वे अपने छोटे भाई वसुदेव के पास पहुँच गये। उधर वसुदेव भी रथ से उतरकर बड़े भाई के चरणों में गिर गये। तभी वसुदेव के शेष भाई भी आ गये व सभी ने प्रेमाश्रुओं से युद्धस्थल को भिगो दिया। तब सभी के सम्मुख रोहिणी का वसुदेव के साथ राजकीय सम्मान के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

अथनंतर किसी समय रोहणी ने स्वप्न में विशाल सफेद गज, बड़ी लहरों से युक्त समुद्र, पूर्ण चंद्रमा व मुख में प्रवेश करता श्वेत सिंह देखा जो उसके होने वाले धीर, वीर, अलंघ्य, चंद्रमा के समान कांति वाले, अद्वितीय, पृथ्वी के स्वामी, जनता के प्यारे पुत्र होने के सूचक थे। कालावधि पूर्ण होने पर रोहणी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नामकरण संस्कार के समय पदम/राम/बलराम नाम रखा गया। वास्तव में यह नौवें बलभद्र थे। इनका जन्म रुधिर के यहां अरिष्टपुर नगर में हुआ था। जन्मोत्सव के बाद जरासंध राजगृह लौट गये। एक बार श्री मंडप में एक विद्याधरी ने आकर वसुदेव से कहा कि आपकी पत्नी वेगवती व हमारी पुत्री वालचंद्रा आपके दर्शन करना चाहती है; तब उस विद्याधरी के साथ वसुदेव गगन बल्लभपुर नगर चले गये। समुद्रविजय आदि शेष भाई शौरीपुर चले गये। बल्लभपुर में वसुदेव का विवाह बालचंद्रा से हुआ। बाद में वसुदेव वेगवती के दिये विमान से दोनों स्त्रियों के साथ अलिंगपुर नगर गये व वहां विद्युतवेगा से मिले। वहां से अपनी पूर्व पत्नी मदनवेगा व पुत्र अनावृष्टि को लेकर गंधसमृद्ध नगर गये। वहां से गांधार राजपुत्री व अपनी पूर्व पत्नी प्रभावती को साथ लिया।

तत्पश्चात वसुदेव असित पर्वत नगर नरेश सिंहदृष्ट की पुत्री व अपनी पूर्व पत्नी नीलेश्या को साथ लेकर, किन्नरोदगोद नगर से श्यामा व श्रावस्ती से प्रियंगुसुन्दरी, बंधुमति को लेकर महापुर गये। वहां से सोमश्री को भी साथ लिया व

फिर इलावर्धनपुर नगर चले गये। वहां से रत्नावती को संग लेकर भद्रिलपुर से चारूहासिनी को साथ लिया। उसके पुत्र को उन्होंने भद्रिलपुर का राजा भी नियुक्त किया। तत्पश्चात जयपुर से अश्वसेना को ले, शालगुह नगर से पदमावती को भी साथ लिया। इसके बाद वसुदेव अपनी समस्त पूर्व पत्नियों को साथ लेकर वेदसामपुर नगर गये। वहां अपने पुत्र कपिल का राज्याभिषेक कर उसे वहां का शासक बना दिया। वहां से पूर्व पत्नी कपिला को साथ ले लिया। तत्पश्चात अचलग्राम से मित्रश्री को लेकर, तिलवस्तु से ब्याही 500 कन्याओं को ग्रहण कर, गिरितट से सोमश्री को लेकर चंपापुर पहुँचे। वहां से वे अपने साथ मंत्री पुत्री व स्वपत्नी गंधर्व सेना को अन्य पत्नियों के साथ विमान में सवार कर विजयखेट नगर ले गये। यहां से उसी विमान में विजयसेना को, कुलपुर से पदमश्री अवन्ति सुन्दरी, पुत्र सहित शूरसेना, जरा, जीवद्धसा व अन्य स्त्रियों को साथ लेकर शौरीपुर आ गये। जब वे शौरीपुर पहुँचे तो वहां सभी प्रजाजनों के साथ उनके अग्रजों ने राजकीय सम्मान के साथ वसुदेव का सभी स्त्रियों के साथ बड़ी ही धूमधाम से उत्सवपूर्वक नगर प्रवेश कराया।

कंस जन्म

एक बार गंगा व गंधावती नदियों के संगम पर एक विशिष्ट तापसी के आश्रम में गुणभद्र व वीरभद्र नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनि पधारे। इन मुनिवृंदों ने उस तापसी को उसकी जटाओं में पल रहे जूं, स्नान के समय मत्स्य व तापसी के कारण ईंधन में मरते बेकसूर जीवों को दिखाया; जिससे उस तापसी का हृदय परिवर्तन हो गया व उसने मुनिधर्म अंगीकार कर लिया। यही मुनिराज कभी मथुरा नगरी पधारे। वहां के नरेश उग्रसेन मुनि श्री के दर्शनों को गये व दर्शन करके नगर में घोषणा करवा दी कि महाराज श्री केवल हमारे ही महल में भिक्षा ग्रहण करेंगे; अन्यत्र नहीं। पर एक-एक माह के अंतर से तीन बार मुनि श्री के आहार चर्या हेतु आने पर भी—विभिन्न कारणों से राजकार्यों में व्यस्तता व भूल के कारण—उन मुनिराज को महलों में आहार नहीं मिला। तब प्रजा से ये सुनकर कि राजा न तो स्वयं भिक्षा देता है, और न ही दूसरों को देने देता है— मुनि श्री को क्रोध आ गया व उन्होंने निदान किया कि मैं इस राजा का पुत्र होकर इस राजा का निग्रह कर इसका राज्य प्राप्त करूं। ऐसा निदान करने पर उन मुनिराज की मृत्यु हो गई तथा वे निदान बंधानुसार राजा उग्रसेन की रानी पदमावती के गर्भ में आ गये।

उनके गर्भ में आने पर रानी पदमावती को बुरे स्वप्न आने लगे। पुत्र के पैदा होने पर माँ ने देखा कि वह क्रूर दृष्टि से अपने ही ओंठ डस रहा है। माता-पिता ने उस पुत्र के लक्षणों को विलक्षण जानकर उससे छुटकारा पाने का विचार किया। उन्होंने एक कांस की संदूक बनाई, उसमें पुत्र को रखा, साथ में एक परिचय पत्र भी रखा व उसे यमुना में विसर्जित करवा दिया। यह कांस की संदूक बहती हुई कौशांबी नगरी के समीप एक मदिरा बेचने वाली कलारन को मिली। इस कलारन का नाम मंजोदरी/मंदोदरी था। बड़े ही लाड़ प्यार से उसने इस बालक को पाल पोसकर बड़ा किया व उसका नाम कंस रख दिया; क्योंकि यह बालक उसे कांस

की पेटी में मिला था। बड़ा होने पर वह बालक बड़ा उद्दंड हो गया, बुरी आदतें उसमें समा गईं; जिससे परेशान होकर उस कलारन ने कंस को घर से निकाल दिया। कंस यहां-वहां भटकता हुआ शौरीपुर नगर पहुँच गया व वहां जाकर राजा वसुदेव का सेवक बन गया। यहीं वसुदेव ने उसे अपना शिष्य बनाकर उसे शस्त्र विद्या में पारंगत किया व उसे एक महान योद्धा बना दिया।

कभी वसुदेव अपने शिष्यों कंस आदि के साथ राजगृह नगर गये। वहां जरासंध ने घोषणा करवाई थी कि जो भी व्यक्ति/राजा सुरम्य देश के पोदनपुर के स्वामी सिंहरथ को युद्ध में परास्त कर उसे जीवित पकड़कर लावेगा, उसे इच्छित देश भेंट में देने के साथ अपनी पुत्री जीवद्धसा को भी विवाह दूंगा। यह सुनकर सिंहरथ पर सवार होकर कंस के साथ वसुदेव राजा सिंहरथ को पकड़ने सेना के साथ चल दिये। सिंहरथ के सामने आने पर वसुदेव ने वाणों से सिंहों की रस्सी काट दी। जिससे वे स्वच्छंद होकर राजा सिंहरथ की ओर भागे। इस दृश्य को देखकर सिंहरथ भयभीत हो गया। तभी कंस ने गुरु आज्ञा से सिंहरथ को बांध लिया। तब वसुदेव ने कंस की चतुराई को देखकर व खुश होकर कंस से वर मांगने को कहा; पर कंस ने उस वर को कभी आगे ले लेने को कहा। वे दोनों सिंहरथ को लेकर राजगृह पहुँचे तथा उसे जरासंध के हवाले कर दिया।

जरासंध यह देखकर अति प्रसन्न हो गया व अपनी पुत्री जीवद्धसा का विवाह वसुदेव से करना चाहा; पर वसुदेव के यह कहने पर कि कंस ने सिंहरथ को पकड़ा है; अतः जीवद्धसा का विवाह कंस से कर दिया जाए। पर विवाह के पूर्व जरासंध के कुल पूछने पर कंस ने कहा कि उसकी माँ मंजोदरी कौशांबी नगरी में कलारिन है। तब कलारिन को बुलवाया गया व कंस की मंजूसा में रखे पत्र को पहचान मानकर व कलारिन के यह कहने पर कि यह पुत्र मुझे इसी मंजूसा में रखा यमुना में मिला था, कंस को उग्रसेन व पदमावती का पुत्र मानकर जरासंध ने अपनी पुत्री जीवद्यसा

का विवाह कंस से कर दिया। कंस ने पूर्व बैर वश जरासंध से मथुरा का राज्य भी घोषणानुसार मांग लिया। कंस का पिता उग्रसेन मथुरा का शासक था। फिर भी जरासंध ने कंस को मथुरा का राज्य दे दिया। कंस ने यह सोचकर कि मेरे पिता ने ही मुझे यमुना में बहाया था; अतः राज्य प्राप्त करते ही उसने अपने पिता उग्रसेन व उनकी महारानी को बंदी बना लिया व नगर के मुख्य द्वार गोपुर के ऊपर उन्हें कैद कर लिया। कंस ने वसुदेव के उपकार का बदला चुकाने के लिए वसुदेव को मथुरा बुलाया व बड़ी विभूति के साथ राज-सम्मान देकर गुरु दक्षिणा स्वरूप अपनी बहन देवकी का विवाह वसुदेव के साथ करा दिया। देवकी उग्रसेन के भाई देवसेन की पुत्री थी।

कंस के शासन में एक बार कंस के बड़े भाई अतिमुक्तक नाम के मुनि आहार के समय कंस के महल में पधारे। तब कंस की पत्नी जीवद्यसा ने हंसी करते हुए राजमद में चूर होकर उन मुनिराज से कहा कि यह देवकी का ऋतुकाल का वस्त्र है, इससे आपकी छोटी बहन अपनी चेष्टा आपके लिए दिखला रही हैं। तब मुनिराज ने वचन गुप्ति छोड़ते हुए जीवद्यसा से कहा कि देवकी पुत्र ही तेरे पति को मारेगा। यह सुनकर जीवद्यसा को क्रोध आने पर मुनिराज ने आगे कहा कि न केवल वो तेरे पति को, बल्कि तेरे पिता को भी मारेगा और वह समुद्रांत पृथ्वी रूपी स्त्री का पालन भी करेगा। यह कहकर मुनिराज तो वापिस चले गये पर भयभीत व आगत डर से कांपती हुई जीवद्यसा कंस के पास गई व उन्हें मुनि द्वारा कहे वचन बतलाये। तब कंस यह सोचकर कि मुनि वचन कभी मिथ्या नहीं होते, डर गया। उसे वसुदेव द्वारा दिये गये धरोहर वचन याद आये। वह वसुदेव के पास पहुँचा व वसुदेव से धरोहर वचन मांगने लगा कि प्रसूति के समय देवकी का निवास मेरे महलों में ही रहेगा। वसुदेव ने तुरंत यह वचन कंस को दे दिया। पर बाद में सही बात मालूम चलने पर वसुदेव उन्हीं मुनिराज के पास गये व पूछा कि मेरा पुत्र कंस का विघाती क्यों और कैसे होगा? तब मुनिराज ने

विस्तार से पिछले भवों की कथा से समझाकर वसुदेव को न केवल संतुष्ट किया बल्कि यह भी बतलाया कि तेरा सातवां पुत्र कंस को मारेगा व तुम्हारे शेष छः पुत्र चरम शरीरी होंगे। अतिमुक्तक नाम के उन्हीं मुनिराज ने वसुदेव को यह भी कहा कि शीघ्र ही 22वें तीर्थंकर आपके वंश में उत्पन्न होंगे। यह सुनकर वसुदेव अति प्रसन्न हुए व मुनिराज को नमस्कार कर घर चले गये। हरिवंश पुराणानुसार उपरोक्त बातें मुनिराज ने वसुदेव को तब बतलाईं; जब आहार दान देने के पश्चात् वासुदेव व देवकी ने मुनिराज से स्वयं की दीक्षा का काल पूछा।

पाण्डु व धृतराष्ट्र विवाह तथा कौरवों, पाण्डवों का जन्म

अब हम पुनः पदम पुराण में कुरूवंश वर्णित कथा की ओर लौटते हैं। हरिवंश पुराणानुसार राजा धृत/व्यास से धृतराज व धृतराज की पत्नियों अंबिका, अंबालिका व अंबा नाम की स्त्रियों से क्रमशः धृतराष्ट्र, पांडु व विदुर उत्पन्न हुए।

व्यास ने बड़े होने पर अंधकबृष्टि से कुन्ती का विवाह अपने पुत्र पांडु से करने को कहा, पर पांडु के उस समय रोगी होने से यह नहीं हो सका। इससे पांडु अत्यन्त खेद को प्राप्त हुए। कभी रोगमुक्त होने पर वह वन में पुष्प शैय्या पर लेटे थे, तभी उन्हें जमीन पर पड़ी एक मुद्रिका दिखाई दी। इस मुद्रिका को पांडु ने उठा लिया। यह मुद्रिका वास्तव में एक विद्याधर, (जिसका नाम बज्रमाली था) की थी। वह अपनी खोई हुई मुद्रिका को ढूंढ़ता हुआ पांडु के पास आ पहुँचा। पांडु के पूछने पर उस विद्याधर ने बताया कि यह मुद्रिका अनमोल है, वह मनवांछित फल देती है व इसके पहनने से और कोई उसे देख नहीं सकता। तब पांडु ने उस विद्याधर को बतलाया कि यह मुद्रिका तो मुझे यहीं पड़ी मिली है। यदि मुद्रिका में ऐसा गुण है, तो यह मुद्रिका कुछ समय के लिए मुझे देने का कष्ट करें। मेरा कार्य पूर्ण होने पर मैं इसे आपको वापिस कर दूंगा। तब उस विद्याधर ने कुछ समय के लिए वह मुद्रिका पांडु को दे दी।

पांडु उस मुद्रिका को धारण कर सीधे अंधकबृष्टि के महल चंपापुर/शौरीपुर पहुँच गया व वह रात्रि में मुद्रिका के प्रभाव से अदृश्य होकर कुन्ती के महल में जा पहुँचा। यहां कुन्ती वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आसन पर बैठी थी व वह साक्षात रति सदृश्य लग रही थी। पांडु कुन्ती के रूप लावण्य को देखकर अधीर हो गया तथा वह कुन्ती के सामने प्रकट हो गया। अचानक पांडु को अपने सामने

देखकर कुन्ती रोमांचित हो गई व उसका हृदय प्रकंपित हो गया। वह पांडु की सुन्दर छवि को देखकर शीघ्र ही काम वासना से घिर गई। वह विचारमग्न होकर सोचने लगी कि इसकी जिह्वा में सरस्वती, हृदय में लक्ष्मी व अंग-प्रत्यंग में शोभा का आगार है; तब वहां मेरे लिए कौन सा स्थान रिक्त है; जहां मैं रह सकूं। तभी कुन्ती ने साहस बटोर कर पूछा—हे आर्य श्रेष्ठ—आप कौन हैं, आपका अभिप्राय क्या है व आप यहां कैसे प्रविष्ट हो गये? तब चतुर पांडु ने उत्तर दिया—कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नरेश व्यास पुत्र धृतराष्ट्र का मैं भाई हूँ। मैं आपके रुप, यौवन व गुणों पर मुग्ध होकर इस मुद्रिका की सहायता से आपके समीप आया हूँ। मेरा मन अब आपके अधीन हो चुका है। आप स्वीकार करो या नहीं। तब कुन्ती ने अपने पिता की आज्ञा के बिना कुछ भी कहने से मना कर दिया। तब पांडु बोले— जिस प्रकार उन्मत्त हाथी अंकुश की परवाह नहीं करता, वैसे ही कामी पुरुष लोक-लाज, धर्म, सदाचार, शास्त्र ज्ञान आदि को परे रख देता है। अतः अब या तो तुम मुझे सर्वस्व समर्पित कर दो या मेरे प्राण ले लो। मेरा शरीर काम के ताप से कंपित हो रहा है। तब कुन्ती के मौन रहने पर पांडु ने कुन्ती के गले में बांहे डाल दीं एवं उसके मुख पदम की सुगंधि लेने के लिए भ्रमर सा उस पर टूट पड़ा। अंत में दोनों परस्पर पूर्ण संतुष्ट होकर प्रमुदित हुए। इस तरह पांडु बार-बार अदृश्य होकर कुन्ती के पास निःशंक भाव से उससे काम क्रीड़ा करने लगा।

पर एक दिन कुन्ती की धाय ने उन दोनों को देख लिया। तब धाय के यह पूछने पर कि यह पुरुष कौन है? कुन्ती हतप्रभ हो गई। उसकी हृदयगति मंद हो गई, देहयष्टि जकड़ सी गई, अंग-प्रत्यंग सुन्न हो गये। किन्तु फिर भी वह धैर्य धारण कर धाय से बोली— हे धाय मां! इस पुरुष से मेरा पूर्व संबंध या परिचय भी नहीं था। मेरा चित्त भी स्थिर था; पर कर्म वश मैं इसके वाग्जाल में फंस गई व आत्म समर्पण कर बैठी। ये कुरु देश के राजा व्यास के पुत्र

पांडु हैं। ये वज्रमाली विद्याधर से प्राप्त अभीष्ट वस्तुदाता मुद्रिका प्राप्त कर अदृश्य हो रमण हेतु मेरे पास आते हैं। कुन्ती के ये वचन सुनकर धाय भावी अनर्थ व राजदंड की आशंका से कांप उठी व कुन्ती से बोली– किसी भी नारी को पुरुष के समीप एकांत में नहीं रहना चाहिए। तुमने कुल में कलंक लगा दिया। तब कुन्ती ने धाय माँ से कहा– हे माँ! अब तो इस घोर संकट के निवारण का उपाय सोचो, मुझे क्षमा कर दो। मैं उन्मत्त सी हो रही हूँ व पापी प्राणों के विसर्जन का उपाय ढूंढ़ रही हूँ। यह सुनकर धाय माँ ने कुन्ती से कहा ढाढस रखो, कोई उपाय करूंगी। ऐसा कहकर इस रहस्य को गुप्त रखा।

कुछ दिनों के बाद पांडु के संसर्ग से कुन्ती के गर्भ धारण के लक्षण प्रकट होने लगे। एक दिन कुन्ती के माता-पिता ने गर्भ लक्षणों से युक्त कुन्ती को देख लिया। तब उन्होंने धाय को बुलाकर फटकार लगाई–तुझे ज्ञान नहीं कि यदि कन्या एवं कुलवधू को उन्मुक्त कर दिया जावे तो सच्चरित्र व विचारशील होने पर भी वह अन्य पुरुषों के संसर्ग से कुल की कीर्ति को अवश्य ही नष्ट कर डालती है। तूने कुन्ती की ऐसी रक्षा की कि हमारे मुख पर कालिख पुत गई है। स्त्री एवं पुरुषों का संसर्ग अग्नि व घृत के समान होता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष कभी दोनों को एक स्थान पर नहीं रखते। तुमने अत्यन्त निंदनीय काम किया है। तुमने रक्षक होकर भक्षक का काम किया है। तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। यह सुनकर धाय थर-थर कांपने लगी। किन्तु बाद में कुछ साहस बटोरकर निवेदन करने लगी–इसमें न मेरा दोष है, न कुन्ती का। यह कहकर पूरी कथा उन्हें (कुन्ती के माता-पिता को) सुना दी व कहा कि कुन्ती व पांडु ने आपस में गंधर्व विवाह कर लिया था। अब आप जैसा चाहें वैसा करें। यह सुनकर कुन्ती के माता-पिता सोच विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस रहस्य को अत्यन्त गुप्त रखा जावें। परन्तु सावधानी रखने पर भी यह रहस्य पानी के ऊपर पड़ी तेल की बूंद की तरह

फैल गया व कालान्तर में कुन्ती ने एक तेजस्वी व सुन्दर शिशु को जन्म दिया। यह चर्चा शीघ्र ही संपूर्ण नगर में फैल गई, पर राजदंड के भय से कोई कुछ कह न सका।

राजा अंधकबृष्टि ने मंत्रियों से परामर्श कर इस पुत्र का नाम कर्ण रखा व उसे बहुमूल्य रत्नजड़ित कवच कुंडल एवं वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर एक बहुमूल्य मंजूषा में रखकर यमुना नदी के प्रवाह में छोड़ दिया। यमुना नदी के तट पर ही चंपापुरी नाम की नगरी थी। इस नगरी का राजा भानु था। राधा उसकी प्राणवल्लभा थी। पर इन दोनों के कोई संतान नहीं थी; अतः वे सदा संतापित रहते थे। प्रारब्धवश कुन्ती पुत्र कर्ण की मंजूषा इसी नगरी के तट पर आ लगी। यह मंजूषा नरेश को मिली। इस मंजूषा को खोलकर व उस मंजूषा में नवजात बालक को पाकर वह अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ। एक निमित्त ज्ञानी के पूर्व में ही बतलाये अनुसार राजा उस बालक को मंजूषा सहित अपने महलों में ले गया व उस नवजात बालक को ले जाकर अपनी महारानी की गोद में डाल दिया। उस नवागत पुत्र को ग्रहण करते समय महारानी अपना कान खुजला रही थी; अतः यहां भी उस बालक का नाम कर्ण रखा गया। पुराण में ऐसा भी उल्लेख है कि कुन्ती के बालक के जन्म का समाचार कानोंकान संपूर्ण नगर में फैल गया था; इसलिए इस बालक का नाम कर्ण रखा गया था। यहां यह बात विशेष ध्यान देने की है, कि अंधकबृष्टि चंपा नगर/शौरीपुर का राजा था; वहीं भानु चंपापुरी का शासक था। चूंकि कर्ण का लालन-पालन चंपापुरी नरेश भानु ने किया था; अतः कर्ण को भानुपुत्र अर्थात् सूर्य पुत्र भी कहते हैं।

नरेश अंधकबृष्टि कुन्ती की घटना से क्षुब्ध थे, किन्तु उन्होंने इस समस्या के हल के लिए अपने नीति निपुण मंत्रियों एवं पुत्रों के साथ विचार विमर्श के बाद यह निर्णय लिया कि कुन्ती का विवाह पांडु के साथ ही कर दिया जावे; क्योंकि कुन्ती से अब कोई और विवाह नहीं करेगा। अतः अंधकबृष्टि ने तमाम भेंट उपहारों के साथ एक चतुर

दूत को पांडु के पिता के पास भेजा। वह दूत अनुमति लेकर राजा व्यास के पास जाकर भेंट व उपहार उनके सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर निवेदन करने लगा कि मैं चंपा नगरी/शौरीपुर नरेश अंधकबृष्टि का दूत हूँ व अपने राजा की इस इच्छा को बतलाने आया हूँ कि आपके चिरंजीव राजकुमार पांडु का विवाह उनकी पुत्री कुन्ती के साथ हो। राजा व्यास को पहले से ही पता था कि कुमार पांडु कुन्ती पर आसक्त हैं; अतः उन्होंने यह प्रस्ताव आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया व दूत को यथोचित उपहार देकर विदा किया। पांडु की तो मानो मनोकामना ही पूर्ण हो गई थी। अतः शीघ्र ही विवाह की तैयारियां शुरू हुईं व सुभद्रा ने अपने पुत्र पांडु की आरती उतार कर बारात को चंपानगरी के लिए विदा किया।

अंधकबृष्टि नरेश ने बारात का जोरदार स्वागत किया। नगर की सज्जा देखकर बाराती भी खुश थे। राज पुरोहित ने पांडु व कुन्ती का विवाह सम्पन्न कराया। वहीं कुन्ती की छोटी बहन माद्री ने भी पांडु का वरण किया। राजा ने विवाहोपरांत उन्हें गज, अश्व, रथ, स्वर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र व शस्त्र भेंट किये। विवाहोपारांत पांडु अपनी दोनों पत्नियों के साथ हस्तिनापुर को प्रस्थान कर गये। वर पांडु के आगमन की सूचना सुनकर नगर की सभी नारियां जो जिस अवस्था में थी, उसी रूप में पांडु व उसकी पत्नियों को देखने दौड़ी आईं। वे अपनी सुधबुध भी भूल बैठीं। जिन्हें देखकर जन सामान्य ने प्रमुदित होकर उनका जी भरकर उपहास उड़ाया।

नगरवासियों ने वर-वधू की आरती उतारी व उनकी अभ्यर्थना की। महलों में प्रवेश के बाद वे सभी सुखपूर्वक रहने लगे। अब कुन्ती की बाहु-लताओं के प्रगाढ़ आलिंगन में कुमार पांडु कामदेव के कारागार में बंदी थे। इस प्रकार भांति-भांति के भोग विलासों, जिनेन्द्रदेव की महिमा वाले उत्सवों, सत्पात्रों को दान एवं पुण्य के कार्यों में कुमार पांडु का जीवन व्यतीत होने लगा।

वहीं राजा भोजकबृष्टि ने भी अपनी पुत्री गांधारी का विवाह राजा व्यास के ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र से कर दिया। उनके लघु पुत्र बिदुर का विवाह राजा देवक की पुत्री कुमुद्वती से हुआ। एक रात्रि में कुन्ती ने अंतिम प्रहार के स्वप्न में मदमस्त गजराज, कल्लोल करते समुद्र, चंद्रमा व कल्पवृक्ष को देखा; तब राजकुमार पांडु ने स्वप्न सुनकर कुन्ती को बताया कि आपके गर्भ में आया बालक तेजस्वी, गंभीर, संसार को आनंदित करने वाला या याचकों की मनाकामनाओं को पूर्ण करने वाला होगा। उसके चार लघु भ्राता भी होंगे। यह सुनकर हर्ष से फूली कुन्ती आनंदमग्न हो गई। कालावधि व्यतीत होने पर कुन्ती ने अच्युत स्वर्ग से चयकर आये एक अति सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इस खुशी में नगर में चारों ओर आनंद छा गया। याचकों को मनवांछित दान देकर, विद्वानों व श्रेष्ठियों का सत्कार कर उन्हें भी बहुमूल्य वस्तुयें प्रदान की गईं। नामकरण संस्कार के दिन इस पुत्र का नाम युधिष्ठिर रखा गया। युधिष्ठिर बड़े होकर कला, शील, कांति, बल एवं ज्ञान सभी में प्रवीण हो गये थे; अतः प्रजा इन्हें स्नेह से धर्मराज भी कहने लगी थी। इसके पश्चात् कुन्ती ने दूसरे पुत्र भीम को जन्म दिया।

भीम सर्वतोमुखी विद्या के धनी व प्रचंड बलशाली थे। बुद्धि, रुप, गुण एवं साहस की वह प्रतिमूर्ति थे। स्वप्नावस्था में प्रचंड वायु प्रवाह में कल्पवृक्ष के रूप में उसे गर्भ में आते माता कुन्ती ने देखा था; इसलिए भीम को 'मरुतस्य' भी कहते हैं। तत्पश्चात कुन्ती ने तृतीय पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम अग्निपुत्र/ धनंजय रखा गया। इस पुत्र का तेज, शौर्य व सौंदर्य अतुलनीय था। उसके शरीर की कांति अर्जुन अर्थात् रुपा/चांदी के समान स्वच्छ थी; इसलिए इसका नाम अर्जुन भी था। माता कुन्ती ने स्वप्न में इन्द्र को देखकर अर्जुन को प्राप्त किया था। इसीलिए अर्जुन को इन्द्रसून या सत्पुरुष भी कहते हैं। तत्पश्चात कुन्ती की बहन माद्री ने भी होनहार, अति सुन्दर व स्वस्थ दो सुन्दर

बालकों को जन्म दिया। इनके नाम नकुल व सहदेव रखे गये। इन पांचों भाइयों में अनुपम भ्रातृ-स्नेह था।

उधर मेघ एवं विद्युत की तरह पाण्डु के बड़े भाई धृतराष्ट्र व गांधारी अभिन्न थे। उनमें परस्पर अति स्नेह था। अतः गांधारी ने भी प्रथम पुत्र को जन्म दिया व नामकरण संस्कार के पश्चात् उसका नाम दुर्योधन रखा। प्रथम पुत्र प्राप्ति के उपलक्ष्य में राजा ने सभी कारागृह बंदियों एवं पिंजड़े में बंद पक्षियों को मुक्त कर दिया था। फिर गांधारी ने द्वितीय पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम दुःशासन रखा गया। दुःशासन स्पष्ट वक्ता व शूरवीर था। तत्पश्चात गांधारी व धृतराष्ट्र की अन्य रानियों ने 98 अन्य पुत्रों को जन्म दिया, इनमें दुर्द्धर्षण व रणश्रांत प्रमुख थे। सभी पांडु पुत्र पांडव एवं धृतराष्ट्र पुत्र कौरव अपने पितामह गांगेय/भीष्म के संरक्षण में रहते थे, वे ही इन्हें शिक्षित करते थे। गुरु द्रोणाचार्य ने इन सबको शस्त्र विद्या में निपुण किया था। सभी शिष्यों में अर्जुन सर्वाधिक उत्साही, परिश्रमी व अध्यवसायी था। वह गुरु कृपा का विशेष पात्र था। शब्दभेदी बाण संधान में अर्जुन को द्रोणाचार्य ने ही निपुण किया था। अर्जुन विनयी, सरल-चित्त व निष्पाप शिष्य था। भीम मल्लयुद्ध व गदायुद्ध का अत्यन्त प्रचंड योद्धा था। धृतराष्ट्र व पांडु के बड़े हो जाने पर हस्तिनापुर नरेश व्यास ने अपना राजपाट धृतराष्ट्र व पांडु को सौंप दिया था।

एक बार सैन्य दलबल सहित पांडु अपनी द्वितीय पत्नी माद्री के साथ वन क्रीड़ा को गये। वहां कामोत्पादक दृश्यों के अवलोकन से पांडु को कामलिप्सा जागी। यहां-वहां कामक्रीड़ा करने के बाद एक लता मंडल में उन्होंने कामक्रीड़ा की। इसके पश्चात् पांडु ने वहीं एक हिरण युगल को कामरत देखा। अनायास ही पांडु ने बाण से हिरण को मार दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे कुमार! तुमने मूक प्राणी का अकारण बध कर ठीक नहीं किया। यदि आप ही इन्हें मारेंगे, तो इनकी रक्षा कौन करेगा? हिंसा से सुख की आशा करना दुराशा मात्र है। यह आकाशवाणी

सुनकर पांडु सोच में पड़ गये कि मैंने इस निरपराध मूक हिरण की हत्या कर बड़ा ही क्रूर कार्य किया है। इस प्रकार संसार की विचित्र दशा को सोचते-सोचते वे अचेत हो गये।

चेतना वापिस आने पर कुछ दूरी पर उन्हें सुव्रत नाम के महा ऋद्धिधारी मुनिराज के दर्शन हुए। वे जितेन्द्रिय व क्षमाशील थे। वे साम्यमूर्ति, उद्भट विद्वान एवं क्षेमंकर थे। वे दुर्धर तपस्वी थे। उनके समीप आते ही पांडु उनके चरणों में गिर गये। इसके बाद पांडु ने उन्हें उच्चासन देकर विराजमान कराया। मुनिश्री ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देकर उन्हें संबोधित किया व मुनिधर्म के तेरह अंग–पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्ति–बतलाये व कहा कि मुनिधर्म के पालने से मोक्ष व श्रावक धर्म के पालने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। तुम्हारा मात्र 13 दिन का जीवन शेष बचा है। अतः अब सावधान होकर धर्म का पालन करो। इसमें ही तुम्हारा कल्याण है। इसके बाद पांडु ने घर आकर वन का सारा वृतांत अपने परिवार वालों को सुनाया व संपूर्ण परिवार को सांत्वना देकर एवं सांसारिक मोहमाया से अपने चित्त को विमुख कर नीर-क्षीर विवेक द्वारा शुभकारी धर्म ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने साधर्मी जनों को चार प्रकार का दान दिया व परिवार के सभी सदस्यों से क्षमा-याचना कर वन गमन कर गये। इसके बाद गंगा तट पर आकर पांडु ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली तथा वे आत्म-ध्यान में लीन हो गये। पंच परमेष्ठी का सदा ध्यान करते रहने से उनका हृदय उत्तमोत्तम भावों से पूर्ण हो गया। दुःसह परीषहों को सहन करने से उनका विलक्षण आत्मबल प्रकट हो गया। वह अपने मन मंदिर में निरंजन अरहंत देव को स्थापित कर सदा अर्चना किया करते थे। इसी अवस्था में उन्होंने अपने प्राणों का परित्याग किया व सौधर्म स्वर्ग में जन्म लिया। पांडु के पद चिन्हों पर चलकर माद्री ने भी गंगा तट पर ही संन्यास धारण कर लिया। घोर तत्पश्चरण कर उन्होंने अपने पति के साथ ही स्वर्ग को प्राप्त किया।

अपने पति पांडु के स्वर्ग गमन की सूचना प्राप्त होने पर कुन्ती भी गंगा तट पर आकर घोर विलाप करने लगी। कौरवों ने भी उसके इस दु:ख में पूर्ण साथ दिया। समय बीतने पर धृतराष्ट्र निष्कंटक होकर हस्तिनापुर पर शासन करने लगे।

हरिवंश पुराण के अनुसार राजा धृतराज के भाई रूक्मण जिनका विवाह गंगा से हुआ था के पुत्र गांगेय/भीष्म पितामह थे। पितामह गांगेय/भीष्म पितामह की छत्रछाया में सभी कौरव व पांडव प्रसन्न थे। गुरु द्रोणाचार्य उनके सहायक व पथ प्रदर्शक थे। एक बार धृतराष्ट्र वन क्रीड़ा को गये। वहां उन्हें एक निर्ग्रंथ मुनिराज के दर्शन हुए। राजा धृतराष्ट्र ने उन्हें नतमस्तक होकर प्रणाम किया। मुनिराज ने उन्हें धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया। धृतराष्ट्र ने मुनि श्री के उपदेशों का लाभ लेने के पश्चात् मुनिराज से प्रश्न किया कि कुरू कुल के इस विशाल राज्य को मेरे पुत्र दुर्योधन आदि भोगेंगे अथवा मेरे भ्राता पांडु के पुत्र पांडव? मेरे दुर्योधन आदि एक शतक पुत्रों एवं पांचों पांडवों का उत्कर्ष-अपकर्ष भविष्य में कैसा होगा? करुणा कर यह बतलाने की कृपा करें।

तब मुनि श्री ने बतलाना शुरू किया कि मगध देश की राजगृही में जरासंध का राज्य है। वह शत्रुओं से अपराजित है। किन्तु इसी बीच धृतराष्ट्र ने पुन: प्रश्न कर दिया कि हे प्रभो! उसका मरण किस प्रकार होगा? तब मुनि श्री पुन: बोले कि तुम्हारे इस राज्य के कारण कौरवों व पांडवों में महा भयंकर युद्ध होगा। कुरुक्षेत्र के इस विशाल युद्ध में तुम्हारे समस्त पुत्र परास्त या निहत होंगे व पांडव हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन पोषण करेंगे। इसी कुरुक्षेत्र में जरासंध से श्रीकृष्ण का युद्ध होगा व उन्हीं के हाथों जरासंध की मृत्यु होगी। मुनि श्री के मुखारबिंद से यह सब सुनकर धृतराष्ट्र चिंतित हो उठा तथा मुनिश्री की वंदना कर हस्तिनापुर लौट आया । वहां से लौटने के पश्चात् धृतराष्ट्र की जीवन चर्या बदल गई। वह जिनागम

के उपदेशों में निमग्न रहने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर भी सदा धर्माचरण में लीन रहने लगे।

मुनिश्री की भविष्यवाणी सुनने के पश्चात् धृतराष्ट्र चिंतामग्न रहने लगे तथा संसार की असारता के बारे में सोचने लगे। उन्होंने ताऊ भीष्म पितामह/गांगेय को अपने पास बुलाकर मुनिराज की कही सभी बातें उन्हें बतला दीं व कहा कि अब मुझे विरक्ति उत्पन्न हो रही है। दोनों की सलाह के पश्चात् धृतराष्ट्र ने अपने शतक पुत्रों एवं पांडवों को बुलवा लिया तथा गांगेय व द्रोणाचार्य के सामने उन सभी के सबल कंधों पर कुल के राज्य का भार सौंप दिया। इसके बाद धृतराष्ट्र अपनी माता सुभद्रा के संग वन गमन कर गये। वहां सुव्रत मुनि महाराज के सामने केशलोंच कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। इधर दुर्योधन व पांडु पुत्र मिलकर योग्यता पूर्वक राज्य का संचालन करने लगे। चारों ओर परम शान्ति थी।

पांडव प्रचंड तेजस्वी थे; इसलिए दुर्योधन आदि शस्त्र संचालन से संबंधित प्रतियोगिताओं में उनसे परास्त हो जाते थे। पांडवों की बार-बार विजय से दुर्योधन आदि कौरव अदंर ही अंदर पांडवों से ईर्ष्या करने लगे थे। पांडवों की विजय उन्हें असहय सी हो चली थी। दोनों के बीच विरोध का बीज अंकुरित होने लगा। कुछ समय पश्चात् कौरव उद्दंडता पर उतर आये तथा विरोध का वह बीज शत्रुता के बट वृक्ष के रूप में परिणत सा दिखाई देने लगा। दुर्योधन आदि राज्य के विषय को लेकर एक दूसरे के विरोधी से बनने लगे। तब इस द्वेष भाव को यहीं विनष्ट कर देने की अभिलाषा से गांगेय, विदुर, द्रोण, मंत्री शकुनी व दुर्योधन मित्र शषरोम आदि गुरुजनों व विद्वानों ने मध्यस्थता कर राज्य के दो बराबर भाग कर एक कौरवों को व दूसरा पांडवों को दे दिया। किन्तु कौरवों से पांडवों की खुशहाली देखी नहीं जा रही थी। जिससे ईष्यालु दुर्योधन आदि कौरव संधि में दोष निकलने लगे व कहने लगे कि राज्य के आधे भाग पर केवल पांच पांडव व शेष आधे भाग पर हम 100

भाई! यह कहां का न्याय है। किन्तु पांडवों में युधिष्ठिर शान्तिप्रिय व धर्मनिष्ठ थे। अतः वह अपने शेष चार भाइयों में रोष उत्पन्न होने पर उन्हें शांत कर देते थे। दुर्योधन की कर्ण से मित्रता थी और वे जरासंध से मिलकर निरंतर बैठकें किया करते थे।

यद्यपि कौरवों के हृदय का अभिप्राय कुटिल हो चुका था; पर वे वास्तविक अभिप्राय को गुप्त रखते थे। वे पांडवों से मिलने पर उनके सम्मुख कपट रूप में स्नेह भाव ही प्रकट करते थे। एक दिन महाबली भीमसेन कौरवों के साथ क्रीड़ा करने वन में गये; जहां भीम ने धूल में लेटकर कहा कि जो मुझे इससे निकाल लेगा; वही बड़ा बली होगा। सभी कौरव मिलकर भी यह न कर सके; अतः सभी कौरव भाई ग्लानि से भरे नगर को चले गये। इसी प्रकार एक दिन फिर वन क्रीड़ा के समय एक आंवले के वृक्ष पर कौरवों में से कोई न चढ़ सका, पर भीम उस पेड़ पर आसानी से चढ़ गया। यह देखकर कौरवों को अपनी दुर्बलता पर ग्लानि होने लगी। तब सभी कौरवों ने मिलकर भीम को उस पेड़ से गिराने के काफी प्रयास किये, पर वे सफल नहीं हुए। कौरवों के इस शत्रु भाव को भीम ताड़ गये व बोले-तुम सभी मिलकर इस पेड़ को उखाड़ फेकों; क्योंकि इसके हिलाने से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ने वाला।

भीम की यह बात सुनकर कौरव लज्जित हो गऐ। पुनः एक दिन वन क्रीड़ा में ही उसी आंवले के पेड़ पर भीम ने कौरवों की सहायता कर उन्हें चढ़ा दिया व बाद में स्वयं उस पेड़ को उखाड़कर तेज गति से दौड़ने लगे; जिससे अनेक कौरव भाई पेड़ से गिरकर चोटिल हो गये, तब एक भाई के निवेदन करने पर भीम को करुणा आ गई, तब भीम इस वृक्ष के साथ खड़े हो गये व कौरवों को धैर्य बंधाया। जब सभी कौरव घर चले गये तो उन्होंने मिलकर भीम से प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लिया। तब एक बार एक सरोवर के तट पर कौरवों ने भीम को उस सरोवर में धकेल दिया, पर भीम जब तैरकर बाहर निकला, तो सभी

कौरव घबरा गये। फिर भीम ने एक-एक कर सभी कौरवों को उस सरोवर में फेंक दिया। वे तैरना नहीं जानते थे; इसलिए बड़ी मुश्किल से वे सब उस सरोवर से निकल पाये।

यह सब देखकर दुर्योधन ने एक दिन अपने मंत्रियों व अनुजों की बैठक बुलाई व उस बैठक में कहा कि यह भीम पूर्णतः दुर्जेय है। इससे प्रतिस्पर्धा करना हम लोगों के लिए असंभव है। इसका विनाश किये बिना हम लोगों का कल्याण नहीं हो सकता। शत्रु की शक्ति में वृद्धि के पूर्व ही उसको जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। तब सभी ने दुर्योधन की इस बात से सहमति जताई। भीम के बध का अवसर ढूंढा जाने लगा। एक दिन जब भीम प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा था, तो दुर्योधन ने उसे बांध लिया व अनुजों की सहायता से भीम को गंगा नदी में फेंक दिया। नींद खुलने पर भीम ने गंगा नदी में अपने को बंधा असहाय पाया; अतः पहले तो उसने अपनी देह को जोर से फुलाया; जिससे उसके बंधन टूट गये। फिर भीम काफी देर तक नदी के जल में पड़ा रहा। तत्पश्चात बड़े ही आनंद से बाहर निकलकर महलों को लौट गया। कौरव उसे देखकर आश्चर्य चकित हो गए। प्रतिशोध की ज्वाला कौरवों के मन में अभी भी पल रही थी। अतः दुर्योधन ने एक दिन भीम को प्राणनाशक सांघातिक विष मिला भोजन करवा दिया; पर भीम को कुछ नहीं हुआ। सत्य ही है, पुण्यात्माओं के सामने हलाहल भी अमृत के समान हो जाता है। भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, राक्षस आदि सभी, धर्मात्माओं को देखते ही पलायन कर जाते हैं। इसीलिए जो बुद्धिमान एवं विवेकशील पुरुष होते हैं; वे सदैव धर्म रूपी रथ पर आरूढ़ रहते हैं।

फिर समय की गति के साथ परिवर्तन होने लगे। भीष्म पितामह/गांगेय, संभ्रात व्यक्तियों व शिष्यों के अनुरोध पर द्रोणाचार्य का विवाह गौतम की पुत्री अश्विनी से हो गया। जिनसे अश्वत्थामा नाम के पुत्र ने जन्म लिया। अश्वत्थामा अत्यन्त बुद्धिमान, धैर्यवान, धर्मात्मा व महापराक्रमी था;

साथ ही अत्यन्त रूपवान भी था। अश्वत्थामा ने कौरवों व पांडवों के साथ अपने पिता से शस्त्र-विद्या सीखीं थीं; किन्तु अर्जुन गुरु भक्त था। उसकी दृढ़ निश्चयी गुरु भक्ति प्रशंसनीय थी। इसलिए द्रोणाचार्य ने अपनी संपूर्ण शस्त्र विद्यायें अर्जुन को प्रदान कर दी थीं। एक बार कौरव तथा पांडवों को लेकर धनुर्विधा की परीक्षा हेतु द्रोणाचार्य उन्हें वन में ले गये व एक पेड़ पर बैठे कौएं की दाहिनी आंख भेदने को सभी से कहा। पर सभी के मौन रहने पर स्वयं द्रोणाचार्य ने उसकी आंख भेदने के लिए लक्ष्य किया। तभी अर्जुन ने विनम्रता से अपने गुरु से निवेदन किया कि हे आचार्य विशारद! आपका ऐसे सामान्य लक्ष्य को वेधना दीपक के सहारे सूर्य को ढूंढ़ने के प्रयास जैसा है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं यह कार्य कर सकता हूँ। तब अर्जुन ने गुरु आज्ञा पाकर चंचल कौएं के चंचल नेत्रों को बेधने हेतु एकाग्रचित्त होकर बाण छोड़ दिया। बाण सटीक निशाने पर लगा। तब सभी ने अर्जुन की धनुर्विधा की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अर्जुन के इस प्रबल पराक्रम को देखकर कौरवों का हृदय अवश्य क्षुब्ध हो गया।

एकलव्य की गुरु-भक्ति

कई दिनों के पश्चात् एक दिन अर्जुन धनुष बाण के साथ वन में विचरण कर रहे थे; तब उन्होंने एक विकराल श्वान को देखा। उस श्वान का जबड़ा बाणों से भरा था। यह दृश्य देखकर अर्जुन सोच में पड़ गया कि ऐसा कौन धनुर्धर है, जिसने अपनी विलक्षण प्रतिभा से श्वान का मुख अबरुद्ध कर दिया है। निश्चय ही वह अद्वितीय धनुर्धर शब्दभेदी बाण का ज्ञाता होगा। पर यह कला तो गुरु जी ने केवल मुझे सिखाई है। इसी खोज में अर्जुन गहन वन की ओर चला गया। काफी दूर जाने पर अर्जुन को धनुष बाणों के साथ एक भील पुत्र दिखाई दिया। अर्जुन ने उसका परिचय पूछा। तो वह भील पुत्र बड़े ही अभिमान के साथ बोला—हे आर्य पुत्र! मैं धनुर्धारियों को भय व अन्य को प्रसन्नता प्रदान करने वाला एक भील पुत्र हूँ व शब्दभेदी वाणों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता हूँ।

तब अर्जुन ने उस भील बालक से पूछा कि क्या आपने ही एक श्वान के मुख को वाणों से भर दिया था। क्या आपकी बाण विद्या की ही यह अपूर्व चमत्कृति थी। तब उस वीर भील बालक ने स्वीकारते हुए कहा कि हां। तब अर्जुन ने उस भील बालक से पुनः प्रश्न किया कि ये विद्या आपने किससे सीखी है। तब उस भील बालक ने बड़े ही सहज भाव से उत्तर दिया कि आप महा धनुर्धर एवं बाण विद्या में सिद्धहस्त आचार्य श्री द्रोणाचार्य से तो अवश्य परिचित होंगे। वही मेरे सदगुरु हैं। उस भील बालक के वचन सुनकर अर्जुन आश्चर्य में पड़ गये व सोचने लगे कि इस असभ्य भील बालक के गुरु द्रोणाचार्य हो ही नहीं सकते। तब अर्जुन ने उस बालक से कहा कि वे तो हमेशा हमारे साथ रहते हैं। वे आपके गुरु कैसे हो सकते हैं। तब वह भील बालक बोला—मेरे निवास के पास ही एक बहुत सुन्दर स्तूप है; उसे ही मैंने द्रोणाचार्य गुरु मानकर इस विद्या में महारथ हासिल की है। ऐसा कहकर वह बालक अर्जुन को उस स्तूप के पास ले

गया व कहा कि जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार इस स्तूप रूपी द्रोणाचार्य के संयोग से ही मुझे यह धर्नुविद्या प्राप्त हुई है। इसी की मैं आराधना करता हूँ। तब अर्जुन ने उस बालक से कहा कि हे शवरोत्तम! तुम धन्य हो, तुम्हारा कार्य महान है। तुम गुणवान हो, गुरुभक्त परायण हो व अग्रणी ज्ञानीजनों को भी मान्य हो। ऐसा कहकर अर्जुन वापिस हो गये। अर्जुन ने तुरंत इस घटना का संपूर्ण विवरण गुरु द्रोणाचार्य को कह सुनाया व कहा कि वह बुद्धिहीन भील आपको गुरु मानकर सदैव ही निरपराध मूक प्राणियों पर प्रहार करता रहता है। वह अति बलवान किन्तु निशृंषता से ओतप्रोत है।

अर्जुन के ये वचन सुनकर द्रोणाचार्य को गहन विषाद हुआ तथा उसी क्षण वे अर्जुन को साथ लेकर उस भील बालक के निवास की ओर चल दिये। वहां पहुँचने पर उस भील बालक ने उन दोनों को उत्तम आसन पर बैठाकर यथोचित आदर सत्कार किया; पर वह भील बालक यह न जान सका कि यही द्रोणाचार्य हैं। तभी द्रोणाचार्य ने उस बालक से पूछ लिया कि आपके गुरू कौन हैं? तब वह बोला—मेरे गुरू अनेक रणकलाओं के ज्ञाता, प्रसिद्ध धनुर्धर एवं जगतबंध्य महापुरुष द्रोणाचार्य हैं। न जाने वह कौन सा शुभ अवसर आयेगा; जब मैं उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन कर अपने को कृत्य-कृत्य समझूंगा। यदि मैं गुरु की संप्रति प्रत्यक्ष देख पाऊं तो उनके चरणों पर अपने आपको न्यौछावर कर दूंगा। तभी गुरु द्रोण बोले— मैं ही द्रोणाचार्य हूँ। तब उस भील पुत्र के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उसका मुखमंडल हर्ष से दमक उठा व उसने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया। उसके तन मन की सुधी जाती रही। जैसे उसे अनमोल रत्न मिल गया हो। उसने बार-बार गुरु चरणों में अपना मस्तक रख अपनी भावनायें प्रकट कीं।

तब गुरु द्रोण बोले— 'तुम्हारे सदृश्य एकनिष्ठ शिष्य मैंने भूतल पर नहीं देखा है। मैं तुमसे एक याचना करने आया हूँ। यह सुनकर वह भील बालक स्तब्ध रह गया। बोला—मुझ

अकिंचन के पास है ही क्या, फिर भी यथासामर्थ्य अपने गुरु को प्रसन्न करने के लिए वह सब मैं न्यौछावर कर सकता हूँ, जो मेरे पास है। तब गुरु द्रोण ने कहा– तुम अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को जड़ से काटकर मुझे दान कर दो। ऐसा सनुकर उस गुरुभक्त ने तुरंत अपना अंगूठा काटकर अपने गुरु द्रोणचार्य को समर्पित कर दिया। यह वीर बालक एकलव्य था। तब गुरु द्रोणचार्य ने एकलव्य से कहा कि तुम्हारे द्वारा निपराध मूक वन्य प्राणियों का प्रतिदिन होने वाला वध अब नहीं हो सकेगा। तुम सदा इस भीषण पाप से बचे रहोगे। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। ऐसा कहकर गुरु द्रोणाचार्य अर्जुन के साथ वापिस हो गये।

कृष्ण जन्म व लीलायें तथा कंस-वध

उधर शौरीपुर से वसुदेव अपनी पत्नी के साथ कंस को दिये वचन के अनुसार मथुरा में रहने लगे। कंस अपनी मृत्यु की आशंका से शंकित होकर वसुदेव की सेवा शुश्रूसा करने लगा। कुछ काल के उपरांत देवकी ने युगल पुत्रों को जन्म दिया। तब इन्द्र की आज्ञा से सुनैगम नामक देव उन्हें उठाकर सुभद्रिल/भद्रिलपुर नगर के सेठ सुदृष्टि की स्त्री अलका को दे आया व उसके मृत जन्मे युगलिया पुत्रों को वह देव देवकी के प्रसूति गृह में रख आया। शंका से युक्त कंस ने उन मृत पुत्रों को रौद्र परिणाम होकर शिला पर पछाड़ दिया। तदनंतर देवकी ने क्रम-क्रम से दो बार युगल पुत्रों को और जन्म दिया। वही देव उन्हें भी सेठ की स्त्री अलका को दे आया व उसके उसी समय जन्मे मृत पुत्रों को देवकी के पास रख दिया। जिन्हें कंस ने उन मृत पुत्रों को भी निर्दय होकर शिला पर पछाड़ दिया। अलका ने देवकी के उन पुत्रों को पाल पोष कर बड़ा किया व उनके नाम क्रमशः नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न व जितशुत्र रखे। वे धीरे-धीरे यौवन को प्राप्त हुए।

तदनंतर देवकी ने एक रात्रि में सात सुन्दर स्वप्न देखे। वे थे—1. उगता सूर्य 2. पूर्ण चंद्रमा, 3. दिग्गजों द्वारा अभिषेक की जा रही लक्ष्मी, 4. आकाश तल से नीचे उतरता विमान 5. निर्धूम अग्नि 'ज्वाला सहित', 6. रत्नों से युक्त देवों की ध्वजा, 7. मुख में प्रवेश करता सिंह।

देवकी ने इन स्वप्नों की चर्चा अपने भर्तार वसुदेव से की। तब वसुदेव ने कहा— हे स्वामिनी! तेरा पुत्र इस पृथ्वी का स्वामी होगा। यह सुनकर देवकी अति प्रसन्न हो गई। देवकी का समय आनंद से व्यतीत होने लगा। किन्तु देवकी का वह पुत्र सातवें मास में ही कृष्ण श्रवण नक्षत्र में भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को ही उत्पन्न हो गया। तब नीति में निपुण बलभद्र के परामर्श पर वसुदेव ने कंस को बिना बतलाये ही, किन्तु देवकी को बतलाकर उस बालक को

अपनी गोद में ले लिया तथा उस बालक के ऊपर छत्र दिया। ऐसा कर वसुदेव ने उस बालक को छत्र सहित बलभद्र को दे दिया। उस समय पिछले सात दिन से घनघोर बर्षा हो रही थी। फिर भी वे दोनों देवकी पुत्र को लेकर उस गहन अंधकार वाली रात्रि में महलों से बाहर निकल पड़े।

उस समय कंस के सुभट घोर निद्रा में मग्न थे। जब वे दोनों शहर के मुख्य द्वार गोपुर पहुँचे तो वहां के कपाट बंद थे। परन्तु वे कपाट उस बालक के चरणों के स्पर्श मात्र से खुल गये व उनमें निकलने योग्य संधि हो गईं। जब वे दोनों उस संधि से बालक को लेकर निकलने ही वाले थे; कि तभी आहट सुनकर गोपुर के ऊपर बंदी बने उग्रसेन ने कहा कि कौन किबाड़ खोल रहा है। तब बलभद्र ने उग्रसेन से कहा कि आप चुप बैठिये। यही बालक आपको शीघ्र ही बंधन से मुक्त करेगा। यह सुनकर उग्रसेन ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि तू निर्विघ्न रूप से चिरकाल तक जीवित रहे। तब बलदेव व वसुदेव यह कहकर कि हे पूज्य इस रहस्य की रक्षा की जाये। तब उग्रसेन ने पुनः कहा कि यह हमारे भाई की पुत्री का पुत्र अपने शत्रु से अज्ञात रहकर वृद्धि को प्राप्त हो। जब वे दोनों उस पुत्र को लेकर गोपुर से बाहर निकले, उस समय एक बैल आगे-आगे वसुदेव व बलदेव को मार्ग दिखलाता हुआ बड़े बेग से जा रहा था। जब वे यमुना तट पर पहुँचे तो उस समय यमुना का जलस्तर काफी बढ़ा हुआ था। परन्तु उस बालक के प्रभाव से यमुना का तेज प्रवाह खंडित हो गया; जिससे वे दोनों यमुना को आसानी से पार कर शीघ्र ही नंद गोपाल के घर की ओर जाने लगे कि तभी नंद गोपाल उन्हें उनकी ओर आते दिखाई दिये। नंद गोपाल भी एक नवजात बालिका को लेकर यमुना नदी की ओर जा रहे थे। पूछने पर नंदगोपाल/सुनंद ने उन दोनों को बतलाया कि पुत्र की जगह पुत्री होने के कारण मैं इस पुत्री को भूत-पिशाचों को देने जा रहा हूँ। यह सुनकर बलदेव व वसुदेव ने अपने पुत्र को नंदगोपाल को सौंपकर उनसे पुत्री ले ली। नंदगोपाल वंश परम्परा से वसुदेव के अति विश्वासपात्र थे। अतः उन दोनों ने सुनंद नाम के

नंदगोपाल से कहा कि इसे अपना पुत्र ही समझना। इसको पाल पोषकर बड़ा करना व इस रहस्य को रहस्य ही रहने देना।

इतना कहकर बलदेव व वसुदेव उस नवजात पुत्री को लेकर शीघ्रता से कंस के महलों में वापिस आ गये व उस पुत्री को देवकी के पास लिटा दिया। उधर नंद गोपाल ने उस पुत्र को लेकर अपनी पत्नी यशोदा की गोद में रखते हुए कहा कि इस चक्रवर्ती पुत्र को सम्हालो। यह सुनकर जसोदा/यशोदा अत्यन्त प्रसन्न हो गई व उस पुत्र का पालन पोषण करने लगी। प्रातः होने पर देवकी की प्रसूति की बात सुनकर कंस देवकी के पास आया, पर देवकी की गोद में पुत्री को देखकर उसका क्रोध चला गया। फिर भी उसने उस कन्या को उठाकर हाथ से मसलकर उसकी नाक चपटी कर दी व यह सोचकर कि अब देवकी के पुत्र नहीं होंगे; अपने मन में संतुष्ट होकर अपने निवास को चला गया। उधर यशोदा ने जात संस्कार कर उस बालक का नाम श्रीकृष्ण रख दिया। वहां की गोपिकायें कृष्ण की असीम सुंदरता को निहारने हेतु उस बालक को अपना दूध पिलाने के बहाने टकटकी लगाकर देखती थी।

कृष्ण धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे। वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि वाले थे व किशोरावस्था में ही सर्व विद्याओं में परांगत हो गये थे। तभी अकस्मात् मथुरा में उपद्रव बढ़ने लगे। तब एक निमित्त ज्ञानी से पूछने पर उन्होंने मथुरा नरेश कंस को बतलाया कि तुम्हारा शत्रु पैदा होकर कहीं पर बढ़ रहा है। यह सुनकर कंस चिंता में पड़ गया। तब कंस ने तीन दिन का उपवास रख कर पूर्व भव में सिद्ध हुए सात व्यंतर देवताओं का आह्वान किया। तब उन देवी-देवताओं ने प्रकट होकर योग्य कार्य सौंपने हेतु कंस से निवेदन किया। उनका निवेदन सुनकर कंस ने उनसे कहा कि हमारा शत्रु कहीं उत्पन्न होकर बढ़ रहा है। तुम लोग उसकी खोज करके उसका अंत कर दो। तब उन देवियों ने कहा कि बलभद्र व नारायण को छोड़कर शत्रु को हम क्षण भर में नष्ट कर देंगे। यह सुनकर पूतना नाम की देवी ने विभंगावधि ज्ञान से कृष्ण को जान लिया। वह कृष्ण की माता का रूप धारण कर कृष्ण के पास जहरीला

स्तन दूध पिलाने गई, तभी कृष्ण की रक्षक देवी ने उसके स्तन में असहनीय पीड़ा उत्पन्न कर दी; जिससे वह भाग गई। एक देवी ने भयंकर पक्षी का रूप धरकर कृष्ण को चोंच से मारना चाहा पर कृष्ण ने उसकी चोंच को पकड़ कर ऐसी दबाई कि वह प्रचंड शब्द कर भाग गई। फिर तीसरी देवी ने शकट का रूप धर कर कृष्ण को मारना चाहा, पर कृष्ण ने अपने पैर के प्रहार से उसे ही नष्ट कर दिया।

एक दिन जब यशोदा ने कृष्ण के पैर में रस्सी से बांध करवली में बांध दिया; तभी दो देवियां जमल व अर्जुन वृक्ष बनकर कृष्ण को पीड़ा पहुँचाने लगीं; पर कृष्ण ने उन्हें भी मार भगाया। एक दिन छठी देवी बैल बनकर बस्ती में उत्पात मचाने लगी। तभी कृष्ण ने उसकी गरदन मरोड़ दी। सातवीं देवी ने पाषाण बरसा कर कृष्ण को मारना चाहा, पर वह भी असफल रही। तब सातों देवियों ने कंस के पास जाकर कहा कि हम आपके शत्रु को मारने में असमर्थ हैं। यह कहकर वे वापिस चली गई।

जब कृष्ण की इन लोकोत्तर लीलाओं का पता बलदेव व वसुदेव को चला, तो उन्होंने देवकी के सामने उसका वर्णन किया। इनको सुनकर देवकी उपवास के बहाने वसुदेव के साथ गोकुल गई। वहां उन्होंने कृष्ण को एक बलवान बैल की गर्दन झुकाकर उस पर झूलते पाया। जब देवकी यशोदा के घर गई तो यशोदा ने भक्तिपूर्वक उन्हें नमन किया व बाद में दो पीत वस्त्रों को पहने, मयूर पिच्छी की कलगी धारण किये नीले वर्ण वाले, शंख के समान सुन्दर कंठ वाले, सुवर्ण के कर्ण आभूषण पहने, सिर पर मुकुट बांधे, कलाइयों में सुवर्ण के कड़े पहने कृष्ण को अनेक बाल गोपालों को साथ लाकर कृष्ण से देवकी के चरणों में प्रणाम कराया। तब वसुदेव व देवकी अति प्रसन्नता को प्राप्त हुए। उन्होंने कृष्ण का सम्मान कर उसे वस्त्राभूषण भेंट किये व ब्रज के लोगों के साथ कृष्ण को भोजन कराकर मथुरा वापिस लौट गये। गोकुल में कृष्ण गोप कन्याओं को रासों द्वारा क्रीड़ा कराते थे व बलदेव विभिन्न कलाओं व गुणों की कृष्ण को शिक्षा देते थे। कृष्ण

अपनी अंगुलियों के स्पर्श से यद्यपि रास लीला के समय गोप बालाओं को सुख उत्पन्न कराते थे; फिर भी वे स्वयं निर्विकार रहते थे। एक दिन ब्रज में भीषण वर्षा होने से श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर गायों की रक्षा की थी।

कृष्ण की लोकोत्तर चेष्टाओं को सुनकर कंस को संदेह हुआ व कृष्ण को शत्रु समझकर वह गोकुल आया; पर यशोदा ने कोई उपाय रच आत्मीयजनों के साथ कृष्ण को गोकुल से बाहर भेज दिया। तभी एक ताड़वी नाम की पिशाची जोर-जोर से अटटहास कर कृष्ण को डराने लगी। तब कृष्ण ने उसे देखते ही मार भगाया। कंस को गोकुल में कृष्ण के न मिलने पर वह उदास मन से मथुरा वापिस आ गया। तभी मथुरा के दिक्पाल मंदिर में कृष्ण के पुण्य प्रताप से सिंहवाहिनी, नागशैया, अजितंजय नाम का धनुष व पांचजन्य शंख नामक रत्न प्रकट हुए। तभी कंस को ज्योतिषी ने बताया कि जो नागशैया पर चढ़ कर धनुष पर डोरी चढ़ाकर पांचजन्य शंख फूंक देगा, वही तुम्हारा शत्रु है। या जो ये अस्त्र-शस्त्र पैदा हुए हैं व जिनकी देवता रक्षा करते हैं, इनको जो शास्त्रोक्त विधि से सिद्ध कर लेगा, वह चक्ररत्न से सुरक्षित राज्य को प्राप्त करेगा। यह सुनकर कंस ने उन्हें सिद्ध करने का प्रयास किया, पर वह विफल रहा। तब कंस ने यह घोषणा करवा दी कि जो इन अस्त्र-शस्त्रों को सिद्ध करेगा, उसे पुरस्कार के साथ-साथ वह अपनी पुत्री भी प्रदान करेगा। यह उद्घोषणा सुनकर अनेक राजा-महाराजा मथुरा आये। तभी एक दिन कंस की पत्नी का भाई स्वभानु किसी काम से गोकुल आया। वह वहां कृष्ण का अदभुत पराक्रम देखकर प्रसन्न होकर कृष्ण को भी मथुरा ले गया। उपस्थित राजा-महाराजा जब कुछ न कर सके, तब कृष्ण ने शीघ्र ही नागशैया पर चढ़कर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा पांचजन्य शंख फूंक दिया। तभी विपदा को समझ शीघ्र ही सुभानु व बलदेव ने कृष्ण को आदरपूर्वक वापिस गोकुल भिजवा दिया। बाद में कंस ने कृष्ण को ढूंढ़ने का बहुत प्रयास किया पर वह सफल न हो सका।

एक बार यदुवंशियों की विशाल सेना को मथुरा की ओर

आते देखकर कंस शंकित हो गया, पर बाद में यह जानकर कि ये शौर्यपुरवासी अपने छोटे भाई को देखने आये है, निश्चिंत हो गया व उनका अच्छा आदर-सत्कार कर महलों में ठहरा दिया। वहीं दूसरी ओर यशोदा के घर बलभद्र ने माँ यशोदा से कुछ कटु वचन कहकर कृष्ण से शीघ्र स्नान करने को कहा। तब वसुदेव व कृष्ण स्नान हेतु नदी पर चले गये। वहां बलभद्र ने कृष्ण से उनके मानसिक संताप का कारण जानना चाहा, पर कृष्ण ने बलदेव से उल्टा सवाल पूछ लिया कि आज आपने माँ यशोदा का तिरस्कार क्यों किया? तब बड़े प्रेम से कृष्ण का आलिंगन कर बलदेव कृष्ण से बोले कि अतिमुक्तक मुनि श्री ने कंस की स्त्री जीवद्यसा से कहा था कि वसुदेव का सातवां पुत्र कंस का बध करेगा। इसीलिए कंस ने देवकी से उत्पन्न छः पुत्रों को उसने अपनी समझ में मार डाला है। तुम देवकी के सातवें पुत्र प्रसव के पूर्व ही उत्पन्न हो गये थे, अतः हमने तुम्हें गोकुल लाकर यशोदा के यहां रख दिया था। कंस ने तुम्हारे मारने के अनेक यत्न किये, पर वह ऐसा कर नहीं सका। अब कंस भयंकर मल्ल युद्ध का निश्चय कर व उसमें तुम्हारे भाग लेने हेतु आमंत्रण भेजकर तुम्हें मारना चाहता है। इतना कहकर बलदेव चुप हो गये। परन्तु कृष्ण यह सब सुनकर अति प्रसन्न हो गये व बड़े भाई के रक्षा-कवच से युक्त होकर सिंह के समान लगने लगे। स्नान, भोजन व अन्य आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर वे दोनों भाई शीघ्र ही मथुरा रवाना हो गये। मार्ग में असुरों ने नाग, गधा व दुष्ट घोड़ों का रूप बनाकर बलदेव व कृष्ण को रोकना चाहा, पर इन सबको इन दोनों ने मार भगाया।

मथुरा नगरी के द्वार पर पहुँचते ही कंस की आज्ञा से उन पर दो उन्मत्त हाथी छोड़ दिये गये, पर श्रीकृष्ण व बलदेव ने उन हाथियों के दांतों को उखाड़ कर उन्हें मार दिया। तब वे दोनों शीघ्र ही मल्लयुद्ध हेतु नियत किये गये स्थान पर पहुंचे। वहां बलभद्र ने कंस, समुद्रविजय आदि से श्रीकृष्ण का परिचय कराया। मल्ल युद्ध प्रारंभ होने पर बलदेव व श्रीकृष्ण ने मल्ल युद्ध में अनेक मल्लों को परास्त कर दिया। जिसे

देखकर कंस ने प्रमुख मल्ल चाणूर व उसके साथ मुष्टिक मल्ल को भी मल्ल युद्ध के लिए भेज दिया। तब बलदेव ने मुष्टिक मल्ल को मार डाला व श्रीकृष्ण ने चाणूर मल्ल (जो श्रीकृष्ण से दोगुना था) को वहीं मार दिया। यह दृश्य देखकर कंस अपने आपको रोक न सका व वह श्रीकृष्ण को अपना सही दुश्मन मानकर तलवार लेकर स्वयं युद्ध-भूमि में आ गया। परन्तु श्रीकृष्ण ने बिना समय गंवाये कंस के हाथ से तलवार छीन ली व उसे पृथ्वी पर पटक दिया। फिर श्रीकृष्ण ने कंस को उठाकर पत्थर पर पछाड़ दिया। जिससे कंस वहीं मर गया। यह देखकर श्रीकृष्ण मंद-मंद मुस्कराने लगे। तभी कंस की सेना श्रीकृष्ण की ओर तेजी से बढ़ी पर बलभद्र ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। यह दृश्य देखकर जरासंध के द्वारा भेजी गई सेना युद्ध को तत्पर हुई, पर तभी समस्त यदुवंशियों की सेना व श्रीकृष्ण पक्ष के राजाओं की हुँकार से वह भी भाग खड़ी हुई, तब दोनों भाई अपने पिताश्री के महलों में गये व वहां उन्होंने दादा समुद्रविजय आदि की पूजा की व उनका आशीर्वाद लिया। यह सब जानकर व अपने महान पुत्र को अपने सामने देखकर वसुदेव व देवकी अनुपम सुख को प्राप्त हुए, व वह कन्या भी जिसकी नाक को कंस ने मसलकर चपटी कर दी थी, अपने भाई श्रीकृष्ण को देखकर अति प्रसन्न हुई। तत्पश्चात श्रीकृष्ण व बलदेव ने उग्रसेन आदि को—जो गोपुर द्वार के ऊपर बंदी थे—मुक्त कर दिया व उन्हें फिर से समारोह पूर्वक मथुरा का शासक बना दिया। यह सब स्वप्न की भांति होता देखकर जीवद्धसा अपने पिता जरासंध के पास राजगृह चली गई।

वसुदेव की विजयसेना रानी से अक्रूर व क्रूर नाम के दो पुत्र हुए थे। श्यामा रानी से ज्वलन व अग्निवेग, गंधर्वसेना से वायुवेग, अमितवेग, व महेंद्रगिरि, मंत्री-पुत्री पदमावती से दारू, वृद्धार्थ व दारूक, नीलेश्या से सिंह व मतंगज, सोमश्री से नारद व मरूदेव, मित्रश्री से सुमित्र, कपिला से कपिल, दूसरी पदमावती से पदम व पदमक, अश्वसेना से अश्वसेन, पौंड्रा से पौंड्र, रत्नावती से रत्नगर्भ व सुगर्भ, सोमदत्त की पुत्री

से चंद्रकांत व शशिप्रभ, वेगवती से वेगवान व वायुवेग पुत्र हुए थे। वसुदेव की मदनवेगा रानी से दृढ़मुष्टि, अनावृष्टि व वहिममुष्टि, बंधुमति रानी से बंधुषेण व सिंहसेन, प्रियंगु सुन्दरी से शीलायुध, प्रभावती से गंधार व पिंगल, जरा नाम की रानी से जरतकुमार और वाल्हीक पुत्रों ने जन्म लिया था। अवन्ति महारानी से सुमुख, दुर्मुख व महारण, रोहणी महारानी से बलदेव, सारण एवं विदूरथ; बालचन्द्रा महारानी से वज्रदृष्ट व अमितप्रभ तथा देवकी महारानी से श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था।

एक दिन विद्याधरों के स्वामी सुकेतु का दूत आकाश मार्ग से मथुरा आया व नगर प्रवेश कर अनुमति लेकर राजसभा में उपस्थित हुआ। वह सभी उपस्थित सभासदों को नमस्कार कर बोला कि मैं रथनूपुर नरेश सुकेतु का दूत हूँ। हमारे नरेश सुकेतु की महारानी का नाम स्वयंप्रभा है। उनकी अति रूपवान व गुणवान सत्यभामा नाम की पुत्री है। आप श्रीकृष्ण के लिए उसे स्वीकार करने की आज्ञा प्रदान करें। सभा की स्वीकारोक्ति के बाद भेंट स्वीकार करने के बाद वह दूत शीघ्र ही वायुमार्ग से रथनूपुर वापिस चला गया। दूत से शुभ समाचार पाकर रथनूपुर नरेश सुकेतु अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ एवं सुकेतु का भाई रतिमाल अपनी कन्या रेवती के साथ मथुरा आये व सत्यभामा का विवाह श्रीकृष्ण से व रेवती का विवाह बलराम से कर दिया। उधर जीवद्यसा अपने पिता जरासंध के पास गई व विस्तार से संपूर्ण घटनाक्रम उन्हें बतलाकर जोर-जोर से रोने लगी। तब जरासंध ने अपनी पुत्री को सांत्वना देते हुए कहा कि वे सभी यादव शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होंगे। यादवों से बदला लेने हेतु पहले तो जरासंध ने अपने शक्तिशाली पुत्र कालभवन को यादवों से लड़ने भेजा।

कालभवन ने यादवों से 17 बार युद्ध किया पर अंत में वह युद्ध क्षेत्र में ही मारा गया। तब जरासंध ने अपने भाई अपराजित को युद्ध हेतु भेजा। पदम पुराण में अपराजित को जरासंध का ज्येष्ठ पुत्र बतलाया गया है। अपराजित ने यादवों के साथ 346 बार युद्ध किया; पर अंत में वह भी श्रीकृष्ण के हाथों युद्ध में मारा गया।

तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म

उधर शौरीपुर में 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जन्म के 15 माह पहले से ही रत्नों की वृष्टि हो रही थी। रत्नवृष्टि प्रारंभ होने के 6 माह पश्चात् नरेश समुद्रविजय की पटरानी शिवा देवी ने पिछली रयण में सुन्दर 16 स्वप्न देखे व उनका फल अपने भर्तार से जानकर वह अति प्रसन्नता को प्राप्त हुई। तीर्थंकर नेमिनाथ कार्तिक शुक्ला छठवी के दिन देवों के आसनों को कंपित करते हुए स्वर्ग से च्युत होकर माता शिवादेवी के गर्भ में आये। इस बीच 56 दिवकुमारियां माता की दिन-रात सेवा करती थी।

महारानी शिवादेवी पूजा, दान आदि कर अपना समय बिताने लगी। श्रावण शुक्ला छठी को चंद्रमा के चित्रा नक्षत्र के संयोग के समय जगत को जीतने वाली महारानी शिवादेवी ने अतिशय सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। तीर्थंकर बालक जन्म से ही तीन ज्ञान–'मति, श्रुत व अवधि' के धारी थे व 1008 लक्षणों से सुशोभित थे। तीर्थंकर बालक के जन्म के समय भवनवासी देवों के यहां स्वतः शंखों का जोरदार शब्द होने लगा। व्यंतर देवों के यहां पटह, सूर्यलोक में सिंहनाद व कल्पवासी देवों के यहां स्वतः घंटे बजने लगे। इन्द्र व देवताओं के आसन कंपित होने लगे। तब अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर बालक का जन्म जानकर इन्द्र व देवता शौरीपुर नगरी आये। इन्द्राणी शची ने बालक को गोद में ले लिया व माँ को कोई कष्ट न हो, इसलिए तीर्थंकर बालक की जगह उसी प्रकार के मायामई बालक को माँ के पास रख दिया। जब तीर्थंकर बालक को शची बाहर लाई, तो इन्द्र ने हजार नेत्र कर प्रभु के दर्शन करके अपने को धन्य समझा व तीर्थंकर बालक को सपरिवार वायु मार्ग से ले जाकर प्रभु को पांडुक शिला पर विराजमान कर रत्नजटित 1008 कलशों से प्रभु का अभिषेक किया। तत्पश्चात भावविभोर होकर सभी देवी-देवताओं व इन्द्र-इन्द्राणी ने भारी उत्सव मनाकर व नृत्यगान करके प्रभु का जन्म

कल्याणक मनाया व बाद में वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर वापिस माँ की गोद में दे दिया। उन्होंने तीर्थंकर बालक का नाम नेमिनाथ रखा। बाद में सभी देवता अपने- अपने स्थानों को चले गये। किन्तु पांडव पुराण व उत्तर पुराण के अनुसार भगवान नेमिनाथ का जन्म द्वारिका पहुँचने पर द्वारिका में ही हुआ था। चूंकि ये दोनों पुराण बाद में लिखे गये हैं, अतः भगवान नेमिनाथ का जन्म शौरीपुर में ही मानना उचित है।

उधर राजगृह में जब जरासंध को अपराजित के युद्ध में मारे जाने का समाचार मिला, तो उसने समस्त यादवों को नष्ट करने का पक्का इरादा कर लिया व सभी मित्र राजाओं को युद्ध के लिए आमंत्रण भेज दिये। सभी सेनाओं के आ जाने पर जरासंध ने भी अपनी सेना को तैयार कर मथुरा, शौरीपुर की ओर कूच कर दिया। पर यादवों के गुप्तचरों ने शीघ्र ही जरासंध की योजनाओं का पता लगा लिया। जरासंध की युद्ध की भारी तैयारी को देखकर तथा यह सोचकर कि यद्यपि हमारे वंश में कृष्ण व बलराम क्रमशः नारायण व बलभद्र हैं, तीर्थंकर बालक नेमिकुमार भी हैं; इसलिए जरासंध हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता; पर इस समय हमें चुप रहना ही उचित है। ऐसा विचार कर वे अपने मित्र भोजवंशी आदि राजाओं के साथ अपनी सेनाओं को साथ लेकर मथुरा व शौरीपुर छोड़कर वहां से प्रस्थान कर गये। वे शीघ्र ही विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँच गये। मार्ग में पीछे-पीछे जरासंध अपनी व मित्र राजाओं की सेनाओं के साथ आ रहा था। यह जानकर भी सभी यादव नरेश भी उत्साह से भरे युद्ध के लिए तैयार हैं। तभी जरासंध ने मार्ग में एक बुढ़िया को रोते हुए देखा; जहां मायावी भीषण अग्नि भी जल रही थी। जब जरासंध ने उस बुढ़िया से रोने का कारण पूछा, तब उस बुढ़िया ने उसे बतलाया कि राजगृह नगर का राजा जरासंध, जिसका समुद्र पर्यंत शासन है, उसके भय से प्राण बचाने हेतु यादव नरेश अपना राज्य छोड़कर भागे जा रहे थे, किन्तु कहीं भी शरण न मिलने

पर वे सभी अपनी सेनाओं के साथ इस भीषण अग्नि में जलकर निःशल्य हो गये हैं। यह भीषण अग्नि उन्हीं लोगों के आत्मदाह करने से फैली है। पर मुझे अपना जीवन प्रिय होने से मैं अपने स्वामी के कुमरण से दुखी होकर रो रही हूँ। वह बुढ़िया रोती हुई आगे बोली कि इस अग्नि में यदुवंशी, भोजवंशी आदि सभी राजा समर्पित हो गये। जरासंध उस बुढ़िया की बातों पर विश्वास कर व शत्रु का संपूर्ण विनाश मानकर संतुष्ट हो गया। इस संपूर्ण घटनाक्रम को भरत क्षेत्र में निवास करने वाली देवियों ने अपने दिव्य सामर्थ्य से विक्रिया द्वारा उपस्थित किया था। फिर जरासंध निश्चिंत होकर वहां से वापिस अपने नगर को लौट गया व वहां निश्चिंतता पूर्वक शासन करने लगा।

दूसरी ओर यादव नरेश अपने दल-बल के साथ विंध्याचल को पार कर पश्चिम दिशा की ओर मुड़ कर सौराष्ट्र देश के समुद्र तट पर जा पहुँचे। जहां समुद्र की उत्तंग लहरें ऐसी जान पड़ती थीं, मानों वे नेमि कुमार तीर्थंकर बालक के पाद-प्रक्षालन को उत्सुक हों। श्रीकृष्ण ने समुद्र में मार्ग पाने की अभिलाषा से आठ दिन का उपवास किया व देवयोग से नैगम नाम के एक देव ने श्रीकृष्ण से कहा कि इस सुन्दर अश्व का रूप धारण किये देव पर सवार हो जाइये। यह समुद्र आपको मार्ग देने को बाध्य होगा। श्रीकृष्ण उस अश्व पर सवार हो गये। समुद्र ने रास्ता दे दिया। श्रीकृष्ण बारह योजन तक उस अश्व पर सवार होकर समुद्र की ओर चले गये व शीघ्र ही उस स्थान पहुँच गये, जहां इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने तीर्थंकर नेमिकुमार के लिए बाइस योजन का सुन्दर नगर निर्मित किया था। इस नगर के परकोट में अनेक द्वार होने से इस मनोरम नगरी का नाम द्वारावती/द्वारिका था। स्वर्गोपम विभूतियों से सम्पन्न यहां के राजप्रसादों में महाराजा समुद्रविजय आदि के साथ नारायण श्रीकृष्ण सुख शान्ति से रहने लगे। इस नगरी के बीचों-बीच आग्नेय आदि दिशाओं में समुद्रविजय आदि सभी दस भाइयों के अलग अलग महल थे। अठारह

खंड वाला श्रीकृष्ण का सर्वतोभद्र महल भी वहीं था। पास में बलदेव का महल था। उग्रसेन आदि राजाओं के महल भी वहीं थे। यह सभी महल आठ-आठ खंड के थे। तब कुबेर सभी का सत्कार कर पूर्णभद्र नामक यक्ष को संदेश देकर अंतर्हित हो गया। धीरे-धीरे पश्चिम के सभी राजा यादव राजाओं की आज्ञा मानने लगे। द्वारिका में ही नेमिकुमार श्रीकृष्ण व बलदेव के साथ बाल क्रीड़ा से सभी को आनंद प्रदान करते थे। नेमिप्रभ की आयु 1000 वर्ष थी, शरीर दस धनुष का था, संस्थान व संहनन उत्तम थे। तीनों लोकों के इन्द्र उनकी पूजा करते थे।

कृष्ण का विवाह

एक बार नारद द्वारकापुरी में यादवों की सभा में पधारे व श्रीकृष्ण के अंत:पुर को निहारने हेतु उसमें प्रविष्ट हुए। उस समय श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा दर्पण में अपना मुख देख रही थी। सत्यभामा ने नारद को नहीं देखा। इससे नारद रूष्ट होकर बाहर आकर सोचने लगे कि इस विद्याधर पुत्री ने मुझे देखा भी नहीं; मैं इसके मद को अभी चूर करता हूँ। नारद सीधे कुण्डनपुर नगर पहुँचे। यहां के नरेश भीष्म थे। उनके रूक्मी नाम का एक पुत्र व रूक्मणी नाम की कन्या थी। रूक्मणी अत्यन्त सुन्दर थी। नारद उसका रूप लावण्य देखकर हतप्रभ से हर गये व सोचने लगे कि इसे श्रीकृष्ण की पटरानी बनाकर मैं सत्यभामा के अहंकार को अवश्य नष्ट करूंगा। तब नारद ने रूक्मणी से कहा कि द्वारका के स्वामी तुम्हारे पति हों। रूक्मणी के पूछने पर उन्होंने श्रीकृष्ण के बारे में विस्तार से बतलाया।

इसके बाद नारद वापिस सीधे श्रीकृष्ण के पास जाकर रूक्मणी के रूप की प्रशंसा करने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण के मन को रूक्मणी के लिए मोह लिया। परन्तु रूकमी जो रूक्मणी का भाई था; अपनी बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। श्रीकृष्ण को जब यह मालूम चला तो वे बलदेव के साथ सेना लेकर कुण्डनपुर आ गये; जहां रूक्मणी को व्याहने के लिए शिशुपाल भी आया था। रूक्मणी जब नागदेव की पूजा कर उद्यान में खड़ी थी तभी वहां श्रीकृष्ण भी पहुँच गये व रूक्मणी से प्रेमालाप कर उसे रथ पर सवार होने को कहा; किन्तु रूक्मणी लज्जाग्रस्त हो गई। तब श्रीकृष्ण ने अनुराग व लज्जा से युक्त रूक्मणी को दोनों भुजाओं से उठाकर रथ पर बिठा लिया।

तदनंतर श्रीकृष्ण ने रूक्मी, शिशुपाल व भीष्म को रूक्मणी के हरण का समाचार देकर रथ आगे बढ़ा दिया। तभी रूक्मी व शिशुपाल रथों पर सवार होकर कृष्ण व बलदेव का सामना करने पहुँच गये। उनके साथ विशाल सेना

भी थी। तब रूक्मणी ने कृष्ण से घबराकर कहा कि मैं बड़ी मंद भाग्यवती हूँ। तब यह सुनकर कृष्ण ने एक बाण से ताड़ का वृक्ष काट दिया व हाथ से अंगूठी में जड़ा हीरा निकालकर उसे चूर-चूर कर दिया। यह देखकर रूक्मणी हाथ जोड़कर कृष्ण से बोली कि हे नाथ! आप मेरे भाई रूक्मी की रक्षा करें। तभी कृष्ण व बलदेव ने अपने रथों को शत्रु की ओर मोड़ दिया। युद्ध में शिशुपाल मारा गया, पर रुक्मणी के निवेदन पर रुक्मी को छोड़ दिया गया। तब गिरनार पर्वत पर जाकर श्रीकृष्ण ने रूक्मणी के साथ विधिवत विवाह रचाया तथा बाद में रुक्मणी के साथ द्वारिका नगरी आ गये। श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के महल के पास ही रूक्मणी का एक नया महल बनवा दिया। उन्होंने रूक्मणी को पटरानी का पद भी दे दिया। बाद में श्रीकृष्ण रूक्मणी व सत्यभामा से वन क्रीड़ा करके आनंद से दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन संबंधों को प्रगाढ़ करने हेतु स्नेह से भरे हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजकर निवेदन किया कि रूक्मणी व सत्यभामा में से जिसके पहले पुत्र उत्पन्न होगा और यदि मेरे पहले पुत्री उत्पन्न हुई; तो वह उसका विवाह पहले उत्पन्न पुत्र से कर देगा। श्रीकृष्ण ने इसे स्वीकार कर लिया। तदनंतर कुछ ही दिनों के बाद रूक्मणी ने हंस विमान में आसमान में स्वप्न में विहार किया व इस स्वप्न का फल श्रीकृष्ण द्वारा बतलाने पर कि तेरे यशस्वी पुत्र होगाा वह अति प्रसन्नता को प्राप्त हुई। तब अच्युतेंद्र स्वर्ग से चयकर एक जीव रूक्मणी के गर्भ में आया। उसी समय सत्यभामा ने भी स्वर्ग से च्युत हुए देव को गर्भ में धारण किया। यह समाचार सुनकर यदुवंशी अति आनंदित हुए। काललब्धि पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण की दोनों रानियों ने एक ही समय उत्तम पुत्रों को रात्रि में जन्म दिया। यह समाचार जब श्रीकृष्ण को भेजा गया; तब वे शयन कर रहे थे। अतः सत्यभामा के सेवक श्रीकृष्ण के सिरहाने व रूक्मणी के सेवक पैरों के पास खड़े होकर श्रीकृष्ण के जागनें का इंतजार करने लगे। जब वे जागे, तो उनकी पहली

दृष्टि पैरों के पास खड़े रूक्मणी के सेवकों पर पड़ी। उन सेवकों से पुत्र प्राप्ति का समाचार सुनकर श्री कृष्ण ने उन्हें अपने शरीर के आभूषण भेंट में दे दिये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने रूक्मणी के पुत्र को पहले जन्मा मान लिया। तभी बाद में सिरहाने खड़े सत्यभामा के सेवकों ने भी श्रीकृष्ण को पुत्र जन्म की बधाई दी। श्रीकृष्ण ने उन्हें भी पुरस्कृत किया।

एक दिन कभी धूमकेतु नाम का बलवान असुर विमान से कहीं जा रहा था कि उसका विमान रूक्मणी के महल के ऊपर जाकर स्थिर हो गया। उस असुर ने अपने विभंगावधि ज्ञान से अपने पूर्व भव के बैरी को यहां जानकर, विमान से उतर कर सभी को निद्रा मग्न कर रूक्मणी के पुत्र का हरण कर लिया। जब उसका विमान एक अटवी से गुजर रहा था, तो वह नीचे उतरा व वहां तक्षशिला के नीचे शिशु को रखकर अदृश्य हो गया। उसी समय मेघकूट नगर नरेश कालसंवर अपनी पत्नी कनकमाला के साथ विमान से कहीं जा रहे थे तो उस शिला के ऊपर उनका विमान रूक गया। नीचे उतरने पर उन्होंने उस हिलती हुई भारी शिला को देखा व जब उस शिला को हटाया; तो उन्होंने वहां पर एक सुन्दर बालक को पाया।

उस कालसंवर नाम के विद्याधर ने उस बालक को उठाकर अपनी निःसंतान पत्नी कनकमाला की गोद में दे दिया। पर कनकमाला ने अपने हाथ खींचते हुए कहा कि आपके उत्तम कुल में 500 पुत्र हैं; जब वे इस अज्ञात कुल में जन्मे पुत्र की हंसी उड़ावेंगे, तो मैं उस दृश्य को देख नहीं सकूंगी। तब कालसंवर ने कान का स्वर्ण पत्र लेकर– 'यह युवराज है' ऐसा कहकर पट्ट बांध दिया। तब कनकमाला ने उस पुत्र को सहर्ष स्वीकार कर लिया व वह अति प्रसन्नता को प्राप्त हुई। बाद में कालसंवर ने अपने नगर जाकर प्रजाजनों को यह बतला दिया कि गूढ़ गर्भ को धारण करने वाली कनकमाला ने इस पुत्र को जन्म दिया है। उसके बाद उसने बड़ी धूमधाम से उस पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। नामकरण संस्कार के अवसर पर रूक्मणी के इस पुत्र का

नाम प्रद्युम्न रखा गया। प्रद्युम्न धीरे-धीरे वहां वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

जब रूक्मणी को पुत्र के हरण का पता चला तो वह अति विलाप करने लगी। इससे महलों में कोलाहल मच गया। इसे सुनकर श्रीकृष्ण वहां आये व रूक्मणी को ढांढस बंधाते हुए बोले कि मैं तेरे पुत्र को शीघ्र ही खोज लूंगा। तभी नारद वहां पहुँचे व रूक्मणी के पुत्र हरण का समाचार सुनकर उसे ढांढस बंधाया व बोले कि अब अवधिज्ञानी अतिमुक्तक मुनि श्री तो मोक्ष जा चुके हैं। तीन ज्ञान के धारी नेमिनाथ कुछ बोलेंगे नहीं; अत: मैं पूर्व विदेह की पुष्कलावती देश की पुंडरीकनी नगरी में मनुष्य, सुर व असुरों से सेवित सीमंधर जिनेन्द्रदेव से पूछकर तेरे पुत्र का पता लगाकर बताऊंगा। अत: तुम शोक को छोड़कर धैर्य धारण करो। ऐसा कहकर नारद पुंडरीकनी नगरी में विराजमान सीमंधर स्वामी के समवशरण में जा पहुँचे।

वहां केवलज्ञान के धारी तीर्थंकर सीमंधर स्वमी से यह जानकर कि 16वां वर्ष आने पर 16 लाभों को प्राप्त करके वह प्रद्युम्न नाम का बालक अपने माता-पिता से स्वत: पुन: आकर मिलेगा। तीर्थंकर भगवान के मुख से यह सुनकर आनंद से भरे नारद उन केवली भगवान को नमस्कार कर शीघ्र ही मेघकूट नगर आ गये तथा वहां रूक्मणी पुत्र प्रद्युम्न को देखकर वे अति प्रसन्न हुए। वहां कालसंवर आदि ने नारद का सम्मान कर उन्हें विदा किया। वहां से चलकर नारद शीघ्र ही द्वारिका आ पहुँचे व वहां कृष्ण के साथ संपूर्ण यादव नरेशों को प्रद्युम्न की पूरी कथा कहकर सबको प्रसन्न कर दिया। उन्होंने रूक्मणी को भी पूरा वृतांत बतलाकर खुश किया व कहा कि तेरा पुत्र प्रद्युम्न 16वें वर्ष में 16 लाभों को प्राप्त करके स्वत: आपके पास आवेगा। यह सुनकर पुत्र मोह के कारण रूक्मणी के स्तनों से स्वत: दूध झरने लगा। बाद में रूक्मणी ने नारद का सम्मान कर उन्हें आदर के साथ विदा किया।

श्रीकृष्ण की दूसरी रानी सत्यभामा के पुत्र का नाम

भानुकुमार रखा गया। एक बार नारद ने कृष्ण को बतलाया कि विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में जम्बूपुर नगर में जाम्बब विद्याधर नरेश की पत्नी शिवचंद्रा के यहां विश्वसेन नाम का पुत्र व जाम्बवती नाम की कन्या अति रूपवान व गुणवान हैं। वह इस समय गंगा द्वार में स्नान कर रही है। नारद के मुख से जाम्बवती के रूप व गुणों की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण अधीर हो गये व सेना के साथ वहां पहुँच गये। वहां दोनों ने एक दूसरे को देखा व परस्पर आसक्त हो गये। तब श्रीकृष्ण ने जाम्बवती का आलिंगन किया व उसका हरण कर लिया। यह देखकर जाम्बवती की सखियां रोने लगी। यह रुदन सुनकर जाम्बवती के पिता शीघ्र ही आकाशमार्ग से वहां पहुँच गये; किन्तु वहां का हाल देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। बाद में उन्होंने अपने पुत्र विश्वसेन को राज्य का भार सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। वहीं कृष्ण जाम्बवती को लेकर द्वारिका चले गये। बाद में श्रीकृष्ण ने सिंहल द्वीप के नरेश की पुत्री लक्ष्मणा का हरण कर उसके साथ विवाह कर लिया। बाद में श्रीकृष्ण ने सुराष्ट्र देश के नरेश राष्ट्रबर्धन की पत्नी विनया की पुत्री सुसीमा का हरण कर उससे भी विवाह किया। कुछ समय पश्चात् सिंधु देश के बीतभय नगर के इक्ष्वाकुवंसी नरेश मेरु व उनकी पत्नी चंद्रावती की पुत्री गौरी के साथ भी विवाह किया। बाद में बलदेव के मामा अरिष्टपुर नरेश राजा हिरण्यनाभ जिनकी महारानी का नाम श्रीकांता था– की पुत्री पदमावती का स्वयंवर मंडप से हरण कर व विरोधी राजाओं को परास्त कर उसके साथ विवाह किया। हिरण्यनाभ के बड़े भाई रैवत की चार कन्याओं का विवाह बलदेव के साथ पहले ही हो चुका था। तत्पश्चात श्रीकृष्ण ने पुष्कलावती नगरी के राजा इन्द्रगिरि, जिनकी महारानी का नाम मेरुसती था–की पुत्री गांधारी–जो गंधर्व विद्या में अत्यन्त निपुण थी; के साथ विवाह किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण स्त्री रत्नों से समृद्धि को प्राप्त हुए।

लाक्षाग्रह का जलना व पाण्डवों का बचकर निकलना

इधर हस्तिनापुर में एक दिन राज्यसभा में दुर्योधन ने ईर्ष्यावश कहा कि हम लोग 100 भाई है व पांडव केवल पांच। तब वे आधे राज्य पर अधिकार कैसे रख सकते हैं। उचित तो यह है कि संपूर्ण राज्य के 105 भाग करके सभी को बराबर का हिस्सा दे देना चाहिए। इस प्रकार दुर्योधन परस्पर के प्रेमसूत्र को विच्छिन्न करने पर तुल गया। दुर्योधन की इस विषाक्त युक्ति को सुनकर सभासद स्तंभित रह गये। तब पांडव जो विवेकशील, बुद्धिमान व धैर्यशाली थे, शांत रहे। पर भीम से दुर्योधन की इस गर्वोक्ति को सुनकर रहा नहीं गया। वह बोले—हमारे रहते ये निरूपाय दीन कौरव कुछ नहीं कर सकते। तभी भीम अग्रज युधिष्ठिर की ओर मुखातिब होकर बोले—'हे महाराज यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन दुष्ट कौरवों को उठाकर समुद्र में प्रवाहित कर आऊं। दुर्योधन ने ऐसे वचन कहने का दु:साहस कैसे किया। तब युधिष्ठिर ने अपनी मधुर वाणी से भीम को शांत कर दिया। तब अर्जुन ने क्रोधावेश में कहा कि कि जिस प्रकार सहस्त्रों कौओं की भीड़ को भगाने के लिए एक पाषाण का टुकड़ा पर्याप्त होता है। उसी प्रकार इन सौ कौरवों के लिए मेरा एक बाण ही पर्याप्त होगा। तब पुन: युधिष्ठिर ने शांत वचनों से अर्जुन को भी शांत कर दिया। तभी नकुल बोले कि पतंगों के विनाश का जब समय आ जाता है तब उनके पंख निकल आते हैं। जिससे वे स्वयं अग्नि के समीप आ जाते हैं और उसमें आहुत होकर भस्म हो जाते हैं। सहदेव ने भी अपने कुठार को संभालते हुए युधिष्ठिर से कहा; यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसी कुठार से इन कौरवों के शीश काटकर दिकपालों को बलि चढ़ा दूं। तब युधिष्ठिर ने सौम्य व मधुर वचनों से इन्हें भी शांत कर दिया।

दुर्योधन सदैव पांडवों को अपमानित करने की चिंता में

निमग्न रहता था। एक बार इस पापात्मा ने लाख का सुन्दर भवन बनवाया व उसका नाम लाक्षागृह रखा। कई चतुर वास्तु शिल्पियों के निर्देशन में कपटपूर्वक इस भवन का निर्माण कराया गया। यह काम दुर्योधन ने गुप्त रीति से करवाया था। भवन पूर्ण होने पर दुर्योधन पितामह गांगेय/भीष्म के पास पहुँचा व बोला—मैंने एक अभिनव राजप्रसाद निर्मित करवाया है। उसकी शोभा अवर्णनीय है। मेरी दिली इच्छा है कि भ्राता युधिष्ठिर इसमें सकुटुम्ब निवास करें व अपने आलौकिक प्रताप को दशों दिशाओं में फैलायें। तब स्वभाव से सरल पितामह ने कहा—कि तुम सभी का एक स्थान पर रहना बैरभाव को बढ़ाता है। अतः तुमने यह अच्छा कार्य किया है। इसके बाद भीष्म पितामह ने पांडवों को बुलाया व दुर्योधन का प्रस्ताव बतलाया व कहा कि तुम लोग इसमें निवास करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। तब पांडवों ने सहर्ष भीष्म पितामह की बात को स्वीकार कर लिया। इसके बाद शुभ दिन व शुभ मुहूर्त पर पांडवों ने सपरिवार माता कुन्ती के साथ इस राजप्रसाद में प्रवेश किया व वहीं आनंद से रहने लगे। सभी पांडव दुर्योधन के इस कपट जाल से अनभिज्ञ थे। पर दुर्योधन की इस कुटिल चाल का भान किसी प्रकार विदुर को हो गया जो इनके चाचा थे।

विदुर महान विद्वान व दयालु थे। विदुर ने युधिष्ठिर को बुलाकर समझाया कि इन दुर्बुद्धि कौरवों का विश्वास तुम्हें कदापि नहीं करना चाहिए। उनका आचरण अत्यन्त निदंनीय है। वे तुम सबका वध कर पांडव वंश को निर्मूल करने पर तुले हैं। मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि यह भव्य प्रासाद दुर्योधन ने कपटपूर्वक लाख से बनवाया है। अतः इस महल में रात्रि में सोते समय भी सचेत रहा करो। तब विदुर ने—जो धर्मशील होने के कारण पांडवों से अपार स्नेह रखते थे—चतुर खनिकों को बुलाकर महल के नीचे से वन की ओर एक सुरंग निर्मित करा दी। यह कार्य बड़ी चतुराई व गुप्त रूप से करवाया। इसके बाद विदुर ने पांडवों को भी

इस सुरंग का रहस्य बता दिया। पर दोनों ने ही इस सुरंग को स्वयं कभी नहीं देखा था।

तब कभी समय पाकर दुर्योधन ने अपने विश्वस्त मंत्री से विचार विमर्श कर अर्ककीर्ति नाम के कोटपाल को, जो उसका परम विश्वासपात्र था, से कहा कि तुम इस लाक्षागृह को आग के हवाले कर दो। पांडवों के भस्म होने पर मैं तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूरी कर दूंगा। दुर्योधन की यह बात सुनकर कोटपाल आश्चर्य से भर गया व उसने ऐसा करने से मना कर दिया। पुनः दुर्योधन के धमकाने पर वह बोला कि चाहे आप मेरा सिर धड़ से अलग कर दें, पर मैं ऐसा जघन्य कार्य नहीं कर सकता। उसका यह जवाब सुनकर दुर्योधन ने उसे कारागार में डाल दिया। इसके बाद दुर्योधन ने अपने दूसरे विश्वासपात्र पुरोहित को इस कार्य के लिए बुलवा लिया। दुर्योधन यह भलीभांति जानता था कि लोभी प्रवृत्ति का यह पुरोहित इस कार्य को मना नहीं करेगा। अतः उसने उसे लोभ व लालच देकर लाक्षागृह में आग लगाने का दायित्व सौंप दिया। विप्र लोभ में आ गया। लोभ समस्त पापों का मूल कारण है। उस लोभी ने पांडवों के उस महल में रात्रि में चारों ओर से अग्नि प्रज्वलित कर दी, मानों उस विप्र ने महल के साथ ही मनुष्यत्व एवं ब्राह्मणत्व की भी अग्नि में आहुति दे दी हो। शीघ्र ही वह विशाल लाक्षागृह धू-धू कर जलने लगा। इधर महल धू-धू कर जल रहा था, उधर पांडव रात्रि में उसी महल में सूखपूर्वक सो रहे थे। जब आग की लपटें महल के अंतःप्रांगण में पहुँचीं, तब जाकर पांडवों की नींद टूटी। तब तक दीवारें ढह-ढह कर गिरना प्रारंभ हो गई थीं। जब पांडवों को बचने का कोई उपाय न सूझा, तब युधिष्ठिर जिनेन्द्रदेव का ध्यान करने लगे। तभी कुन्ती भी निद्रा से जाग गई व चारों ओर अग्नि देखकर चकरा गई। इस असामयिक विपत्ति को देखकर सभी पांडव अति व्याकुल उठे। तभी भीम की निगाह एक दरार पर पड़ी; जिस पर एक विशाल शिला रखी हुई थी। बलशाली भीम ने उस

शिला को जैसे ही उठाया तो उसे एक सुरंग दिखाई दी। तब सभी पांडव उस सुरंग से निकलकर अपनी माता के साथ उस महल से बाहर निकल गये। यह सुरंग बाहर एक वन में खुलती थी। इसी बीच भीम ने पास में स्थित एक श्मसान में पड़े शवों में से 6 शवों को उठाकर उस जलते हुए लाक्षागृह में डाल दिया, ताकि दुर्योधन समझे कि सभी पांडव व कुन्ती महल में जलकर मर गये। इसके बाद सभी पांडव वहां से निकल कर देशाटन को चले गये। इस घटना से प्रजा दुर्योधन के खिलाफ हो गई।

प्रातः होने पर यह जानकर कि सभी पांडव जलकर मर गए हैं, लोकाचार हेतु दुख प्रकट करते हुए दुर्योधन सभी कौरव भाइयों को साथ लेकर उस जले हुए महल के पास पहुँचे। इस घटना से हतप्रभ जनता भी विलाप करने लगी व कहने लगी कि देखो यह हस्तिनापुर अब कैसा उजाड़ सा दिख रहा है। जब इस घटना का पता भीष्म पितामह को चला, तो वे यह समाचार सुनकर मूर्च्छित हो गये। मूर्छा दूर होने पर वे विलाप करने लगे व बोले कि मुझे पूर्ण संदेह है कि किसी ने कपट पूर्वक सौम्यमूर्ति पांडवों को छल लिया है। द्रोणाचार्य भी यह समाचार सुनकर मूर्छित हो गये। वे भी इस कांड के पीछे कौरवों का हाथ होने की सोचने लगे। द्रोणाचार्य ने तो कौरवों से स्पष्ट कह भी दिया कि तुम लोगों को इस तरह अपने ही कुल का विनाश कर देना क्या उचित *प्रतीत हो रहा है। यह सुनकर कौरव नीचा मुंह कर खड़े हो गये। इसके बाद जले हुए महल की अग्नि को शीतल किया* गया। तब उसमें जले हुए छः शव मिले। इससे सभी को यह पूर्ण निश्चय हो गया कि माता कुन्ती के साथ सभी पांडव विदग्ध हो गये हैं। यह देखकर हस्तिनापुर का कण-कण शोक सागर में निमग्न हो गया। पर कौरवों की जननी गांधारी को इस समाचार से हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने अपने सभी पुत्रों को बधाई दी व इस उपलक्ष्य में एक विराट उत्सव का आयोजन भी कर डाला। सभी कौरव पांडवों का क्रियाकांड कर निश्चिंत हो गये।

जब यह समाचार द्वारिका पहुँचा तो पांडवों के प्रति किये गये घोर अन्याय का सभी यादवों ने प्रतिशोध चुकाना चाहा। इसमें समुद्रविजय सहित दसों भाई, वलभद्र व नारायण भी शामिल थे। जब वे अपनी सेना को सुसज्जित कर प्रस्थान करने लगे तो श्रीकृष्ण बोले– जब मैं हस्तिनापुर में ससैन्य पहुँचूंगा तब कौरवों का समस्त अभियान दूर हो जायेगा। इसी बीच किसी विद्वान मंत्री ने कहा– कौरवों के अधीन भी समस्त शस्त्रों से सुसज्जित चतुरंगणी सेना है, प्रचंड महारथी हैं व सहायक नरेश भी हैं। कौरवों को जरासंध का पूर्ण सहयोग है। अतः दुर्योधन आपसे भयभीत नहीं होगा। इस समय दुर्योधन आपसे भय नहीं खायेगा। वैसे ही हम सभी गुप्तवास कर रहे हैं। अतः इस समय युद्ध के विचार को त्याग देना ही उचित है। तब विचार-विमर्श कर तत्काल युद्ध की तैयारी रोक दी गई व वे सभी शांत हो गये।

उधर पांडव माता कुन्ती के साथ चलते-चलते गंगा तट पर पहुंच गये व एक धीवर से नाव मांगकर उसमें सवार होकर गंगा नदी पार करने लगे। परन्तु नाव बीच मझधार में जाकर स्तंभित हो गई। तब धीवर ने पांडवों को बतलाया कि यहां तुडिंका देवी रहती है; अतः उसे मानव बलि का उपहार भेंट कर नौका को मुक्त करवा लीजिये। उसने कहा शीघ्रता कीजिये अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। यह सुनकर सभी पांडव बिना पंक के ही आकंठ फंस गये। काफी विचार विमर्श के बाद युधिष्ठिर ने शांत चित्त होकर प्राणप्रिय परिजनों का संकट मोचन करने के लिए स्वयं अपनी बलि देने का विचार किया व सभी को संबोधित कर बलि देने को उद्धत हो गये। यह देखकर कुन्ती मूर्छित हो गई। तभी भीम बोले–आप ऐसा नहीं कर सकते, मैं ही अपने प्राणों की बलि देता हूँ। यह कहकर भीम तुंडिका देवी को परास्त करने हेतु गंगा की मध्य धारा में कूद गये। भीम के कूदते ही नाव मुक्त हो गई व शेष पांडव माता कुन्ती के साथ गंगा पार जा पहुँचे। इधर भीम के गंगा में कूदते ही तुंडिका देवी जब मगर का रूप धारण कर भीम की ओर बढ़ी तभी भीम उस मगर पर झपटे

व तुंडिका देवी को परास्त कर गंगा को तैर कर पार कर अपने भाइयों के साथ हो लिए।

गंगा पार कर सभी पांडवों ने ब्राह्मणों का भेष धारण कर कौशिकपुरी नगरी में प्रवेश किया। वहां राजा वर्ण का शासन था। प्रभावती/प्रभाकरी उसकी महारानी थी। उसके कमला/कोमला नाम की सुन्दर कन्या थी। एक बार कोमलांगी कोमला वन क्रीड़ा को गईं। वहां पांडव भी अपनी माता कुन्ती के साथ उपस्थित थे। वे स्नान कर दर्शन पूजन कर रहे थे; तभी कोमला की दृष्टि पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर पर पड़ी, वह उन्हें देखकर कामज्वर से पीडित हो गई। सभी सहेलियों के साथ वह अपने महल में आ तो गई किन्तु उसका मन युधिष्ठिर पर ही बना रहा। उसकी यह दशा देखकर उसकी माता ने उससे इसका कारण पूछा; तब कमला ने अपने मन की बात अपनी माता से कह दी। कमला की माता ने यह बात अपने पति राजा वर्ण से कही, तब मंत्रियों से परामर्श करने के पश्चात् राजा ने पांडवों को महलों में बुलवा लिया व उनको आदर सत्कार पूर्वक भोजन आदि कराकर योग्य अवसर पाकर अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव युधिष्ठिर के साथ रख दिया। माता कुन्ती ने शीघ्र ही यह प्रस्ताव स्वीकार कर दोनों का विवाह करा दिया। यहां कुछ समय रूकने के बाद कमला को वहीं छोड़ कर व द्वारिका जाने की कह कर वहां से चलकर वे सभी पुण्यद्रुम/श्लेषमांतक वन में स्थित एक जिनालय में पहुँचे। उन्होंने वहां स्थित मुनिराज व आर्यिका माता के दर्शन किये। आर्यिका माता के पास ही एक सुन्दर बाला बैठी थी। जब कुन्ती ने आर्यिका माता से उस बाला के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि यह कौशाम्बी नगरी के नरेश विन्ध्यसेन व उनकी रानी विन्ध्यसेना की पुत्री बसंतसेना है।

राजा ने अपनी पुत्री का विवाह पांडव पुत्र युधिष्ठिर से करने का संकल्प लिया था। पर कौरवों ने पांडवों को कपटपूर्वक लाक्षागृह में जला दिया। तब बसंतसेना जो पहले ही युधिष्ठिर को अपना पति मान चुकी थी; उसने किसी

और को वरण न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अब वह दीक्षा लेने को तत्पर है। राजा ने दीक्षा पूर्व शास्त्र ज्ञान के लिए उसे यहां रखा है। इसका शील व चरित्र निर्दोष व परम पवित्र है। वार्तालाप पूर्ण हो जाने पर बसंतमाला ने पांडवों के साथ की स्त्री से उनका परिचय जानना चाहा; तब कुन्ती ने अपना छद्म परिचय देकर अपने को ब्राह्मण बतलाया व कहा कि हे पुत्री इसी प्रकार शील व धर्म के व्रतों का पालन करती रहो। तुम्हें दीक्षा के विचार का परित्याग कर अपने चित्त को श्रावक धर्म के व्रतों में लगाना श्रेयस्कर होगा। संभव है कि तुम्हारे पुण्य प्रताप से पांडव गण वहां से जीवित बच निकले हों।

ऐसा कहकर वे सभी पांडव वहां से गमन कर त्रिशृंग नगर आ पहुँचे। यहां के नगर के नरेश का नाम चंडवाहन व उसकी महारानी का नाम विमलप्रभा था। इनके गुणप्रभा, सुप्रभा, ह्रीं, श्रीं, रति, पदमा, इन्द्रीवरा, विश्वा, आश्चर्या व अशोका नाम की 10 सुन्दर कन्यायें थीं। ये सभी कन्यायें रूपवती, शीलवती, गुणवती, सुशिक्षित व विदुषी थीं। जब राजा ने निमित्तज्ञानी से इन पुत्रियों के विवाह के बारे में जानना चाहा तो निमित्तज्ञानी ने इस दसों कन्याओं के लिए योग्य वर पांडु पुत्र युधिष्ठिर को ही बतलाया था। परन्तु पांडवों के विषय में दुखद समाचारों से सभी दुखी थे। इसी नगर में प्रियमित्र पत्नी सौमनी सेठ के भी नयन सुन्दरी नाम की कन्या थी। निमित्त ज्ञानी ने इसका पति भी युधिष्ठिर बतलाया था। वे कन्यायें अब विरक्ति के मार्ग की ओर अग्रसर थीं। वे संकल्पानुसार युधिष्ठिर को ही अपना मनोनीत पति मानकर संयम व्रत धारण करतीं थीं। उन्हें एक दिन जिनालय में दमतारि नाम के मुनिराज के दर्शन हुए। जब उन कन्याओं ने दीक्षा हेतु उनसे अनुरोध किया। तब मुनिराज ने उन्हें इस कम उम्र में ऐसा कठोर निर्णय लेने के पूर्व विचार करने हेतु कहा। तब सभी 11 कन्याओं ने उन्हें अपनी व्यथा बताकर कहा कि जब पांडव ही नहीं हैं तो विवाह कैसा? तब मुनिराज बोले—रूको—थोड़ी ही देर में पांचों पांडव यहीं

आ रहे हैं। उनके आगमन के बाद जो निर्णय तुम सब करोगी; वैसा होगा।

अवधिज्ञान से बतलायी ये बातें चल ही रही थीं, कि तभी पांचों पांडव वहां आये। उन्होंने मुनिराज को नमस्कार कर उनकी पूजा वंदना की। पांडवों को देखकर वे एकदश कुमारियां अति प्रसन्नता को प्राप्त हो गईं तथा वे नगर की ओर प्रस्थान कर गईं। राजा चण्डवाहन सूचना मिलते ही दल-बल के साथ जिनालय आ पहुँचा व मुनिराज के दर्शन कर पांडवों को माता कुन्ती के साथ अपने महलों में लिवा लाया। वहीं माता कुन्ती की आज्ञा से युधिष्ठिर का विवाह उन ग्यारह कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ।

सभी पांडव माता कुन्ती के साथ अकेले ही आगे बढ़कर एक जंगल में एक बट वृक्ष के नीचे पहुँचे। जहां युधिष्ठिर आदि तो सो गये पर भीम जागते रहे। तभी एक विद्याधर वहां एक सुंदरी को लेकर आया व भीम से उसे अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करने लगा। वह बोला—यहीं पास में एक संध्याकार नाम का नगर है। जहां राजा सिंहघोष का शासन है। इनकी रानी का नाम लक्ष्मणा/सुदर्शना है। यह नरेश हिडम्ब वंशीय है। उन्हीं की ये कन्या हिडम्बा हृदयसुन्दरी है। एक निमित्तज्ञानी ने यहां के राजा को बतलाया था कि इसका वर वहीं होगा, जो पिशाच वट के तले निश्चिंततापूर्वक जाग्रह रह सकता हो या अपने बाहुबल से इस वृक्ष में निवास रत पिशाच को पराजित कर सकता हो। आप हमें इस वृक्ष के नीचे जाग्रत अवस्था में मिले; अतः आप ही इस राज-कन्या के योग्य वर हैं। तभी उस कन्या ने भी निवेदन किया कि आप शीघ्रता कर मेरा वरण करें अन्यथा पिशाच आ जायेगा।

यहां एक विद्याधर भी अपनी विद्याओं की पुनः प्राप्ति के लिए साधना करता है। वह भी बड़ा भयंकर व दुष्ट है। यह सुनते ही भीम ने विशाल गर्जना कर उस पिशाच का आह्वान किया। यह गर्जना सुनकर वह पिशाच भीम के सम्मुख युद्ध हेतु आकर खड़ा हो गया। दोनों में विभिन्न

प्रकार का युद्ध चल ही रहा था कि विद्याधर ने हिडम्बा का हाथ पकड़कर कहा– हे कामिनी! मेरे रहते हुए इतना साहस अन्य किसमें है, जो तुमसे विवाह कर ले। तभी भीम ने उस विद्याधर को एक ही चोट से धराशायी कर दिया। जब भीम ने पुनः पिशाच पर आक्रमण किया; तभी धराशायी हुआ वह विद्याधर पुनः चैतन्य होकर बोला– पिशाचराज तुम हट जाओ इतना कहकर वह भीम से फिर भिड़ गया। तब भीम उसे पटक कर उसकी पीठ पर पैर रखकर खड़ा हो गया। जिससे उस विद्याधर का मद सर्वथा विनष्ट हो गया व वह भीम से क्षमा याचना कर तपस्या हेतु एकांत स्थान की ओर भाग गया। पिशाच भी परास्त होकर भाग गया। तभी युधिष्ठिर आदि की नींद खुल गई। सारा वृतांत जानकर युधिष्ठिर व कुन्ती ने भीम से उस कन्या के विवाह की अनुमति दे दी। पांडव कुछ दिनों तक राजा सिंहघोष के मेहमान रहे। कुछ समय पश्चात् भीम व हृदयसुन्दरी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। भीम के पुत्र का नाम घटुक रखा गया।

हिडम्बा को वहीं छोड़कर पांडव माता कुन्ती के साथ वहां से चलकर भीम नामक वन में पहुँचे। जहां भीमासुर नाम का एक देव निवास करता था। वह देव दुर्जेय, महादुष्ट व उद्दंड था। वह पांडवों को देखकर बोला– आपने इस वन भूमि को अपने पगों से अपवित्र करने का साहस कैसे किया? यह सुनकर भीम ने उसे ललकारा व उस देव के मान व अभिमान को चूर्ण कर उसे परास्त कर दिया। तब वह देव भीम को नमस्कार कर वहां से चला गया। पांडव माता कुन्ती के साथ विहार करते हुए श्रुतपुर नगर पहुँचे व वहां जिनदर्शन कर एक वैश्य के घर में रूक गये। रात्रि में घर के अंदर से एक स्त्री की रोने की आवाज सुनकर कुन्ती अंदर गई। तो वहां वैश्य पत्नी रो रही थी।

कुन्ती के पूछने पर वह बोली– यहां का राजा मांस-भक्षी है। एक दिन जानवर का मांस न मिलने पर रसोइये ने उसे श्मशान से उठकार लाये गये बच्चे का मांस खिला दिया। राजा को यह बहुत पसंद आया व ऐसा ही मांस रोज पकाने

को रसोइये से कहा। तब रसोइया राजा की आज्ञा पाकर निडर होकर नगर में खेलने गये बालकों में से पीछे रह जाने वाले बालक को पकड़कर उसका मांस राजा को खिलाने लगा। बच्चों की निरंतर हो रही कमी से नगर में अशांति फैल गई व लोग संतर्क हो गये। तब एक दिन वह रसोइया नगरवासियों की सर्तकता से एक बालक के साथ पकड़ा गया। खुलासा होने पर प्रजा ने राजा को राजगद्दी से उतार दिया। परंतु वह बाहर वन में जाकर रहने लगा व वहीं से शासन चलाकर लोगों की हत्या कर खाने लगा। तब प्रजा ने उपाय स्वरूप प्रतिदिन एक व्यक्ति को उसे देने का निश्चय किया। आज मेरे पुत्र की बारी है, अतः मैं करुण क्रंदन कर रही हूँ। मेरे पुत्र को अब कौन बचायेगा। मेरा यह इकलौता पुत्र है। राजा बक विगत 12 वर्षों से ऐसा कर रहा है। कुन्ती को यह सब जानकर अत्यन्त दुख हुआ व वह भी वैश्य वधू के साथ रोने लगी व उसे समझाने लगी कि तुम डरो मत। मैं तुम्हारे पुत्र की अवश्य रक्षा करूंगी। तब कुन्ती ने वापिस आकर अपने पुत्रों को राजा बक का पूरा वृतांत सुना दिया व कहा कि उसके इकलौते पुत्र की रक्षा हमें करनी चाहिए व कोई ऐसा उपाय भी सोचना चाहिए ताकि वह नरभक्षी हमेशा हमेशा के लिए मांसाहार त्याग दे। हमें इस वैश्य के घर रूकने का ऋण भी चुकाना है।

यह चर्चा चल ही रही थी कि तभी नगर कोटवाल वैश्य पुत्र को लेने आ गया। तभी भीम बोले—आज वह बालक नहीं, मैं स्वयं बक के पास जाऊंगा व अपनी बलि देकर उसे प्रसन्न करूंगा। जब भीम बक के पास पहुँचा तो उसने अपने साथियों के साथ घनघोर निनाद किया व भीम से भिड़ गया। तब भीम ने उसे उठाकर भूमि पर पटककर मुष्टि से प्रहार किया व फिर उसे उठाकर चकरी की भांति घुमाने लगा। भीम बक को घुमा घुमाकर पटकना ही चाहता था कि तभी वह भीम से क्षमा मांगने लगा। तब भीम ने उससे वचन लिया कि वह जीवन में कभी भी नर मांस का भक्षण नहीं करेगा व उसकी आज्ञा का हमेशा पालन करेगा। बक ने घबराकर

भीम की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। तब भीम ने राजा बक को प्राणदान दे दिया। इस घटना से नगर की प्रजा अति प्रसन्न हो गई व भीम को गजराज पर बिठाकर प्रजा ने उसको सम्मान दिया। पांडवों ने यहीं रुककर अपना वर्षाकाल पूर्ण किया। बाद में वे सभी वहां से विहार कर गये।

विहार कर वे सभी चंपापुरी नगरी पहुँचे। इस नगरी का राजा कर्ण था। पांडव वहां एक कुम्हार के घर रूके। एक दिन राजा कर्ण का एक हाथी उन्मत्त होकर बस्ती में घुसकर विनाश करने लगा। भीम ने उस बिगड़ैल हाथी को शीघ्र ही वश में कर लिया। यहां से सभी पांडव गमन कर वैदेशिकपुर नगर पहुचें। यहां का राजा वृषध्वज था। उसकी महारानी का नाम दिशावली था। दिशानंदी उसकी अति गुणवान व रूपवान कन्या थी। एक दिन जब भीम भोजन सामग्री एकत्र करने महल के पास से गुजरे, तो राजपुत्री उसे देखकर मोहित हो गई। राजा को विदित होने पर उन्होंने भीम को महलों में बुला लिया। राजा ने उस ब्राह्मण को भिक्षार्थी समझकर अपनी कन्या उसे दान में देनी चाही, पर भीम के यह कहने पर कि इस विषय में मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मेरे अभिभावक व अग्रज की आज्ञा के बिना मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। तब भीम के ऐसा कहने पर राजा पांडवों के निवास पर गये व उन्हें अपने महलों में आमंत्रित कर उन सभी का सत्कार किया व भोजन कराया। इसके बाद राजा ने अपनी अभिलाषा प्रकट की। जिसे माता कुन्ती व युधिष्ठिर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया व भीम के साथ दिशानंदी का विवाह सम्पन्न करा दिया।

इसके बाद सभी पांडव माता कुन्ती के साथ वहां से चलकर नर्मदा नदी को पार कर विंध्याचल पर्वत के शिखर पर स्थित जिनालय पहुँचे। यहां भीम ने जिनालय के पट खोले व सभी ने मंदिर में विधिपूर्वक पूजा अर्चना की। तभी मणिभद्र नाम के देव वहां पहुँचे व बोले–एक योगीराज ने भविष्यवाणी की थी कि जो कोई इस जिनालय के बंद पट खेलेगा, वह परम प्रतापी व पराक्रमी महापुरुष होगा। आपने

इस बंद पड़े जिनालय के पट खोले हैं। अतः मैं आपको प्रसन्न होकर शत्रु विघातनी नाम की एक विशाल गदा प्रदान करता हूँ। उसने रत्नों की वर्षा भी की तथा वस्त्राभूषणों से पांडवों का स्वागत किया। उसने पांडवों को उत्तम विद्यायें भी प्रदान कीं। तब विपुलोदर भीम के साथ पांडवों ने सुखपूर्वक वहां कुछ दिन व्यतीत किये। युधिष्ठिर ने मणिभद्र देव से जब पूछा कि आपने ये गदा भीम को ही क्यों दी। तब मणिभद्र देव ने बतलाया कि विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनुपूर नगर नरेश मेघवाहन थे, उनकी धर्मप्रिया पत्नी का नाम प्रीतिमती था, इनके अघवाहन नाम का पुत्र भी था। एक बार नरेश मेघवाहन ने गदा प्राप्ति की इच्छा से विंध्या पर्वत पर साधना की। साधना सफल होने पर इन्हें गदा की प्राप्ति हो गई। तभी मेघवाहन ने आकाश मार्ग से देवों को कहीं जाते देखा व उनसे पूछा, आप सब देवता कहां जा रहे हैं। तब उन्होंने कहा कि इसी पर्वत पर क्षमाधर महाराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है अतः उनके केवलज्ञान उत्सव को मनाने व उनकी देशना सुनने जा रहे हैं। तब मेघवाहन भी गदा के साथ वहां जा पहुँचा व उनकी दिव्य ध्वनि सुनकर विरागी होकर अपने पुत्र अघवाहन को राज्य सौंपकर दीक्षा हेतु जाने लगा। तब गदा के कहने पर कि अब मेरा क्या होगा। मैं तो अपने स्थान से च्युत होकर आपके पास आई थी। तब उन्हीं योगीराज ने गदा से कहा कि यहीं पांडु पुत्र भीम आवेंगे। वे मंदिर के बंद कपाट खोलेंगे, उन्हीं के पास आप रहना।

मणिभद्र देव बोले—तभी से मैं उस क्षण की प्रतीक्षा कर इस गदा की रक्षा कर रहा हूँ। अब भीम ने चूंकि बंद कपाट खोले थे, अतः वे ही इस गदा के पात्र हैं। ऐसा कहकर मणिभद्र देव वहां से अपने स्थान को चला गया।

इसके बाद पांडव माता कुन्ती के साथ दक्षिणात्य प्रदेशों में विहार करते हुए हस्तिनापुर को लक्ष्य कर लौटे व माकंदी नाम की नगरी पहुँचे। यहां फिर वे एक कुम्हार के घर रूके। इस नगरी के राजा द्रुपद थे। इनकी धर्मपरायणा महारानी का

नाम भोगवती था। इनके कई पुत्र थे। जिनमें से एक का नाम द्रष्टद्युम्न था। उनकी एक कोमलांगी पुत्री द्रौपदी भी थी। वह रूप, गुण, बुद्धि, वय व स्वभाव में अद्वितीय थी। उसकी मंद-मंद चाल से हंस भी लज्जित था। अपनी पुत्री के विवाह हेतु उसने स्वयंवर रचकर दुर्योधन आदि राजाओं को भी निमंत्रित किया था। कर्ण, समुद्रविजय आदि के साथ सैंकड़ों राजा व राजपुत्र भी इस स्वयंवर में आये थे। वहीं खगाचल पर्वत पर विद्याधर नरेश सुरेंद्रवर्धन भी रहता था। उसके पास गांडीव धनुष था। एक निमित्त ज्ञानी ने उसे बतलाया था कि जो वीर माकंदी पुरी में आकर तुम्हारे विशाल व उत्तम गांडीव धनुष को चढ़ायेगा, वही तुम्हारी पुत्री का वर होगा।

यह जानकर वह अपनी पुत्री व गांडीव धनुष के साथ माकंदीपुरी आया व वह धनुष द्रुपद को सौंप दिया। तब नरेश सुरेंद्रवर्धन ने स्वयंवर की घोषणा कर कहा कि जो गांडीव धनुष को चढ़ाकर लक्ष्य को भेद करेगा; वहीं दोनों कन्याओं का वरण करेगा। इस स्वयंवर मंडप में उपस्थित नरेश व राजपुत्र अनेक प्रकार की भाव व्यंजक चेष्टाओं द्वारा अपने मनोभाव व्यक्त कर रहे थे। अयोध्या नरेश व दुर्योधन वीरता दिखाने के बाद भी पस्त पड़ गये थे। इसी स्वयंवर मंडप में पांडव भी ब्राह्मण वेश में एक स्थान पर शांत भाव से बैठे थे। सभी नरेशों को पराजित होता देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से गांडीव चढ़ाने को कहा। अनुमति पाकर सिद्ध भगवंतों का स्मरण कर व अग्रजों को नमस्कार कर अर्जुन उठे। अर्जुन को देखते ही द्रौपदी भी ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन्! यह वीर धनुष को चढ़ावे। अनायास ही वहां जाकर अर्जुन ने गांडीव को उठा लिया व एक गंभीर टंकार किया। तभी वहां उपस्थित द्रोणाचार्य के मुख से सहसा निकल गया कि क्या स्वर्गवासी अर्जुन पुनः जीवित हो गया है। तभी अर्जुन ने लक्ष्य/राधा की नासिका के मुक्ता को एक ही तीर से एक ही बार में निबद्ध कर दिया। तब सभी ने मुक्त कंठ से इस साहसी वीर की भूरि-भूरि प्रशंसा की। द्रुपद अत्यन्त प्रसन्न हो गये। द्रौपदी वरमाला पहनाने जा रही

रही थी कि संयोगवश वायु के झोंके से वह टूट गई व उसके पुष्प अर्जुन के पास बैठे सभी भाइयों पर जा गिरे। दर्शकों ने समझा कि द्रौपदी ने पांचों पांडवों का एक साथ वरण कर लिया है। तभी से यह दंत कथा चल पड़ी पर इसमें सत्यता नहीं है।

इसके बाद द्रौपदी जाकर अर्जुन के समीप खड़ी हो गई व बाद में माता कुन्ती के पास जाकर बैठ गई। तभी दुर्योधन क्रोध से तमतमाकर बोला– हम बड़े-बड़े राजाओं की उपस्थिति के बीच इस निर्धन ब्राह्मण को स्वयंवर मंडप में किसने प्रवेश करने दिया। इसने हम सभी राजाओं का अपमान किया है। तभी दुर्योधन ने एक दूत को द्रुपद नरेश के पास भेजकर कहलवाया कि आपकी कन्या ने बड़े-बड़े राजाओं के रहते एक अज्ञात निर्धन ब्राह्मण को पति चुनकर बड़ा अन्याय किया है। अत: ब्राह्मण को कुछ दान देकर संतुष्ट कर दें व द्रौपदी को किसी योग्य नृपति को सौंप दें। अन्यथा युद्ध को तैयार हो जावें। दूत के वचन सुनकर द्रुपद ने ऐसा करने से मना कर दिया व अपनी सेनाओं को मित्र राजाओं सहित तैयार रहने का आदेश दे दिया। तब दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध प्रारंभ हो। इसके पूर्व उन ब्राह्मणों ने राजा द्रुपद से पांच रथ शस्त्रों सहित देने को कहा। उन रथों पर सवार होकर व दृष्टद्युम्न को द्रौपदी की रक्षा का भार सौंपकर सभी पांडव युद्ध-स्थल को रवाना हो गये। युद्ध-स्थल में भीम शत्रु पक्ष के सैनिकों को विध्वस्त करता हुआ निरंतर आगे बढ़ रहा था। तभी दुर्योधन स्वयं युद्ध क्षेत्र में आ गया। कर्ण भी उसके साथ था। अर्जुन के बाण कर्ण के बाणों को नष्ट कर ही रहे थे कि तभी कर्ण ने पूछ लिया कि हे द्विज श्रेष्ठ आप कौन हैं? तब अर्जुन बोले हे कर्ण, मुझे तुम ब्राह्मण ही समझो। तब कुछ ही देर में अर्जुन ने कर्ण की पताका, छत्र व कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया।

कौरव सेना ध्वस्त विध्वस्त हो रही थी। यह देखकर गांगेय/भीष्म पितामह युद्ध भूमि में आ गये, तभी अर्जुन ने बाणों से उनका रास्ता रोक दिया। द्रोणाचार्य भी यह देखकर

आश्चर्य में पड़ गये एवं कह उठे–पांडव ही इस समर भूमि में हमारे विरूद्ध वीरतापूर्ण युद्ध कर रहे हैं। ऐसा रण-कौशल अन्य में हो ही नहीं सकता। यह मेरी अंतरात्मा कह रही है। वे लाक्षागृह से बच निकले होंगे। यह सुनते ही दुर्योधन भयभीत हो गया व द्रोणाचार्य से कहने लगा कि वर्षों पूर्व मृत लोग भी क्या जीवित हो सकते हैं? तब द्रोणाचार्य स्वयं युद्ध में शामिल हो गये। गुरु द्रोण को सामने देखकर अर्जुन ऊहापोह में पड़ गया, पर-अंत में सात कदम आगे बढ़कर गुरु द्रोणाचार्य को नमन कर बाण में लगाकर एक पत्र भेजा। जिसमें उसने स्वीकार किया कि वह कुन्ती पुत्र अर्जुन ही है और आपका परम शिष्य है। कौरवों ने तो हमें नष्ट करने का पूरा प्रयास किया पर दैवयोग से हम लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ सके। आपसे अनुरोध है कि आप युद्ध से अलग होकर केवल युद्ध देखें व कौरवों को अपने किये का फल भुगतने दें।

कौरव पाण्डवों का पुनर्मिलन तथा अभिमन्यु-जन्म

यह पत्र पढ़ कर गुरु द्रोण से नहीं रहा गया और वे पत्र लेकर दुर्योधन व कर्ण के समीप गये। कर्ण तो यह समाचार सुनकर अति प्रसन्न हुआ पर दुर्योधन इस समाचार से बज्राहत सा स्तब्ध रह गया। तब द्रोणाचार्य जाकर पांडवों से मिले। सभी पांडवों ने नतमस्तक होकर गुरु द्रोण को प्रणाम किया। युद्ध रोक दिया गया। फिर गांगेय, कर्ण व कौरव गण भी पांडवों के पास जा पहुँचे व वे सभी परस्पर गले मिले इस घटना से कौरव अपने आपको काफी लज्जित महसूस कर रहे थे। फिर सभी लोग कुम्हार के घर जाकर माता कुन्ती से मिले। कुन्ती ने कौरवों को उनके जघन्य कृत्य के लिए धिक्कारा, परन्तु कौरवों के क्षमा मांगने पर कुन्ती ने उन्हें माफ कर दिया। राजा द्रुपद यह जानकर अति प्रसन्न हुए कि वे ब्राह्मण वेश में पाण्डव ही हैं। इसलिये उन्होंने शीघ्र ही अर्जुन के साथ द्रौपदी व विद्याधर की पुत्री का विवाह सम्पन्न कर दिया। फिर सभी पांडव व कौरव इकट्ठे होकर माँ कुन्ती, गांगेय व द्रोणाचार्य के साथ हस्तिनापुर आ गये। हस्तिनापुर पहुँचने पर वहां की प्रजा ने खुशी-खुशी पांडवों का आत्मीय स्वागत किया। हस्तिनापुर आने पर कौरवों व पांडवों ने पुनः राज्य को आधा-आधा बांट लिया व वे सभी सुखपूर्वक वहां राज्य करने लगे। पांडवों ने अपने राज्य के पांच भाग कर प्रत्येक भाई को एक-एक भाग दे दिया। युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में, भीम नित्यपथ में, अर्जुन सुनपत में, नकुल जलपथ में व सहदेव वणिकपथ में रहकर अपने-अपने राज्यों की बागडोर संभालने लगे। पाण्डवों का हृदय विशाल था। वे सभी युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करते थे। भीष्म पितामह को सभी पांडव अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

एक बार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्रीड़ा हेतु गिरनार पर आमंत्रित किया। उनके आमंत्रण पर अर्जुन गिरनार पहुँच

गये। वहां पर कृष्ण व अर्जुन ने विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें कीं। तत्पश्चात श्रीकृष्ण अर्जुन को द्वारिका ले गये। वहां अर्जुन ने अति रूपसी युवती को देखा, जिससे वह उस पर मोहित हो गये। तब जिज्ञासावस अर्जुन ने कृष्ण से ही उस युवा सुन्दरी के बारे में पूछ लिया। तब कृष्ण ने अर्जुन को बतलाया कि यह मेरी सहोदरा सुभद्रा है। तब पार्थ अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि ये मेरे मामा की पुत्री है, मैं इससे विवाह करना चाहता हूँ, तब कृष्ण ने अर्जुन का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर श्रीकृष्ण के आदेश से एक रथ मंगवाया गया। इस रथ पर अर्जुन सवार हो गये व कृष्ण व सुभद्रा की अनुमति से उसी रथ पर अर्जुन ने सुभद्रा को बिठाया व पवन गति से वे वहां से चले गये। तुरंत सुभद्रा हरण की सूचना चारों ओर फैल गई, परिणामस्वरूप तुरंत समुद्रविजय, बलदेव आदि समस्त यादव गण सुभद्रा को ढूंढने निकल पड़े। श्रीकृष्ण भी मुस्कुराते हुए सबके साथ हो गये। उन्होंने अपना पांचजन्य शंख फूंक दिया, परन्तु पार्थ अर्जुन व सुभद्रा किसी को भी नहीं मिले। तब श्रीकृष्ण बोले कि जो होना था सो हो गया। लांछन से बचने के लिए यह ही उत्तम होगा कि हम अर्जुन के साथ ही सुभद्रा का विवाह कर दें। सभी की सहमति हो जाने पर श्रीकृष्ण ने सुभद्रा को लाने हेतु सुनपत नगर को अर्जुन के पास इस विशेष संदेश के साथ एक दूत भेजा, जो शीघ्र ही सुभद्रा को लेकर वापिस आ गया। तब विधि-विधान पूर्वक राजसी ठाट-बाट से सभी पांडवों को विवाह हेतु आमंत्रित किया गया व अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह कर दिया गया। द्वारावती में ही भीम ने लक्ष्मीवती व शेषवती के साथ, नकुल ने विजया के साथ व सहदेव ने सुरति के साथ पाणिग्रहण कर विवाह किये। कालांतर में सुभद्रा ने एक यशस्वी पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम अभिमन्यु रखा गया।

द्यूत-क्रीडा में पाण्डवों की हार तथा द्रौपदी चीरहरण

एक बार दु:शील दुर्योधन ने पांडवों को अपने यहां आमंत्रित कर उन सभी का यथोचित सत्कार किया व स्नेह पूर्वक कहा कि आइये– मेरा मन अस्थिर हो रहा है। अत: कुछ समय के लिए द्यूत क्रीड़ा की जाए। युधिष्ठिर दुर्योधन के कपट को समझ नहीं पाये व द्यूत क्रीड़ा हेतु बैठ गये। पांसें फेंके जाने लगे, परन्तु पांसें केवल कौरवों के ही पक्ष में पड़ रहे थे। तब भीम जिज्ञासु होकर पांसों को देखने लगा। जिससे अब पांसें कभी-कभी युधिष्ठिर के अनुकूल भी पड़ने लगे। कौरवों ने अपनी पराजय होती देखकर भीम को इसका कारण मानकर किसी बहाने उसे बाहर भेज दिया। तब कुछ ही क्षण में कपट से कौरवों ने युधिष्ठिर को हरा दिया व उनसे उनका सब कुछ छीन लिया।

युधिष्ठिर द्यूत क्रीड़ा (जुएं) में अपना सभी राजपाट तक हार गये। इसके बाद युधिष्ठिर ने अपनी महिषियों व भ्राताओं को भी दांव पर लगा दिया। तभी भीम पुन: वहां आ गया व अपने बड़े भाई से निवेदन किया कि यह व्यसन सर्वनाश करने वाला है। द्यूत क्रीड़ा से बढ़कर पातकी व्यसन संसार में दूसरा नहीं है। यह सब अनर्थों का मूल है। पर इसी बीच कौरवों ने पांसे फेंके व युधिष्ठिर स्वयं के साथ अपनी महिषियों व भाइयों को भी हार गया। सर्वस्व हार चुकने के बाद द्यूतक्रीड़ा समाप्त हो गई व युधिष्ठिर अपने महलों में चले गये।

तभी दुर्योधन के दूत ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा कि आप अपना सर्वस्व हार गये हैं। अत: वचनानुसार आप सभी पांडव बारह वर्ष के लिए अपना राजपाट छोड़कर अपने-अपने राज्यों से बाहर जाकर वन में वास करें। वहां भी आपको छदम वेश में रहना होगा। यदि इस अवधि में आपको किसी ने पहचान लिया, तो पुन: आपको बारह वर्ष और वनवास/अज्ञातवास में रहना पड़ेगा। अत: आप शीघ्र ही अज्ञातवास करें।

जब पांडव अज्ञातवास की तैयारी कर रहे थे तभी अकस्मात्

दुःशासन वहां आया व अतःपुर में प्रवेश कर बलात द्रौपदी को बाहर खींचने लगा। द्रौपदी के विरोध करने पर वह उसके बाल पकड़ कर बाहर खींच लाया। तब भीम ने यह देखकर दुःशासन को ललकारा व काफी बुरा भला कहा। तभी साहस जुटाकर द्रौपदी ने सभी पांडवों के पौरुष को ललकार दिया। जिससे भीम व अर्जुन का पौरुष जाग गया। वे दुःशासन की ओर दौड़े पर युधिष्ठिर की आज्ञा न मिलने व युधिष्ठिर के यह कहने पर कि समय अभी ठीक नहीं है। हम इस घटना का प्रतिशोध अवश्य लेंगे। ऐसा कहकर भीम व अर्जुन को शांत कर दिया। इसके बाद सभी पांडवों ने माता कुन्ती को अपने काका विदुर के संरक्षण में छोड़ दिया व सभी पांडव द्रौपदी के साथ वन गमन कर गये। सभी पांडव अनेक वनों, उपवनों, पर्वतों, गिरि, गुहाओं व गिरिश्रृंगों पर निर्भीक विचरण करते हुए कुछ समय बाद कालिंजर वन में आ गये। यहां आकर वे एक प्राचीन वट वृक्ष के नीचे बैठ गये व सोचने लगे कि द्यूत क्रीड़ा सर्वथा धिक्कार के योग्य है। यह नितांत अव्यावहारिक व पूर्णतः त्याज्य है।

कुछ समय बाद उसी बट वृक्ष के नीचे एक मुनि संघ आया। मुनि संघ ने सभी पांडवों को सांत्वनायुक्त उत्साहवर्धक वचनों से प्रोत्साहित किया व वे वहां से चले गये। पांडव लोग दीर्घकाल तक इस कालिंजर वन में रहे। एक दिन अर्जुन कौतुकवश समीप ही स्थित मनोहर नाम के पर्वत पर चढ़ गये। जहां उन्हें एक भविष्यवाणी सुनाई दी कि भरत क्षेत्र स्थित वैताढय पर्वत पर जाने पर तुम्हें विजय लक्ष्मी प्राप्त होगी तथा वहीं एक शतक शिष्य भी तुम्हें प्राप्त होंगे। किन्तु वहां तुम्हें 5 वर्ष भी व्यतीत करने होंगे। यहीं से तुम सभी पांडवों का अभ्युदय प्रारंभ हो जायेगा। यह भविष्यवाणी सुनकर अर्जुन वहीं एक शिला पर बैठ गए। तभी वहां एक विशालकाय भील आया, उस भील ने अर्जुन को ललकारा व उससे अनेक प्रकार से युद्ध करने लगा। पर जब अर्जुन ने उसे अपने हाथों से उठाकर और हवा में घुमाकर जमीन पर पटकना चाहा; तो उसी क्षण वह भील वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एक दिव्य पुरुष के रूप में बदल

गया व अर्जुन से कुछ मांगने को कहा। तब अर्जुन ने उससे उसका सारथी बन जाने के लिए निवेदन किया व उस दिव्य पुरुष से उसका परिचय जानना चाहा; तब वह बोला कि मैं विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के इन्द्र का सेवक हूँ। मेरे पिता का नाम विशालाक्ष है व मेरा नाम चंद्रशेखर है। हमारे पालक इन्द्र को शत्रु सताने लगे थे; अतः एक निमित्त ज्ञानी ने मुझे बताया था कि जो व्यक्ति कालिंजर के पास स्थित मनोहर नाम के पर्वत पर तुम्हें युद्ध में परास्त कर देगा; वही इन्द्र के शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होगा। आज पुण्य योग से ऐसा हो गया है; अतः आप मेरे साथ विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी स्थित हमारे मालिक व रथनुपूर नरेश इन्द्र के पास चलकर उनका उपकार करने का कष्ट करें।

दिव्य पुरुष का रूप धारण किए उस चंद्रशेखर के निवेदन पर पार्थ अर्जुन उस विद्याधर के विमान पर सवार होकर उसके साथ रथनूपुर आ गये। यहां पर इन्द्र ने इन दोनों का राजकीय सम्मान के साथ स्वागत किया व अर्जुन को ससम्मान अपने महलों में रूका लिया। कुछ समय बाद इन्द्र के शत्रुओं ने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। शत्रु का सामना करने के लिए अर्जुन ने इन्द्र को सारथी बनाया। वह रथ पर सवार होकर शत्रु दल की सेना पर टूट पड़ा तथा अपने दिव्य अस्त्रों की सहायता से अर्जुन ने शीघ्र ही शत्रु दल को परास्त कर दिया व इन्द्र को शत्रुओं से रहित कर दिया। बाद में विद्याधरों के अनुरोध पर अर्जुन वहां 5 वर्ष तक रहे; यहीं चित्रांगद आदि 100 शिष्यों को अर्जुन ने स्नेह पूर्वक प्रशिक्षण दिया व उन सबको अपना परम भक्त बना लिया। इस बीच शेष पांडव व द्रौपदी अर्जुन के वियोग में काफी दुखी रहे व अर्जुन की तलाश में भटकते रहे। पर अर्जुन 5 वर्ष रथनूपुर में व्यतीत कर जब अपने शेष भाइयों से आकर मिले, तो सभी अति प्रसन्नता को प्राप्त हुए। अर्जुन व द्रौपदी का 5 वर्ष बाद पुनर्मिलन हुआ।

एक दिन दुर्योधन को अपने जासूसों से मालूम चला कि *पांडव बंधु सहाय वन में ठहरे हैं। तब दुर्योधन ने कपट पूर्वक* पांडवों को मारने की सोची। तभी नारद अर्जुन के शिष्य

चित्रांगद के पास आए व उससे बोले कि अब तुम्हारी शिष्यत्व की परीक्षा है। कौरव अब गांगेय/भीष्म पितामह की भी आज्ञा नहीं मानते हैं। अतः तुम्हें युद्ध में सावधान रहना होगा व कौरवों को युद्ध में परास्त करना होगा।

दुर्योधन अपनी सेना के साथ शीघ्र ही सहाय वन में आ पहुँचा व वहां दोनों पक्षों में घोर युद्ध होने लगा। युद्ध में दुर्योधन के कमजोर पड़ने पर दुःशासन, शल्य, विशल्य जैसे योद्धा दुर्योधन की सहायता हेतु आ गये पर विद्याधर चित्रांगद ने सभी को युद्ध में परास्त कर दिया। विद्याधर ने अपने मोहन वाण की सहायता से दुर्योधन की सेना को मूर्छित कर दिया। केवल दुर्योधन ही अमूर्छित अवस्था में रह गये। तब दुर्योधन व चित्रांगद के बीच भीषण युद्ध हुआ। चित्रांगद ने दुर्योधन का रथ नष्ट कर दिया व उसे अपने नाशपाश में बांध लिया। यह दृश्य देखकर सभी चित्रांगद के रण-कौशल की प्रशंसा करने लगे। तभी दुर्योधन की पत्नी भानुमति युद्ध क्षेत्र में आकर गांगेय से अपने पति की मुक्ति की प्रार्थना करने लगी। तब गांगेय ने भानुमति से युधिष्ठिर के पास जाने को कहा। जिससे भानुमति रूदन करती हुई युधिष्ठिर के पास गई व उनसे अपने पतिदेव को मुक्त करने की प्रार्थना करने लगी। वह युधिष्ठिर से गिड़गिड़ाकर बोली– आप दाता हैं। मैं आपके सामने अपने पतिदेव की मुक्ति की भीख आपसे मांगती हूँ। भानुमति की ऐसी बातें सुनकर युधिष्ठिर को उसके ऊपर दया आ गई व उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कि आप शीघ्र ही विद्याधरों से दुर्योधन को छुड़ाने की व्यवस्था करो। भाई का संदेश लेकर जब अर्जुन विद्याधरों के पास पहुँचा, तो उन्होंने दुर्योधन को मुक्त करने की बात को अस्वीकार कर दिया तथा वे अपने गुरू अर्जुन से ही युद्ध को तत्पर हो गये। पर अर्जुन ने उन्हें शीघ्र ही परास्त कर दिया। तब सभी विद्याधरों ने अर्जुन की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उनसे क्षमा मांगी व दुर्योधन को अर्जुन के हाथों में सौंप दिया। अर्जुन दुर्योधन को लेकर अपने अग्रज युधिष्ठिर के पास गये; जहां युधिष्ठिर ने उसे बंधनमुक्त कर दिया। इस उदारता के लिये दुर्योधन ने युधिष्ठिर को

प्रणाम कर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस भीषण पराजय से दुर्योधन के मन में अपने मान-भंग की शल्य घर कर गई।

अपनी इस शल्य को पूर्ण करने हेतु दुर्योधन ने घोषणा की कि जो कोई भी पांडवों का वध कर देगा, उसे आधा राज्य पुरस्कार में दिया जायेगा। इस घोषणा को सुनकर एक दुर्बुद्धि व्यवसायी कनकध्वज ने दुर्योधन के सामने ऐसा कर दिखाने की प्रतिज्ञा की कि मैं या तो सात दिन के अंदर पांडवों को नष्ट कर दूंगा अन्यथा प्रज्वलित अग्नि में जलकर अपने प्राण त्याग दूंगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कनकध्वज 'कृत्या-विद्या' की सिद्धि के लिए साधना हेतु वन में जा पहुँचा। तब नारद ने इसकी सूचना पांडवों को देकर उन्हें सावधान कर दिया। तभी एक मायावी देव द्रौपदी को हर ले गया। उसका पीछा करते सभी पांडव एक जलाशय पर पहुँचे व अपनी तृषा को शांत करने हेतु उस जलाशय का जल पी गये। जिससे सभी पांडव वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े। इसी समय कनकध्वज को कृत्या साधना रूपी विद्या सिद्ध हो गई। तब वह विद्या बोली– मुझे आज्ञा दें। तब कनकध्वज ने उस विद्या को सभी पांडवों को मारने की आज्ञा दे दी। किन्तु जब वह विद्या पांडवों की खोज करते-करते उस जलाशय के निकट पहुँची, तो उसने सभी पांडवों को मृतप्राय देखा। तभी वह मायावी देव जो द्रौपदी को ले भागा था उस विद्या से बोला– कनकध्वज ने तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट दिया है। वे पांडव तो स्वतः ही निहत हो चुके हैं। अतः तुम जाकर उसी नीच कनकध्वज का वध कर डालो। विद्या को यह उक्ति ठीक लगी व वह लौटकर कनकध्वज का वधकर अपने स्थान को चली गई। तब उस देव ने पांडवों के शरीर पर गंधोदक की बूंदें छिड़ककर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। वास्तव में यह देव सौधर्म इन्द्र का स्नेह पात्र था; जो पांडवों की धर्माराधना से प्रभावित होकर उनकी सहायता करने आया था। तब उस देव ने द्रौपदी को भी पांडवों को सौंप दिया व वहां से गमन कर गया।

पांडवों का अज्ञातवास व कीचक-मरण

सभी पांडव इधर-उधर भ्रमण करते-करते विराट नगर आ गये। वनवास के बारह वर्ष बीत चुके थे, अब अंतिम वर्ष अज्ञातवास का था। अतः सभी पांडव अपना वेष बदल कर यहां के नरेश विराट के यहां नौकरी करने लगे। युधिष्ठिर राजसभा के कार्यों में हाथ बंटाने लगे। भीम पाकशाला में व अर्जुन वृहनलला बन कर रनवास में नृत्य गायन सिखाने में, नकुल अश्व-रक्षण में व सहदेव गौ रक्षा में कार्य करने लगे। द्रौपदी केश विन्यास शृंगार हेतु दासी बन गई व शीघ्र ही विराट नरेश की महारानी सुदर्शना की विश्वास पात्र भी बन गई। एक बार सुदर्शना का भाई कीचक अपनी बहन से मिलने आया। वह द्रौपदी का रूप सौंदर्य देखकर उसे चाहने लगा। द्रौपदी ने कीचक को अनेक बार समझाने का प्रयास किया व उससे यहां तक कहा कि उसके रक्षक पांच महा बलशाली गंधर्व हैं; अतः वह उससे दूर ही रहे। फिर भी कीचक नहीं माना व एक दिन अवसर पाकर द्रौपदी का हाथ पकड़ लिया। जब द्रौपदी ने कीचक की शिकायत भीम से की तब भीम ने द्रौपदी से कहा कि वह कीचक को एकांत में बुला लें। द्रौपदी ने ऐसा ही किया। कामांध कीचक ने नाट्यशाला में मिलने का प्रस्ताव रखा, जिसे द्रौपदी ने स्वीकार कर लिया। द्रौपदी ने इस योजना के बारे में भीम को बतला दिया। तब भीम वेष बदल कर रात्रि में औरतों जैसी सज्जा कर द्रौपदी की जगह स्वयं नाटयशाला में पहुँच गया।

यहां जब कीचक ने द्रौपदी समझ कर भीम का हाथ थामा, तो उसे कुछ शंका हुई। तब भीम अपने असली रूप में आ गया। इसके पश्चात् भीम व कीचक के बीच भीषण युद्ध हुआ। जिसमें भीम ने मुष्टि प्रहार से कीचक को मार डाला। विद्युत की तरह यह समाचार कि द्रौपदी के रक्षक गंधर्व ने कीचक को मार डाला, सर्वत्र फैल गया। इसके बाद कीचक के क्रियाकर्म के समय कीचक के साथियों ने द्रौपदी को कीचक के साथ चिताग्नि में बलात डालने का प्रयास

किया। परन्तु वहां भी भीम रूपी गंधर्व ने अपना भीषण रूप दिखाकर कीचक के साथियों को या तो मार डाला या वहां से खदेड़ दिया। इस घटना के बाद युधिष्ठिर ने सभी भाइयों से कहा कि अब हमारे अज्ञातवास के मात्र तीन दिन शेष बचे हैं। अतः अब हम सभी का धैर्य के साथ शांत रहना ही उचित है। यह सुनकर सभी पांडवों व द्रौपदी ने मौन धारण कर अपने अग्रज की आज्ञा स्वीकार कर ली। उधर दुर्योधन ने पांडवों की खोज में अपने दूतों को सभी दिशाओं व देशों में भेजा, पर वे सभी असफल होकर वापिस आ गये। तब गांगेय/भीष्म पितामह ने दुर्योधन को फिर से समझाने का प्रयास किया कि तुम पांडवों का बुरा सोचना छोड़ दो; क्योंकि तुम्हारे बुरा चाहने पर भी सभी पांडव व द्रौपदी अच्छी तरह से हैं व जीवित हैं।

फिर गांगेय ने राज्यसभा में द्रोणाचार्य से आकर कहा कि कुछ ही दिनों में पांडवों के यहां आने की आशा की जाती है। तभी बीच में राजा जलंधर ने कहा कि मैंने सुना है, विराट नगर में अपने हितैषी कीचक को किसी गंधर्व ने मार डाला है, अतः मैं अपने मित्र की सहायता करने व उनके गोधन का हरण करने के उद्देश्य से सेना सहित वहां जा रहा हूँ। जिसने भी मेरे से राजा के गोधन को छुड़ाने का प्रयास किया, भले ही वे छद्मवेशी पांडव ही क्यों न हों; मैं उन्हें यमपुरी पहुँचा दूंगा। राजा जलधंर के इन वचनों को सुनकर दुर्योधन काफी प्रसन्न हो गया व उसने शीघ्र ही जलंधर को सेना के साथ विराट नगर जाने की आज्ञा दे दी।

राजा जलंधर शीघ्र ही अपनी विशाल सेना के साथ विराट नगर जा पहुँचा व वहां जाकर उसने राजा विराट के गोधन का हरण कर लिया। यह सुन व देखकर राजा विराट भी अपनी चतुंरगणी सेना लेकर अपने गौवंश को छुड़ाने हेतु युद्ध-स्थल जा पहुँचे। युद्ध प्रारंभ होने के कुछ देर बाद राजा जलंधर राजा विराट की सेना के अग्रिम श्रेणी के योद्धाओं को परास्त करता हुआ विराट नरेश के पास पहुँचने में सफल हो गया व वह बिजली की भांति विराट नरेश पर झपट पड़ा।

उसने शीघ्र ही राजा विराट के सारथी को निहत कर दिया तथा वह विराट नरेश के रथ पर आ चढ़ा। उसने शीघ्र ही विराट नरेश को बंदी बना लिया। किन्तु तभी अग्रज युधिष्ठिर के कहने पर भीम ने एक विशाल वृक्ष को उखाड़ लिया व राजा विराट की सहायता हेतु वह शीघ्र ही राजा जलंधर की सेना में घुस गया। उस भयंकर युद्ध में भीम ने 1100 रथों को नष्ट कर दिया। अर्जुन ने भी युद्ध क्षेत्र में 900 अश्वों को नष्ट कर दिया। नकुल के घनाघात से शत्रुओं की रक्षा पंक्ति नष्ट हो गई। सहदेव ने भी वीरतापूर्वक युद्ध कर जलंधर की सेना में अफरा तफरी मचा दी। तब अपनी सेना का मनोबल गिरते देखकर राजा जलंधर भीम की ओर बढ़ा; पर भीम ने शीघ्र ही राजा जलंधर के सारथी को मारकर उसके रथ पर चढ़ कर जलंधर नरेश को बंदी बना लिया व विराट नरेश को उससे छुड़ाकर उन्हें मुक्त करा लिया। पांडवों ने राजा विराट के संपूर्ण गोधन को भी सेना से मुक्त करा लिया। किन्तु कभी अपने गुप्तचरों से जलंधर नरेश की हार का समाचार सुनकर दुर्योधन शीघ्र ही अपनी विशाल सेना के साथ विराट नगर के युद्ध-स्थल पहुँच गया व उसने युद्ध कर पुनः विराट नरेश के गोधन का हरण कर लिया।

इसी बीच द्रौपदी ने विराट पुत्र को सांत्वना देकर अर्जुन की ओर इशारा कर विराट पुत्र को युद्ध में शामिल होने को कहा। अर्जुन एक रथ में सवार होकर पुनः युद्ध क्षेत्र में पहुँच गये, परन्तु इसी बीच दुर्योधन की विशाल सेना को देखकर विराट नरेश का पुत्र घबड़ा गया व पीछे लौटने लगा। तभी अर्जुन ने विराट नरेश के पुत्र को समझाया कि युद्ध क्षेत्र में पीठ दिखलाना वीरों का काम नहीं है। तुम्हारे पुण्य के प्रताप से मैं तुम्हारा सारथी हूँ। अतः निर्भय होकर आगे बढ़कर युद्ध करो। परन्तु अर्जुन के यह कहने पर भी विराट पुत्र उत्तर युद्ध के लिए साहस नहीं जुटा सका। तब अर्जुन ने विराट पुत्र उत्तर को अपना सारथी बनाया व कहा कि मैं ही अर्जुन हूँ। इतना कहकर वे युद्ध करने लगे। इसी समय ज्वलंत नाम के देव ने अर्जुन को एक देव प्रदत्त रथ प्रदान किया।

इसी रथ में सवार होकर अर्जुन ने दुर्योधन की सेना के साथ भीषण युद्ध प्रारंभ कर दिया। इसी समय गांगेय ने दुर्योधन को युद्ध न करने व विराट नरेश से संधि करने हेतु बहुत समझाया पर दुर्योधन व कर्ण दोनों ने ही ऐसा करने से मना कर दिया। तब मजबूर होकर दुर्योधन के साथ गांगेय व द्रोणचार्य भी युद्ध करने लगे। तब अर्जुन ने अपने नाम लिखे अनेक बाण गांगेय के पास भिजवाये। गांगेय ने ये बाण कौरवों को दिखाये। जिन्हें देखकर कौरव भयभीत हो गए। फिर भी दुर्योधन नहीं माना व उसने अपनी सेना को अर्जुन के सामने दीवार की तरह खड़ा कर दिया।

इसी बीच अर्जुन का सारथी उत्तर कौरवों के वाणों से आहत हो गया। यह देखकर अर्जुन ने आग्नेय वाण छोड़कर कौरवों की सेना को दग्ध कर अपना गांडीव उठा लिया व कर्ण के रथ को ध्वस्त कर दिया और दुर्योधन के भाई शत्रुंजय को यमलोक पहुँचा दिया। इसके बाद अर्जुन ने कर्ण के भाई विकर्ण को भी पराजित कर दिया। इसी बीच वीभत्स नाम के धनुर्धारी ने विकर्ण का मस्तक भी छेद दिया। यह देखकर कर्ण ने भी पार्थ के सारथी, उसके रथ एवं ध्वजा को छेद डाला। पर कर्ण अर्जुन के सामने देर तक नहीं टिक सका। अर्जुन ने युद्ध में कर्ण को धराशायी कर उसे मूर्छित कर दिया। तभी दु:शासन युद्ध हेतु आगे आ गया। जिसे पार्थ ने अपने 25 वाणों के प्रहार से अर्धमृत तुल्य कर दिया। इसी बीच भीष्म पितामह अर्जुन के सामने युद्ध को आ गये। अर्जुन के विनम्र अनुरोध को भी न मानकर वे अर्जुन से युद्ध करने लगे। परन्तु अर्जुन ने शीघ्र ही उनके रथ व सारथी को विद्ध कर दिया। तब गांगेय ने मोहन, मारण व स्तंभन वाणों का प्रयोग कर अर्जुन को युद्ध में ललकारा, परन्तु पार्थ के आगे वे सब बेकार सिद्ध हुए। गांगेय को कमजोर समझ कर द्रोणाचार्य अर्जुन के सामने आ गये। पर अर्जुन ने उनसे युद्ध में न उतरने का विनम्र अनुरोध किया। पर द्रोणाचार्य अर्जुन से बोले, पार्थ पहला प्रहार आप कीजिये। पर पार्थ ने निवेदन कर कहा कि आप ही प्रथम प्रहार करें। तब लाखों बाण एक

साथ छोड़कर दोनों के मध्य युद्ध छिड़ गया। अंत में द्रोणाचार्य को पराजित होकर युद्ध-स्थल का परित्याग करना पड़ा। तब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा पार्थ से भिड़ गया। इसी बीच वीभत्स ने आकर अश्वत्थामा के रथ के घोड़ों को यमलोक पहुँचा दिया। पर शीघ्र ही अश्वत्थामा ने पार्थ के गांडीव की प्रत्यंचा छिन्न-भिन्न कर दी जिससे क्रोधित होकर पार्थ ने ऐसा बाण छोड़ा कि अश्वत्थामा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब पार्थ व राज बिंदु के बीच भीषण युद्ध हुआ व पार्थ ने राज बिंदु के हस्ती, अश्व, रथ सहित उसकी सारी सेना को ध्वस्त कर दिया।

इस वीभत्स नरसंहार के दृश्य को देखकर पार्थ को अतीव विषाद हुआ, उसने सोचा कि अब किसी भी प्रकार की कोई हिंसा योग्य नहीं है। अतः उसने कौरव सेना के ऊपर सम्मोहन बाण चलाया। इस बाण से कौरव दल की सेना संज्ञा शून्य होकर मूर्छित हो गई एवं धराशायी हो गई। पार्थ को विजय श्री हाथ लगी। जब यह सूचना विराट नरेश के पास पहुँची तो विराट नगर में उत्सव का माहौल हो गया व नगर में विजय उत्सव मनाया गया। जब कौरवों व उनकी सेना को होश आया तो वे लज्जित होकर हस्तिनापुर को वापिस हो गये। यहां राजा विराट पांडवों को पहचान गये व पांडवों से नौकरों जैसा काम लेने के लिए उनसे क्षमा याचना करने लगे। बाद में राजा विराट ने अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन से करने का निवेदन किया। किन्तु अर्जुन ने कहा कि आप हमारे शिक्षा गुरु हैं, अतः मेरे लिए आपकी पुत्री से विवाह करना उचित नहीं है। तब सभी की सहमति से धार्मिक अनुष्ठान व राजकीय समारोह पूर्वक राज- कन्या का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु से कर दिया गया। इस विवाह समारोह में बलभद्र, नारायण, भानु, द्रष्टद्युम्न, शिखंडी आदि महापुरुष भी विराट नगर पधारे थे। विवाह पश्चात् विराट नरेश ने यथोचित सत्कार, मान-सम्मान कर राजकीय बहुमूल्य भेंटों के साथ सभी को विदा किया। बाद में सभी पांडव श्रीकृष्ण व बलदेव के साथ द्वारिकापुरी आ गये।

उधर विजयार्ध पर्वत पर कला रूपी गुणों से प्रद्युम्न वृद्धि को प्राप्त होने लगा। विद्याधर पुत्र प्रद्युम्न ने शीघ्र ही आकाशगामिनी विद्या के साथ विद्याधरों की सभी विद्याओं को सीख लिया। यौवन को प्राप्त होते ही वह सभी अस्त्र-शस्त्र विद्याओं में भी कुशल हो गये। मन्मथ, मदन, काम, कामदेव व मनोभाव आदि प्रद्युम्न के सार्थक नाम थे। वे कामदेव पद के धारी थे। उसने कालसंवर के 500 पुत्रों को पराजित करने वाले सिंहरथ को जीतकर कालसंवर के आगे डाल दिया। इस घटना से खुश होकर कालसंवर ने प्रद्युम्न को युवराज पद से विभूषित किया। इस घटना से कालसंवर के 500 पुत्र नाराज हो गये तथा वे प्रद्युम्न के नाश का उपाय सोचने लगे। एक बार वे उसे सिद्धायतन के गोपुर ले गये व द्वेष भाव से उसे गोपुर के अग्रभाग पर चढ़ा दिया। प्रद्युम्न वहां के निवासी देव से विद्याओं का खजाना व मुकुट लेकर वापिस आ गये। यह देखकर वे 500 भाई आश्चर्य चकित रह गये। फिर उन्होंने एक बार बड़े वेग से प्रद्युम्न को महाकाल नामक गुफा में घुसा दिया। जहां से वह अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर बाहर आ गया। फिर उन भाइयों ने प्रद्युम्न को नागगुहा में घुसा दिया। जहां से वह पादपीठ, नागशैया, वीणा, आसन आदि लेकर सुरिक्षत बाहर आ गया। फिर उन्होंने प्रद्युम्न को एक वापिका में धकेल दिया। वहां से भी वह मकर चिन्ह की ध्वजा लेकर सुरक्षित वापिस आ गया। एक अन्य उपाय के रूप में उन भाइयों ने प्रद्युम्न को अग्नि कुंड में प्रवेश करने को कहा, किन्तु वहां से भी वह अग्नि से शुद्ध दो वस्त्र ले आया फिर उन्होंने उससे मेघाकृति पर्वत में प्रवेश करने को कहा; जहां से वह कर्ण-कुंडल लेकर वापिस आ गया।

इस प्रकार उन 500 पुत्रों ने प्रद्युम्न को मारने की और भी अनेक चेष्टायें कीं, पर वे सफल नहीं हुए। उन्होंने उसे पांडुक वन में प्रवेश कराया, कापिथ्य वन में प्रवेश कराया, वाल्मीकि वन तथा शूकर वन में भी प्रवेश कराया, शराव पर्वत पर चढ़ाया। परन्तु प्रद्युम्न इन स्थानों से भी मुकुट, अमृतमयी माला, विद्यामय हाथी, कवच, मुद्रिका, कंठावरण

आदि अनेक आभूषण, शंख व धनुष जैसी कीमती व दुर्लभ वस्तुयें प्राप्त कर सुरक्षित बाहर निकला आया। इन घटनाओं से वे 500 पुत्र शर्मसार हो गये। तब उन्होंने प्रद्युम्न को मनोवेग विद्याधर के पास भेजा। परन्तु प्रद्युम्न ने उस कीले गये विद्याधर को आजाद कर दिया व उस विद्याधर की उसके शत्रु से मित्रता भी करा दी। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने प्रद्युम्न को हार, इन्द्रजाल व कन्या भेंट कर उसे विदा कर दिया। इस प्रकार इन सोलह स्थानों से अनेक महालाभों को प्राप्त करने पर तथा प्रद्युम्न के जीवित रहने पर संवर आदि उन 500 कुमारों के चित्त आश्चर्य से भर गये। तब वे सभी प्रद्युम्न के वशीभूत होकर शान्ति से उनके साथ रहने लगे।

एक बार प्रद्युम्न कालसंवर के दर्शन कर उनकी महारानी कनकमाला के महल की ओर गये। प्रद्युम्न ने उन्हें प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया। किन्तु कनकमाला का मन प्रद्युम्न पर मोहित हो गया। वह सब कामकाज भूल गई। जब प्रद्युम्न को इस बात का अहसास हुआ; तब उसने सविनय निवेदन करते हुए कनंकमाला को कहा कि आप मेरी माता के समान हैं। आपने ही मुझे पालपोष कर बढ़ा किया है। मैं आपका पुत्र हूँ। तब कनकमाला ने उसे बतलाया कि तू मुझे अटवी में मिला था। मैंने केवल तेरा लालन-पालन किया है । माता कनकमाला से ऐसी बात सुनकर प्रद्युम्न जिनालय में विराजमान सागरचंद्र मुनिराज के पास सत्यता का पता लगाने गये। तब मुनिश्री ने बतलाया कि कनकमाला पूर्वभव में चंद्राभा थी व उससे तुझे प्रज्ञप्ति विद्या मिलने वाली है। तब वापिस आकर प्रद्युम्न ने कनकमाला से इन विद्याओं के बारे में पूछा। तब कनकमाला अपने मन की बात जवान पर लाकर बोली–यदि तू मुझे चाहता है, तो मैं गौरी और प्रज्ञप्ति नाम की विद्या आपको दे सकती हूँ। तब प्रद्युम्न ने कनकमाला का मन रखने के लिए उससे कहा कि हां, मैं तुझे चाहता हूँ। यह सुनते ही कनकमाला ने वे दोनों विद्यायें प्रद्युम्न को दे दी। विद्या प्राप्त हो जाने पर अत्यन्त प्रसन्न

होकर प्रद्युम्न कनकमाला से बोला– पहले आपने मुझे अटवी से लाकर मेरी रक्षा की, अतः प्राण दान दिया। बाद में पालन-पोषण कर बड़ा किया व अभी-अभी आपने मुझे विद्या दान भी दिया है। यह कहकर प्रद्युम्न ने कनकमाला की प्रदक्षिणा लगाई व उसके सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होकर बोला कि यह दान देने से आप मेरी गुरु माता हैं। पुत्र के लिए जो उचित आज्ञा हो वह मुझे दीजिए। यह सुनकर कनकमाला सन्न रह गईं। तब प्रद्युम्न वहां से चला गया। प्रद्युम्न के चले जाने के बाद कनकमाला यह सोच कर कि मैं छली गई हूँ, उसने क्रोध से अपना वक्ष-स्तन आदि को नखों से खरोंच डाला व अपने पति के पास चली गई और बोली कि देखो प्रद्युम्न ने मेरा क्या हाल किया है। अपनी पत्नी की बातों को सच्चा मान कर कालसंवर ने अपने 500 पुत्रों को बुलाकर कहा कि किसी भी प्रकार प्रद्युम्न को मार डाला जाय।

इसके बाद दूसरे दिन ये पापी कुमार प्रद्युम्न को मारने हेतु कालाम्बु नाम की वापिका पर ले गये व प्रद्युम्न से जल क्रीड़ा हेतु कहने लगे। उसी समय प्रज्ञप्ति विद्या ने प्रद्युम्न को सब कुछ बतला दिया। तब प्रद्युम्न ने अपने मूल शरीर को कहीं छिपा दिया व कृत्रिम शरीर से उस वापिका में कूद गया। बाद में प्रद्युम्न ने माया से एक को छोड़कर शेष सभी कुमारों को ऊपर पैर व नीचे मुख कर कील दिया व शेष एक बचे कुमार को पांच चोटियों का धारक बनाकर कालसंवर के पास खबर देने हेतु भेज दिया। यह सुनकर क्रोध से लाल होकर कालसंवर अपनी समस्त सेना के साथ प्रद्युम्न के पास आया, पर प्रद्युम्न ने भी मायावी-सेना बना कर उससे युद्ध कर कालसंवर को युद्ध में परास्त कर दिया। तब कालसंवर कनकमाला के पास प्रज्ञप्ति विद्या मांगने गया। यह सुनकर कनकमाला बोली कि मैं तो वाल्यकाल में ही दूध के साथ यह विद्या प्रद्युम्न को दे चुकी हूँ। तब कालसंवर पुनः प्रद्युम्न से लड़ने वहां पहुँचा, पर प्रद्युम्न ने शीघ्र ही उसे बांध कर एक शिला तल पर रख दिया।

तभी नारद वहां पहुँच गये। नारद ने कालसंवर को कनकमाला के बारे में बतलाया कि उसने स्वयं ही अपना वक्ष आदि अपने ही नखों से खरोंच लिया था। क्योंकि प्रद्युम्न ने उसे चाहने से मना कर दिया था व उसे माता कहा था। बाद में प्रद्युम्न ने नारद का सम्मान किया व कालसंवर को छोड़ कर कहा कि माता कनकमाला ने जो भी किया है; वह पूर्व कर्म के वशीभूत होकर किया है। अतः उसे आप क्षमा करें। उसने कालसंवर के 500 पुत्रों को भी छोड़ दिया। तभी नारद के बतलाने पर कि कृष्ण व रूक्मणी तेरे माता-पिता हैं; उनके दर्शन के लिए पिता कालसंवर से आज्ञा मांगी। तब नारद व प्रद्युम्न द्वारिका को चल दिये।

रास्ते में हस्तिनापुर के आगे उन्हें एक बड़ी सेना जाते हुए दिखाई दी। इसे देखकर प्रद्युम्न ने नारद से पूछा कि ये सेना कहां जा रही है। तब नारद ने कहा कि एक बार हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन ने कृष्ण से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे कन्या व तुम्हारे पुत्र हो, तो मैं आपके अग्रज पुत्र को अपनी कन्या दे दूंगा। इसके बाद कृष्ण की दोनों रानियों-रूक्मणी व सत्यभामा के एक साथ ही पुत्र उत्पन्न हुए। रूक्मणी के तुम और सत्यभामा के भानुकुमार। तब कृष्ण ने सबसे पहले तुम्हारे जन्म का समाचार जानकर तुम्हें अग्रज व भानुकुमार को अनुज घोषित किया था। अकस्मात् धूमकेतु नामक असुर तुम्हारा हरण कर ले गया और तुम्हें अटवी में पत्थर के नीचे रख कर भाग गया। जहां से कालसंवर अपने परिवार के साथ विमान में बैठकर गुजर रहा था। जब उसने विमान से उस शिला को हिलते देखा तो वह नीचे उतरा, जब उसने शिला को उठाकर देखा तो तुम्हें उठाकर अपने साथ ले गया और तुम्हें पालपोस कर बड़ा किया।

तुम्हारे हरण के पश्चात् रूक्मणी काफी दुःखी हुई व आपका भी कोई समाचार नहीं मिला; तब मैंने ही रूक्मणी को बतलाया था कि आपका पुत्र अनेक ऋद्धियों सिद्धियों के साथ 16 वर्ष के बाद स्वतः आपके पास आवेगा। दुर्योधन ने

अब अपनी कन्या के बड़े होने पर उसे भानुकुमार को परणाने के लिए इस पूरी सेना के साथ द्वारिका जाने को भेजा है। प्रद्युम्न ने जब नारद के मुख से यह वृतांत सुना तो वह नारद को विमान में छोड़कर व भील का वेष बनाकर दुर्योधन की सेना के सामने जाकर खड़ा हो गया व बोला कि कृष्ण ने मुझे जो शुल्क देना निश्चित किया है; वह देकर आगे बढ़िये। तब सेना प्रमुख बोला—बतलाओ आपका शुल्क क्या है? तब भील बने प्रद्युम्न ने कहा कि इस सेना में जो भी सारभूत वस्तु है वह मुझे दीजिये। तब साथियों ने कहा कि हमारे साथ सारभूत वस्तु तो दुर्योधन की पुत्री उदधि कुमारी ही है। पर यह तो कृष्ण की पुत्रवधू बनेगी। अतः यह हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं। यह सुनकर प्रद्युम्न ने मायावी सेना से दुर्योधन की सेना को परास्त कर दिया और उदधि कुमारी को लेकर आकाश में स्थित नारद के साथ विमान में बैठ गया। फिर उसने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। तभी नारद ने उस कन्या से कहा कि यह कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न ही है; जो भानुकुमार से बड़े हैं। उदधि कुमारी नारद के यह वचन सुनकर प्रसन्नता को प्राप्त हुई।

प्रद्युम्न की लीलायें

नारद व प्रद्युम्न उदधि कुमारी को साथ लेकर शीघ्र ही द्वारिका जा पहुँचे; जहां भानु कुमार नगरी के बाहर मैदान में किसी कार्य से आया था। यह देखकर प्रद्युम्न विमान से नीचे उतर कर एक वृद्ध का रूप धारण कर व एक सुन्दर घोड़ा लेकर भानु कुमार के पास जा पहुँचा। भानुकुमार उस घोड़े पर सवार हो गया। किन्तु घोड़े ने भानुकुमार को काफी तंग करने के बाद उसे उसी वृद्ध के पास छोड़ दिया; तब प्रद्युम्न रूपी वह वृद्ध उसी घोड़े पर सवार हुआ व मायावी बंदरों व घोड़ों की सहायता से सत्यभामा के उपवन को उजाड़ने लगा। उसने उस उपवन में स्थित वापी का जल सुखा दिया। इसी समय श्रीकृष्ण नगर के द्वार की ओर आ रहे थे। उन्हें देखते ही प्रद्युम्न ने मायामयी मक्खियों, डांस व मच्छरों को इतनी अधिक मात्रा में छोड़ा कि श्रीकृष्ण यह देखकर वापिस हो गये। तत्पश्चात प्रद्युम्न एक रथ पर सवार होकर नगर की ओर बढ़े, जहां उसने विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं से नगर वासियों का मन मोह लिया। प्रद्युम्न ने तत्पश्चात महलों में प्रवेश किया व सीधे सत्यभामा के महल में आयोजित ब्राह्मण भोज में शामिल होने के लिए वहां सबसे आगे के आसन पर जाकर बैठ गये व ब्राह्मणों के विरोध के बावजूद वहां बैठकर संपूर्ण भोजन खा गये। जब कुछ भी भोजन शेष न बचा तो उसने सत्यभामा को कृपण कहा व संपूर्ण भोजन का वहीं पर वमन कर दिया।

फिर प्रद्युम्न ने एक छुल्लक का वेश धारण किया। वे सीधे रूक्मणि के महलों में जा पहुँचें; व वहां बड़े प्रेम से रूक्मणि के दिये हुए लड्डू खाये। उसी समय सत्यभामा का आज्ञाकारी नाई रूक्मणि के बाल लेने आ पहुँचा। तब प्रद्युम्न ने उस नाई का खूब तिरस्कार किया व उसे वहां से भगा दिया। सत्यभामा की शिकायत पर जब बलदेव रूक्मणि के महलों की ओर जाने लगे, तो प्रद्युम्न एक ब्राह्मण का रूप धारण कर रास्ते में पैर फैलाकर बैठ गया। बलदेव ने जब

उस ब्राह्मण की टांग पकड़कर उसे रास्ते से अलग करना चाहा, तो बलदेव उस ब्राह्मण का पैर भी न हिला सके। इस प्रकार प्रद्युम्न लंबे समय तक वहां क्रीड़ा करते रहे व रूक्मणि का दिल जीतने का प्रयास करते रहे।

उसी समय प्रद्युम्न के वापिस आने के जो चिन्ह नारद ने रूक्मणी को बतलाये थे। वे चिन्ह रूक्मणी को प्रत्यक्ष दिखने लगे। जिससे उसके स्तनों से दूध की धारा झरने लगी। उसी समय प्रद्युम्न ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और माता रूक्मणि के चरणों में लेट गया। अपने पुत्र को इस रूप में देखकर रूक्मणि भाव विभोर हो गई और उसकी आंखों से प्रेमाश्रु टपकने लगे। उसने भावपूर्ण आंसुओं से सिंचित होकर अपने पुत्र को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया व बोली– धन्य है वह कनकमाला जिसने तेरी बाल क्रीड़ा देखी है। माता के मुख से इस प्रकार के वचन सुनकर प्रद्युम्न तुरंत बालक बन गया व माता के साथ बालोचित क्रीड़ायें करने लगा। जिससे माता रूक्मणि का हृदय आनंद से भर गया। तब उसने खेल-खेल में ही माँ रूक्मणि को अपनी भुजाओं से ऊपर उठा लिया व विमान में पहले ही बैठे नारद व उदधि कुमारी के पास भेज दिया व बोला कि द्वारिका के यादवो! मैं रूक्मणि का हरण कर ले जा रहा हूं। किसी की भुजाओं में शक्ति हो तो वह रोक ले।

तब रूक्मणि का हरण जानकर समस्त यादव व भारी यादव सेना युद्ध हेतु वहां उपस्थित हो गई। यह देखकर प्रद्युम्न की मायावी सेना उन भारी यादवों की सेना में भिड़ गई। प्रद्युम्न आकाश में स्थित कृष्ण के साथ युद्ध करने लगा। पर जब कृष्ण के अस्त्र कौशल को प्रद्युम्न ने परास्त कर दिया: तो फिर दोनों के बीच भुजाओं से युद्ध होने लगा। दोनों के बीच भीषण बाहुबल युद्ध हुआ। परन्तु इसी बीच रूक्मणि के द्वारा प्रेरित नारद ने दोनों को पिता-पुत्र के बीच का युद्ध बताकर युद्ध में उपस्थित लोगों को आश्चर्य में डाल दिया और दोनों के बीच के युद्ध को रोक दिया। यह जानकर कि यही मेरा अग्रज पुत्र प्रद्युम्न है, प्रद्युम्न को अपने सामने

देखकर कृष्ण ने उसे गले लगा लिया। और प्रद्युम्न को आशीर्वाद दिया। तब प्रद्युम्न ने भी इस ठिठोली के लिए पिता से क्षमा मांगी और उनके चरण छुये। तत्पश्चात सभी बंधुजनों के साथ भारी समारोह पूर्वक कृष्ण ने अपने पुत्र प्रद्युम्न को द्वारिका में प्रवेश कराया। बाद में रूक्मणी व जामबंती ने भी प्रद्युम्न का खूब सत्कार किया। फिर सभी ने प्रद्युम्न का विवाह उदधि कुमारी तथा दूसरी अन्योन्य उत्तमोत्तम कन्याओं से करवा दिया।

इसके बाद जामवंती ने शंब नामक पुत्र को व सत्यभामा ने सुभानु नामक पुत्र को जन्म दिया। कृष्ण की अन्य रानियों के भी अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। सैकड़ों कुमारों से सेवित शंब सभी क्रीड़ाओं में सुभानु को दबा देता था व सातिशय क्रीड़ा करता था। एक बार शंब व प्रद्युम्न भील के भेष में जाकर रूक्मणि के भाई रूक्मी की पुत्री वैदर्भी का हरण कर लाये व प्रद्युम्न ने तो उससे शादी भी कर ली। शंब ने भी एक ही रात में 100 कन्याओं से विवाह कर अपनी माता को खुश कर दिया।

इसी प्रकार बलदेव के अनेक पुत्र थे। जिनमें प्रमुख थे-उन्मुंड, निषध, प्रकृतिद्धुति, चारूदत्त, ध्रुव, पीठ, शक्रंदमन, श्रीध्वज, नंदन, धीमान, दशरथ, नरदेव, प्रथु, महाधनु आदि। कृष्ण के प्रमुख पुत्रों के नाम थे—भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, शुभानुक, वृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुंजय, अकंपन, महासेन, धीर, गंभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित, सूर्य, चंद्रवर्मा, चारूकृष्ण, सुचारू, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न, शंब आदि। उन महा यशस्वी यादवों के पुत्र, प्रपौत्र, बुआ के लड़के व भानजे हजारों लाखों की संख्या में थे। सब मिलाकर महाप्रतापी व कामदेव से सुंदर साड़े तीन करोड़ कुमार द्वारिका में क्रीड़ा करते थे। अतः द्वारिका अति सुन्दर प्रतीत होती थी।

अथनंतर यशोदा पुत्री व कृष्ण की बहन अत्यन्त रूपवती व कलाओं में निपुण थी। किन्तु बचपन में ही कंस ने उसकी नाक दबाकर उसे चपटा कर दिया था। एक बार बलदेव के लड़कों ने आकर चपटी नाक वाली कहकर उसे चिढ़ा दिया

था। तब उस बाला ने मुनि श्री के चरणों में निवेदन कर जानना चाहा कि उसकी नाक चपटी क्यों है? तब महामुनि ने बतलाया कि पिछले भव में तूने एक ध्यानस्थ मुनि पर गाड़ी चढ़ाई थी। उसी कारण से इस भव में तेरी नाक चपटी है? यह सुनकर वह सुव्रत नाम की गणनी के पास जाकर आर्यिका बन गई। उसने व्रत, गुण, संयम, उपवास व अच्छी-अच्छी भावनायें भाकर अपने भावों को पवित्र किया। वह हमेशा तप में लीन रहती थी व गणिनी के साथ तीर्थक्षेत्रों की यात्रा भी करती थी। इसके बाद वह कभी विंध्याचल पर्वत पर पहुँची व वहां प्रतिमा योग धारण कर विराजमान हो गई। तभी वहां भीलों की एक बड़ी सेना आई। उन्होंने उसे वनदेवी मानकर नमस्कार किया व बोले कि आपके प्रसाद से निरूपद्रव रहकर यदि हम लोग धन प्राप्त कर सकेंगे, तो हम सभी आपके दास होंगे। ऐसा कह कर भील सेना बढ़ गई व उन्होंने आगे जा रहे यात्रियों व व्यापारियों के जत्थे से अनायास ही मोटी रकम प्राप्त कर ली। इसी बीच एक सिंह ने आर्यिका माता के ऊपर घोर उपसर्ग कर दिया। तब आर्यिका माता ने समाधिमरण लेकर मरणपर्यंत अनशन का नियम ले लिया। जिससे वह प्रतिमायोग से ही मरण कर स्वर्ग चली गई। जब भील वहां वापिस लौटे; तो उन्हें वहां आर्यिका माता की तीन अंगुलियां ही मिलीं। तब भीलों ने उस वनदेवी/आर्यिका को यहां-वहां खोजा, पर उसका कहीं पता न चलने पर उन तीन अंगुलियों को ही देवता के रूप में विराजमान कर दिया; और वहां जंगली जानवरों की बलि दे डाली; क्योंकि उन्हें तो भाग्यवश लूट में बेतहासा संपत्ति मिली थी। तभी से वहां उस स्थान की प्रसिद्धि दुर्गा के उत्पत्ति स्थान के रूप में हो गई। जिसे आज विन्ध्यवासिनी देवी के रूप में पूजा जाता है। बाद में यहां देवी प्रतिमा विराजमान कर दी। देखो तो भाग्य की विडम्बना कि वह साध्वी तो समाधिमरण कर स्वर्ग चली गई। पर लोभी भीलों आदि ने उस पवित्र स्थान को बलि देकर अपवित्र कर दिया।

कृष्ण-दूत का दुर्योधन के पास जाना व विदुर की मुनि दीक्षा

द्वारिकापुरी में रहते हुए पांडवों को अनेक दिन हो गये; तब एक दिन अर्जुन ने नीतिशास्त्र में निपुण श्रीकृष्ण से कहा कि कौरवों ने हमें लाक्षागृह में रहने को भेजा व बाद में उसमें आग लगवाकर हम सभी को मारने का प्रयास किया। फिर भरी सभा में द्रौपदी के केश पकड़कर बलात महल से बहिष्कृत कर दिया व हम सबका घोर अपमान किया। तब कृष्ण ने पांडवों से सलाह मसविरा कर एक चतुर दूत को हस्तिनापुर भेजा। उस दूत ने दुर्योधन के पास जाकर निवेदन किया कि हे महाराज! मैं द्वारिकापुरी से आया हूँ। पांडव अजेय हैं; आप उन्हें क्यों कष्ट दे रहे हैं।

आपको स्मरण रखना चाहिए कि उनके पक्ष में नारायण, विश्वविश्रुत महाराजा विराट, द्रुपद, विघ्ननिवारक प्रलंब, दशार्ण गण, प्रद्युम्न आदि बड़े-बड़े नृपति हैं, अतः आप कैसे सत्ता सुरक्षित रख सकेंगे। इसलिए आप मान-अपमान का त्याग करके, कपट भाव को तिलांजलि देकर पांडवों के साथ संधि कर लें व राज्य को परस्पर आधे-आधे भागों में बांटकर शान्तिपूर्वक उसका उपभोग करें। दूत के ये वचन सुनकर कौरवों ने महामंत्री बिदुर से परामर्श मांगा। तब बिदुर ने दुर्योधन से कहा कि महाराज! सुख धर्म से प्राप्त होता है। धर्म आत्मा की विशुद्धि को कहते हैं। अतः क्रोध, लोभ व गर्व का त्याग करके पांडवों को निमंत्रित करके उनका न्यायोचित आधा राज्य उन्हें दे देना चाहिए। विदुर के ये वचन सुनकर दुर्योधन भड़क उठा व बोला– आप पांडवों का पक्ष लेकर हमारे ही साथ अन्याय करना चाहते हैं। दुर्योधन ने विदुर से ऐसा कहकर कृष्ण के दूत को भगा दिया। दूत ने वापिस आकर कृष्ण व पांडवों से कहा–महाराज कौरव बड़े क्रूर व पापी हैं। वे

कपटी तो हैं ही छुद्र भी हैं। वे संधि के लिए कदापि प्रस्तुत नहीं हैं। दूत के ये वचन सुनकर मृदुभाषी व न्यायप्रिय युधिष्ठिर ने कहा कि हमने आपको केवल इसलिए कौरवों के पास भेजा था कि हम अपयश के भागी न बनें। राज्य पुनरुद्धार के लिए हमें कौरवों से युद्ध करने में अब कोई दोष नहीं लगेगा। यह सोचकर पाण्डवों ने कृष्ण के साथ मिलकर कौरवों पर आक्रमण करने की योजना बनानी भी प्रारंभ कर दी।

उधर दुर्योधन से अपमानित विदुर को विरक्ति उत्पन्न होने लगी। वे विचार करने लगे कि संपत्ति, प्रभुता, विषयवृत्ति आदि भौतिक सुखों को धिक्कार है; जिनके कारण पिता-पुत्र, मित्र-मित्र, भ्राता-भ्राता व निकट संबंधियों में भी विरोध उत्पन्न हो जाता है। यह सोचकर वे विपुलमना विदुर विश्वकीर्ति मुनि श्री के पास गये व उनसे दीक्षा ग्रहण करने के बाद मुनि बन कर विहार करने लगे।

कुरूक्षेत्र का युद्ध – महाभारत

उत्तर पुराण के अनुसार एक समय की घटना है कि मगध देश के कुछ व्यापारी रास्ता भटक कर जल मार्ग के रास्ते द्वारावती नगरी पहुँचे व वहां का वैभव देखकर आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने वहां से अनेक रत्न खरीदे व अपने नगर राजगृह रवाना हो गये। परन्तु पांडव पुराण एवं हरिवंश पुराण के अनुसार द्वारिका के कुछ वणिक भगवान नेमिनाथ के जन्मोत्सव के पूर्व इन्द्रों द्वारा 15 माह तक की गई दैवीय रत्नों की वर्षा के कुछ रत्न लेकर जरासंध के पास भेंट करने जा पहुँचे। उन वणिकों ने जरासंध की भूरि-भूरि प्रशंसा कर कहा कि वहां नेमिप्रभु के संग नारायाण श्रीकृष्ण राज्य करते हैं। उन्होंने द्वारिका के यादवों, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण, नेमिनाथ आदि के महात्म्य की महाराज जरासंध से विस्तार से चर्चा की व शत्रुओं से अलंघ्य द्वारावति नगरी के बारे में विस्तार से बतलाया। वे बोले– बारह योजन लंबी व नौ योजन चौड़ी द्वारावति नगरी समुद्र के बीच में स्थित है। इस नगरी का वैभव अवर्णनीय है।

अपने प्रबल शत्रु यादवों का उत्कर्ष सुनकर वह अपने को संयत न रख सका व क्रोधायमान होकर अपने मंत्रियों से पूछा कि यादव शत्रु आज तक उपेक्षित कैसे रहे? हमारे गुप्तचर आज तक क्या करते रहे? यह दुष्ट यादव मेरे जमाई कंस व भाई अपराजित को मारकर कैसे समृद्धि हो प्राप्त हो गये। तब मंत्री समूह ने एक स्वर से कहा कि सब कुछ जानते हुए भी हम इसीलिए चुप रहे क्योंकि यादव कुल में जन्में तीर्थंकर नेमिनाथ, नारायण श्रीकृष्ण व बलदेव को देवता भी जीतने में समर्थ नहीं हैं। महातेजस्वी पांडव व विवाह संबंधों के कारण अधिकांश विद्याधर उनके पक्ष में हैं। तीन करोड़ पचास लाख यादव कुमार महा बलवान हैं। अतः हम सोचते रहे कि वे वहां और हम यहां सुख से रहें। हां, यदि आपके इस अवस्था में रहते हुए भी वे प्रतिकार करें तो ही उनके साथ युद्ध करना उचित है।

जरासंध का क्रोध मंत्रियों की इन बातों को सुनकर और भड़क गया। उसने अजितसेन नाम के एक दूत को द्वारिका भेज दिया और चारों दिशाओं के अधीनस्थ राजाओं को अपने-अपने सैन्य दलों के साथ महायुद्ध को तैयार रहने का संदेश भिजवा दिया। उसने दुर्योधन के पास भी दूत भेजकर कहलवा भेजा कि द्वारिका में यादवों का असीम वैभव है तथा पांडव भी वहीं जीवित रहकर वास करते हैं; अतः शीघ्र ही शूरवीरों से युक्त चतुरंगणी सेना लेकर युद्ध क्षेत्र की ओर कूच करो। यह सुनकर दुर्योधन अति प्रसन्न हुआ व उसने शीघ्र ही नगर में रणभेरी बजवा दी। उसकी सेना राजमंदिर पुर की ओर बढ़ चली। उधर जरासंध का दूत द्वारिका पहुँच गया व उसने यहां यादवों, भोज, पांडवों व विद्याधरों से युक्त श्रीकृष्ण की सभा में प्रवेश कर कहा कि आप लोग जरासंध से इतने भयभीत क्यों हैं? आपको जाकर उन्हें नमस्कार करना उचित है। जरासंध को आपके यहां छिपे होने की बात मालूम चल गई है। वह युद्ध हेतु निकलने वाला है। दूत के यह वचन सुनकर सभा में उपस्थित सभी ने एक स्वर से उस दूत से कहा कि हम सभी युद्ध हेतु उत्कंठित हैं। यह कहकर दूत को विदा कर दिया।

यद्यपि युद्ध के समाचार से सभी को अप्रसन्नता होती है; परन्तु अकारण-युद्ध आरंभ होता देखकर नारद खुशी से नाच उठा और सीधे शत्रु विनाशक नारायण श्रीकृष्ण को जरासंध के क्रोधान्ध होकर उसके युद्ध अभियान का हाल कह सुनाया। नारद के यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण नेमिप्रभु के समीप चले गये व उन्होंने उनसे भविष्य में होने वाले युद्ध के संबंध में प्रश्न किया। किन्तु इन्द्रों से सेवित नेमिनाथ ने कोई उत्तर न देकर केवल स्मित हास्य किया। प्रभु की इस मंद मुस्कान को श्रीकृष्ण ने अपनी निश्चित विजय का सूचक समझा व तत्काल सेनाओं को युद्ध हेतु तैयार होने का आदेश दे दिया।

जरासंध के दूत के चले जाने पर विमल, अमल व शार्दूल नाम के निपुण मंत्रियों ने राजा समुद्रविजय से कहा

कि साम नीति दोनों पक्षों को शान्ति का कारण होती है; अतः इस नीति के अनुसार हमें भी युद्ध के पूर्व जरासंध के पास अपने दूत को भेजना चाहिए। तब लोहजंग कुमार नाम के व्यक्ति को कुछ सेना के साथ दूत बनाकर जरासंध के पास भेजा गया। उसने आगे जाकर पूर्व मालव देश में पड़ाव डाला। यहीं उन्होंने मासोपवासी व वन में आहार लेने की प्रतिज्ञा करने वाले तिलकानंद व नंदन नाम के मुनिराजों को आहार दान दिया। आहार दान के पश्चात् वहां पंच-आश्चर्य हुए। इससे वह स्थल देवावतार नाम का तीर्थ बन गया। लोहजंग दूत ने जरासंध के महलों में पहुँचकर उनसे चर्चा कर जरासंध को 6 माह तक संधि के लिए मना लिया व वह द्वारिका वापिस आ गया। संधिकाल बीतने पर जरासंध अपने मित्रों की सेनाओं के साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हेतु पहुँच गया। वहीं दुर्योधन की महासेना भी कुरुक्षेत्र पहुँच कर जरासंध की सेना में एकमेक हो गई। व्योममार्ग से आकर कुछ विद्याधरों ने भी जरासंध को चारों ओर से घेरकर सुरक्षित कर लिया। जरासंध की सेना में अब भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृष, चित्र, कर्म, रुधिर, इन्द्रसेन, हेमप्रभ, दुर्योधन, दुःशासन, कलिंग आदि बड़े-बड़े राजागण थे। वे सभी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ कुरुक्षेत्र में जरासंध के साथ आकर खड़े हो गये थे।

दूसरी ओर श्रीकृष्ण के नेतृत्व में पांडवों की सेना ने भी यादवों की सेना व मित्र राजाओं की सेना के साथ कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में आकर अपना मोर्चा सम्हाल लिया। इस पक्ष के योद्धाओं में अदम्य पराक्रमी बलदेव, जयशील, समुद्रविजय, वसुदेव, अनाबृष्टि, पांचों पांडव, प्रद्युम्न, दृष्टद्युम्न, सत्यक, जय, भूरिश्रव, भूप, सारण, हरिण्यगर्भ, शंब, अक्षोम्य, विभदरूप, भोजसिंधु, परिवज्र, द्रुपद, पोंड्र, भूमति, नारद, वृष्टि, कपिल, क्षेमधूर्तक, महानेमि, पदमरथ, अक्रूर, निषध, दुर्मुख, उन्मुख, कृतवर्मा, विराट, चारू, कृष्णक, विजय, यवन, भानु, शिखंडी, सोमदत्तक, वान्हिक आदि महारथी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ युद्ध को तत्पर थे। समुद्रविजय की एक अक्षोहिणी

सेना, उग्रसेन व इक्ष्वाकुवंशी मेरू की एक-एक अक्षोहिणी सेना, राष्ट्रवर्धन नरेश सिंहल देश व राजा पदमरथ की आधी-आधी अक्षोहिणी सेना, शकुनि के भाई चारूदत्त की चौथाई अक्षोहिणी सेनाओं के साथ वर्वर, यमण, आभीर, काम्बोज व द्रविण राजाओं की सेनायें श्रीकृष्ण के पक्ष में थीं। यादवों की सेना में कुछ अतिरथ, कुछ महारथ, कुछ समरथ, कुछ अर्धरथ व शेष नरेश रथी थे।

नेमि, बलदेव व श्रीकृष्ण अतिरथ थे अर्थात् योद्धाओं में सर्वश्रेष्ठ थे। समुद्रविजय, वसुदेव, पांचों पांडव, कर्ण, रूक्मी, प्रद्युम्न, दृष्टद्युम्न, शल्य, हिरण्यनाभ, सारंण आदि महारथी होने से ये सभी शस्त्रविद्या व शास्त्रार्थ में निपुण थे। महाशक्तिवान व महाधैर्यशाली थे। समुद्रविजय व शेष आठ भाई, शंब, भोज, द्रुपद, सिंहराज, शल्य, वज्र, पौंड, पदमरथ, आदि यह सभी समरथी थे। अर्थात् युद्ध में समान शक्ति के धारक थे। महानेमि, धर, अक्रूर, निषध, दुर्मुख, कृतवर्मा, विराट, यवन, भानु आदि अर्धरथी थे व शेष सभी राजा रथी थे। ऐसे राजा-महाराजा दोनों पक्षों की सेनाओं में थे। जरासंध के पास भी अनेक अक्षोहिणी सेना थी।

तभी श्रीकृष्ण ने कर्ण के पास दूत भेजकर कहलवाया कि वे आगे नियम से चक्रवर्ती सम्राट होंगे। जिनेन्द्र प्रभु की ऐसी ही उक्ति है। उनकी वाणी कदापि असत्य नहीं हो सकती। आप कुन्ती पुत्र हैं व पांडव आपके भाई हैं; अतः आप इस युद्ध में सहयोग न करें व कुरूजांगल प्रदेश का शासन आनंद से संभालें। पांडव पुराण में इस प्रकार का कथन है।

किन्तु हरिवंश पुराण के अनुसार युद्ध क्षेत्र में कुन्ती घबड़ाने पर युधिष्ठिर आदि पुत्रों से आज्ञा लेकर कन्या अवस्था के पुत्र कर्ण से मिलने गई व उसे उसके जन्म के बारे में पूरा वृतांत बतलाया। तब पहले से भी इन बातों के ज्ञाता कर्ण को निश्चय हो गया कि मैं कुन्ती और पांडु का ही पुत्र हूँ। ऐसा जानकर कर्ण ने सर्वप्रथम कुन्ती की पूजा की, तब कुन्ती ने कर्ण से अपने बांधवों के पक्ष में चलने का

निवेदन किया। पर कर्ण ने गंभीर विचार मंथन के बाद अपने स्वामी दुर्योधन का कार्य छोड़कर भाइयों के कार्य में सहयोग को नकार दिया। वह बोला कि युद्ध-स्थल से हटना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसा करना अपने स्वामी के साथ विश्वासघात होता है व निदंनीय भी। परन्तु हां मैं युद्ध के पश्चात् पांडवों को उनका न्यायोचित राज्याधिकार अवश्य कौरवों से दिलवा दूंगा। इतना कहकर कर्ण ने माँ कुन्ती व दूत को आदर के साथ विदा कर दिया।

तत्पश्चात वह दूत जरासंध से श्रीकृष्ण का संदेश कहने लगा कि आप यादव नरेशों के प्रति अत्याचार का निश्चय त्याग कर उनके साथ दृढ़ संधि कर लें। क्या आपको भगवान नेमिप्रभु की वाणी पर विश्वास नहीं कि इस युद्ध में आप निश्चित ही श्रीकृष्ण के हाथों, गांगेय शिखंडी के हाथों व *गुरु द्रोणाचार्य अर्जुन के हाथों परलोक को प्राप्त करेंगे। इस* प्रकार जरासंध को सावधान कर वह दूत श्रीकृष्ण के पास चला गया व उनको बतलाया कि जरासंध की पूरी सेना कुरुक्षेत्र में युद्ध को तत्पर है। वे संधि करने को बिल्कुल भी राजी नहीं हैं।

उधर जरासंध को युद्ध के मोर्चे पर जाते समय पराजय सूचक अनेक अपशगुन हुए, जिससे दुर्योधन जैसे वीर भी थोड़े विचलित से हो गये। पर मंत्रियों से मंत्रणा के बाद सभी एकजुट होकर युद्ध को तत्पर हो गये। तब शीघ्र ही जरासंध ने युद्ध के लिए रणभेरी बजवा दी। जरासंध की सेनाओं के कुशल राजाओं ने एक विशाल चक्रव्यूह की रचना की; जिसमें गोल आकार में 1000 आरे थे। प्रत्येक आरे में एक-एक नरेश 200 हाथियों, 2000 रथों, 5000 घोड़ों व 16000 पद सैनिकों का मालिक था। चक्र की धुरी के पास 6000 राजा सेना सहित नियुक्त किय गये थे; जिसके मध्य में जरासंध व कर्ण जैसे 5000 बलशाली नरेश स्थित थे। 50-50 नरेश धुरा की संधियों पर नियुक्त किये गये थे। व्यूह के बाहर भी व्यूह रचना की गई थी।

जब वसुदेव को पता चला कि जरासंध ने चक्रव्यूह की

रचना की है; तो वसुदेव ने भी इसके भेदन हेतु गरुड़ व्यूह की रचना अपनी सेना में कर डाली। गरुड़ व्यूह में गरुड़ मुख पर 50 लाख यादव सैनिक यादव नरेशों के साथ तैनात किये गये। कृष्ण व बलदेव गरुड़ के मस्तक पर नियुक्त किय गये थे। महारथियों को मस्तक के आसपास चारों ओर व अतिरथों को पृष्ठरक्षा हेतु पीछे नियुक्त किया गया। एक करोड़ रथों के साथ भोज नरेश गरूण रचना के पृष्ठ भाग पर व इनकी भी पृष्ठरक्षा हेतु अनेक रणवीर नरेश नियुक्त किये गये। समुद्रविजय को गरुड़ रचना के दाहिने पंख पर नियुक्त किया गया। जिनके आसपास पच्चीस लाख रथों से युक्त राजा थे। बलदेव के पुत्र व पांडवों को गरूण के बांये पंख पर नियुक्त किया गया। जिनकी सहायता हेतु यहां भी पच्चीस लाख रथों से युक्त राजा थे। इस गरूण व्यूह की रक्षा हेतु भी रक्षक नियुक्त किये गये थे। वसुदेव के शूरवीर पुत्र अनावृष्टि को सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। वहीं जरासंध ने हिरण्यनाभ को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया।

युद्ध प्रारंभ हो चुका था। हाथी हाथियों से, रथ रथों से, घोड़े घोड़ों से व पैदल पैदल सैनिकों पर पिल पड़े। खड्गों से शिरच्छेद किये जा रहे थे। भालों से वक्षस्थल विद्ध किये जा रहे थे एवं गदाओं से भीषण प्रहार किये जा रहे थे। इस घमासान युद्ध में जब यादव सेना हतोत्साहित होने लगी, तो श्रीकृष्ण के पुत्र शंबूकुमार ने आगे बढ़कर सैनिकों को धैर्य प्रदान किया। इस वीर से युद्ध करने क्षेत्रविद्ध नाम का विद्याधर आकर युद्ध करने लगा। पर शंबू कुमार ने शीघ्र ही उसे रथ विहीन कर दिया। तब उसके स्थान पर एक अन्य विद्याधर आकर युद्ध करने लगा। शंबूकुमार ने उसकी भी यही दशा की। तब कालसंदर नाम का एक महायोद्धा शंबूकुमार से युद्ध करने आ गया। तब प्रद्युम्न ने शंबूकुमार को अलग कर उससे युद्ध प्रारंभ कर दिया। अविच्छिन्न वाणों की वर्षा होने लगी। प्रद्युम्न ने शीघ्र ही प्रज्ञप्ति नाम की विद्या का प्रयोग कर उसे बंदी बनाकर अपने रथ में डाल लिया। तब

शल्य नामक विद्याधर प्रद्युम्न से युद्ध को उद्यत हुआ। प्रद्युम्न ने शीघ्र ही शल्य नाम के विद्याधर का रथ नष्ट कर दिया। इसी बीच–शिशुपाल के लघु भ्राता ने आकर प्रद्युम्न के रथ को नष्ट कर उसे मूर्छित कर दिया। जिससे प्रद्युम्न का सारथी पलायन करने लगा। पर शीघ्र ही प्रद्युम्न को चैतन्य लाभ हो गया। प्रद्युम्न ने सारथी को पलायन की चेष्टा करते देख धिक्कारा व कहा कि युद्ध-स्थल से पृष्ठ प्रदर्शन करना घोर पाप है। तुझे ऐसा करते लज्जा नहीं आती। युद्ध के लिए ही तो इस देहयष्टि का उत्तम आहार विहार के द्वारा पालन पोषण किया जाता है। यह कहकर प्रद्युम्न नये रथ पर सवार होकर पुनः उसी से युद्ध करने लगा।

पर इसी बीच श्रीकृष्ण उन दोनों के बीच आ गये। जिसे देखकर जरासंध के पक्ष से शल्य नामक विद्याधर वीर युद्धस्थल में आ गया। उसने भीषण बाण वर्षा की, जिसमें श्रीकृष्ण, उनका सारथी व रथ सभी वद्ध हो गये। तभी रक्तरंजित एक भयानक मायावी व्यक्ति श्रीकृष्ण से आकर कहने लगा कि जरासंध ने युद्ध में सभी पांडवों व यादव वीरों की इहलीला समाप्त कर समुद्रविजय को भी यमलोक पहुँचाकर तुम्हारी द्वारिकापुरी पर कब्जा कर लिया है। अतः तुम व्यर्थ में ही अपने प्राणों की आहुति क्यों देते हो। अतः तुम्हारा भला इसी में है कि तुम युद्ध करना छोड़ दो। यह सब सुनकर श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया। तब वे तिरस्कार व रोषपूर्ण शब्दों में बोले कि रे दुष्ट– तेरे छल-कपट का मुझ पर किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ने वाला। किसमें इतनी शक्ति है जो मेरे रहते पांडवों व यादवों को यमराज के यहां भेज सके। श्रीकृष्ण की यह भर्त्सना सुनकर वह मायावी शीघ्र ही वहां से पलायन कर गया। जब श्रीकृष्ण पुनः धनुष बाण लेकर युद्ध को तत्पर हुए तो इनके सम्मुख पुनः एक भयंकर कपटी राक्षस आकर बोला– तुम यहां युद्ध में व्यस्त हो और उधर बलराम की मृत्यु हो गई है। इस दुखद समाचार को सुनकर कृष्ण पक्ष के सभी विद्याधरों ने युद्ध करना बंद कर दिया। इतना कहकर उस राक्षस ने कपटपूर्वक श्रीकृष्ण के

ऊपर एक वृक्ष बाण छोड़ दिया। परन्तु दूरदर्शी श्रीकृष्ण ने अग्नि बाण छोड़कर उसे मार्ग में ही ध्वस्त कर दिया। तब उसने पाषाण वर्षा हेतु पर्वत बाण छोड़ा। जिसे श्रीकृष्ण ने बज्र बाण छोड़कर नष्ट कर दिया। श्रीकृष्ण के इस रण कौशल को देखकर वह राक्षस भी वहां से भाग गया।

श्रीकृष्ण ने अपने युद्ध कौशल से शीघ्र ही शल्य को परास्त कर दिया। तब देवों ने आकाश से पुष्प वर्षा की। तभी रथनेमि, अर्जुन व अनावृष्टि चक्रव्यहू के भेदन हेतु आगे बढ़े व उन्होंने क्रमशः इन्द्र प्रदत्त शांक, देवदत्त व वलाहक नाम के शंख फूंके। जिससे विरोधी सेना में खलबली मच गई। तब शीघ्र ही अनावृष्टि ने चक्रव्यह के मध्य भाग को भेद डाला। रथनेमि ने भी चक्रव्यूह के दक्षिण भाग का भेदन कर दिया। वीर अर्जुन ने चक्रव्यूह के पश्चिमोत्तर भाग को नष्ट कर दिया। इस घटना से महायुद्ध प्रारंभ हो गया। नारद यह युद्ध देखकर पुष्पवृष्टि कर आसमान में नाच रहे थे। हजारों योद्धा युद्ध में खेत हो गये। अपनी व्यूह रचना को ध्वस्त होते देखकर जरासंध क्रोध से भर गया व उसने दुर्योधन आदि तीन वीरों को युद्ध करने के लिए भेजा। दुर्योधन अर्जुन के साथ, विरूप्य रथनेमि के साथ एवं हिरण्यनाभ युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने लगे।

इस घमासान युद्ध में दोनों ही पक्षों के भारी मात्रा में रथ, हस्ती, अश्व व सैनिक नष्ट हुए। इस भीषण युद्ध को देखकर साहसी योद्धा तो उमंग के साथ युद्ध करने में रत थे; पर भीरू पुरुष समर क्षेत्र त्याग कर पलायन करने लगे। इसी बीच दुर्योधन ने अर्जुन से कहा– हे अर्जुन सौभाग्यवश तुम लोग लाक्षागृह से सुरक्षित निकल गये। पर अब क्या विनाश की इच्छा से प्रेरित होकर फिर तुम मेरे सामने वीर योद्धा बनकर खड़े हो। दुर्योधन के यह वचन सुनकर अर्जुन ने कुछ नहीं कहा, पर प्रत्युत्तर में वह अपना धनुष बाण संभाल कर प्रलय सूचक घन सदृश्य गर्जना करता हुआ भीषण बाणों की वर्षा करने लगा। इस बाण वर्षा से दुर्योधन रथ सहित आच्छादित हो गया और उसका धनुष टूट गया। तब दुर्योधन

की रक्षा के लिए जलंधर आकर युद्ध करने लगा। जलंधर के पश्चात् रूप्य कुमार ने आकर अर्जुन से युद्ध किया। तब अर्जुन ने उससे कहा कि तुम श्रेष्ठ वीर पुरुष होकर भी अन्यायी का पक्ष क्यों लेते हो? तब रूप्य कुमार ने कहा कि श्रीकृष्ण दूसरों की कन्याओं का अपहरण करता है तो क्या तुमने कभी श्रीकृष्ण के दुष्कृत्यों पर भी विचार किया? तब अर्जुन ने यह सुनकर रूप्य कुमार को युद्ध के लिए ललकारा व कहा कि मैं अपने बाणों से अभी न्याय-अन्याय का निर्णय किये देता हूँ। ऐसा कहकर अर्जुन ने क्षण भर में ही बाणों की वर्षा कर रूप्य कुमार को अधीर कर दिया। शत्रु पक्ष की चक्रव्यूह रचना को भेदकर अर्जुन आदि बहुत उल्लासित थे। युद्ध में उन्हें विजयश्री मिली तथा वे अपनी सेना में जा मिले। कुछ समय पश्चात् पुनः युद्ध प्रारंभ होने पर युधिष्ठिर ने जरासंध के प्रमुख योद्धा हिरण्य को तमाम सैनिकों के साथ परास्त कर निहत कर दिया। हिरण्यनाभ का वध देखकर मानो सूर्यदेव अस्ताचल को प्रयाण कर गये। तभी रात्रि आगमन पर नियमानुसार युद्ध स्थगित हो गया। युद्ध में निहत वीरों का यथायोग्य दाह-संस्कार कर सब अपने-अपने शिविरों में चले गये।

अपने सेनापति के मारे जाने पर रात्रि में जरासंध ने अपने चतुर मंत्रियों के साथ परामर्श कर सेनापति के पद पर वीर सेवक को नियुक्त कर दिया। रात्रि में ही दुर्योधन ने पांडवों के पास एक चतुर संदेशवाहक दूत के द्वारा संदेश भेजा कि तुम लोगों के गुणों व शासन प्रणाली की सामान्यजन जितनी प्रशंसा करें पर मैंने तुम लोगों को जीवित न रहने देने की प्रतिज्ञा कर रखी है, उसमें कदापि परिवर्तन नहीं होगा। तब उस दूत के वचनों को सुनकर प्रत्युत्तर में वीर पांडवों ने कहा– अपने स्वामी से जाकर कह दो कि वह यमपुरी प्रस्थान करने के लिए प्रस्तुत हो जावें। जरासंध के साथ वह भी यमराज का अतिथि होगा। दूत ने पांडवों के वचनों को जस का तस जाकर कह सुनाया। सूर्योदय हुआ, रणभेरियां बजने लगीं। समर भूमि में वीर योद्धा एकत्रित होने लगे।

युद्ध-स्थल में पहुँचकर अर्जुन ने अपने सारथी से विरोधी योद्धाओं का परिचय करवाने को कहा। तब सारथी ने अर्जुन को बतलाया कि हे वीरवर-ताल की ध्वजा वाले रथ में पितामह भीष्म विराजमान हैं। उनके रथ में श्रीकृष्ण वर्ण के घोड़े जुते हुए हैं। रक्त वर्ण के अश्वों से युक्त रथ द्रोणाचार्य का है जिसमें कलश चिन्हांकित ध्वजा लगी है। दुर्योधन के रथ में नीले वर्ण के अश्व जुते हुए हैं। उनके रथ पर नाग-ध्वजा पवन से स्पर्धा कर रही है। दु:शासन का रथ पीत वर्ण के अश्वों से चालित है। इस रथ पर जाल की ध्वजा है। अश्वत्थामा के रथ में श्वेत वर्ण के अश्व रथ को खींचेंगे; इनकी ध्वजा में वानर चिन्ह अंकित है। रक्त वर्ण के अश्वों वाला रथ शल्य का है। इस रथ में सीता चिन्ह की ध्वजा लगी है। जयद्रथ नरेश का रथ भी रक्त वर्ण के अश्वों वाला है; किन्तु उनकी ध्वजा में कोल चिन्ह अंकित है। इस प्रकार परिचय प्राप्त करने के बाद अर्जुन स्वयं युद्ध हेतु रणांगण के मध्य में जा पहुंचा। उधर से भीष्म पितामह आ गये। भीष्म पितामह ने आते ही अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया। पर अभिमन्यु ने भी शीघ्र ही भीष्म पितामह की ध्वजा को छिन्न-भिन्न कर दिया। बदले में भीष्म पितामह ने भी अभिमन्यु के रथ की ध्वजा को काट दिया। अपनी ध्वजा को कटा देखकर अभिमन्यु ने भीष्म पितामह के सारथी की दोनों भुजाओं को शर से बिद्ध कर दिया। इस घटना को देखकर उपस्थित लोग आश्चर्य में पड़कर कहने लगे कि वीर अर्जुन का पुत्र अपने पिता से किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। बाद में अभिमन्यु ने जब शताधिक वीर योद्धाओं को परास्त कर दिया, तो उसके भय से कौरव सेना में विच्छृंखलता उत्पन्न हो गई।

उधर अर्जुन के सहचर उत्तर कुमार ने शल्य को संग्राम के लिए ललकारा, पर शल्य ने शीघ्र ही उत्तर कुमार का छत्र भंग कर दिया। उत्तर कुमार भी अन्यान्य बाणों से बिद्ध होकर वहीं गिर पड़ा। अपने ज्येष्ठ भ्राता की यह दुर्गति देखकर राजा विराट का कनिष्ठ पुत्र श्वेत कुमार त्वरित गति से युद्ध

के लिए आया व आते ही उसने शल्य की ध्वजा, छत्र एवं उसके अस्त्र-शस्त्रों को खंड-विखंड कर शल्य को पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देखकर कुपित पितामह भीष्म श्वेत कुमार की ओर अग्रसर हुए। श्वेत कुमार ने भीष्म पितामह को युद्ध से विरत करने के अनेक प्रयास किये, पर जब वे रंचमात्र भी अप्रतिहत न हो सके, तब बाध्य होकर श्वेत कुमार ने उग्र बाण वर्षा से उन्हें पूर्णत: आच्छादित कर दिया। पितामह भीष्म को भयंकर आपत्ति में निबद्ध देखकर दुर्योधन चीत्कार करता हुआ श्वेत कुमार के पीछे दौड़ा। किन्तु तभी जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि को वारिद शांत कर देता है, उसी प्रकार अर्जुन ने दुर्योधन को अग्रसर होने से रोककर तटस्थ कर दिया। दुर्योधन के सभी प्रयास विफल हो गये। वह अग्रसर न हो सका। तभी अर्जुन ने अपना गांडीव संभाला एवं दुर्योधन को बाणों से आच्छादित कर दिया। परन्तु दुर्योधन को इससे कोई हानि नहीं हुई।

इधर अर्जुन व दुर्योधन के बीच युद्ध चल रहा था। उधर श्वेत कुमार भीष्म पितामह के साथ युद्ध कर रहा था। श्वेत कुमार ने भीष्म पितामह के धनुष, ध्वजा, छत्र आदि छिन्न-भिन्न कर दिये व उनके वक्षस्थल पर खड्ग से भीषण प्रहार किया। जिससे संपूर्ण कौरव सेना में कोलाहल मच गया। इसी समय आकाशवाणी हुई—हे भीष्म पितामह! धैर्य धारण करो, कातर मत हो। वीरतापूर्वक युद्ध कर वीर योद्धाओं का संहार करो—भीरू होने की आपको कोई आवश्यकता नहीं है।

आकाशवाणी को सुनकर भीष्म पितामह ने स्थिर चित्त होकर सतर्कता पूर्वक अपने धनुष बाण को धारण कर एक साथ उन्होंने सैंकड़ों बाणों का प्रहार किया। जिससे श्वेत कुमार सदा के लिए धराशायी हो गया। किन्तु वीरोचित्त मृत्यु प्राप्त कर वह स्वर्ग लोग में देव हुआ। कुछ ही क्षण के पश्चात् सूर्यास्त होने पर युद्ध रोक दिया गया। दोनों पक्ष के सैनिक अपने-अपने स्कंधावरों में जाकर विश्राम करने लगे। जब राजा विराट को अपने पुत्र के युद्ध में मारे जाने का पता चला तो उन्होंने पांडवों से कहा कि आप जैसे महारथियों के

रहते हुए भी मेरे पुत्र की रक्षा न हो सकी। यह मेरा दुर्भाग्य है। तब विराट को दुःखी व विलाप करते देखकर युधिष्ठिर ने प्रतिज्ञा की कि यदि आज से सत्रह दिवस के अंदर श्वेत कुमार की मृत्यु के लिए निमित्त बने शल्य को न मार डालूं तो आप लोगों के सामने अग्निकुंड में निक्षेप कर मैं अपनी इहलीला समाप्त कर दूंगा। तभी शिखंडी ने भी प्रतिज्ञा की कि मैं आज से नवमें दिवस तक भीष्म पितामह को अवश्य मृत्यु शैया पर शायित कर दूंगा। ऐसा न करने पर मैं भी अग्नि कुंड में अपनी आहुति दे दूंगा।

प्रातः होने पर समयानुसार फिर रणभेरी का उद्घोष हुआ। रथियों के साथ रथी, अश्वारोहियों के साथ अश्वारोही व हस्ती सवारों के साथ हस्ती सवार युद्ध करने लगे। अर्जुन की बाण वर्षा से समस्त शत्रु सेना अस्त-व्यस्त हो गई। तभी भीष्म पितामह ने बीच में आकर अर्जुन की अग्रगति को प्रतिहत कर दिया। तब अर्जुन ने भी अपने एक ही बाण से भीष्म पितामह के समस्त प्रयास नष्ट कर दिये और अनेक हस्तियों, अश्वों व सैनिकों को हताहत कर दिया। अपनी सेना के विनाश को देखकर दुर्योधन क्षुब्ध होकर पितामह से बोला– हे तात! यदि आप इस प्रकार अन्यमनस्क होकर युद्ध करेंगे; तब तो हम लोगों की पराजय निश्चित ही है। आपको तो इस प्रकार युद्ध करना चाहिए जिससे अर्जुन का समस्त पराक्रम व्यर्थ हो जावे। यदि आप दृढ़तापूर्वक युद्ध करने लगे, तो किसमें साहस है कि आपके सम्मुख उपस्थित रह सके।

दुर्योधन के इस प्रेरणादायक उद्बोधन से प्रोत्साहित होकर भीष्म पितामह प्रबलतापूर्वक युद्ध करने के लिए अग्रसर हुए और वे सम्मुख खड़े अर्जुन से युद्ध करने लगे। तभी अर्जुन ने भीष्म पितामह से कहा कि हे पितामह! क्या आपको हमसे युद्ध करना उचित प्रतीत लगता है। यदि आप इसे योग्य समझते हैं, तो फिर परिणाम भुगतने को तत्पर रहिये। तभी द्रोणाचार्य भी युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुए व दृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। द्रोणाचार्य ने शीघ्र ही दृष्टद्युम्न की ध्वजा व छत्र को नष्ट कर दिया। तब द्रोणाचार्य ने

दृष्टद्युम्न पर शक्ति बाण का निक्षेपण किया जिसे उसने रास्ते में ही नष्ट कर दिया। इधर ये लोग युद्धरत थे, वहां दूसरी ओर भीम अपनी विशाल गदा के प्रहार से शत्रु सेना का संहार कर रहा था। उसने युद्ध में शीघ्र ही कलिंग पुत्र का संहार कर दिया। असंख्य सैनिकों के साथ भीम ने शतक रथों को व हजारों हाथियों को भी विनष्ट कर दिया। उधर द्रोणाचार्य ने भी दृष्टद्युम्न के खड्ग को तोड़ डाला तो वहीं अभिमन्यु ने भी द्रोणाचार्य के रथ को नष्ट कर दिया। तभी सहसा दुर्योधन का पुत्र सुलक्षण युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ व उसने अभिमन्यु के धनुष को खंडित कर दिया। तभी अभिमन्यु ने दूसरा धनुष लेकर युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। किन्तु उसी समय हजारों युगपत वीरों ने अभिमन्यु को चतुर्दिशाओं से आवेष्ठित कर लिया, मानों ऐकाकी सिंह शावक को हाथियों के समूह ने वेष्ठित कर लिया हो। किन्तु तभी गांडीवधारी अर्जुन वहां पहुँच गये एवं उन्होंने अपने भीषण प्रहारों के द्वारा सब वीरों को छत्र भंग कर दिया।

अभिमन्यु अब स्वच्छंद होकर पुनः युद्ध करने लगा। इसी प्रकार 9 दिवस तक युद्ध चलता रहा। नवमें दिवस के आगमन पर दृष्टद्युम्न ने युद्ध के लिए पितामह भीष्म का आह्वान किया। तभी अर्जुन ने अपना एक अद्भुत बाण शिखंडी को देते हुए कहा कि लो, मेरे इस बाण से तुम शत्रुओं का नाश करो। इस बाण में अनेक प्रकार की अद्भुत शक्तियां निहित हैं। शिखंडी उस बाण को लेकर युद्ध करने लगा। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ; परन्तु फिर भी किसी की जय-पराजय का निर्णय नहीं हो सका। यह देखकर दृष्टद्युम्न ने शिखंडी से कहा कि यद्यपि तुमने विकट रूप से युद्ध किया है; पर तुम पितामह भीष्म का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पाये। ऐसे युद्ध से क्या लाभ? अब मैं तुम्हारी सहायता के लिए आ गया हूँ। राजा विराट भी तुम्हारी *सहायता के लिए तत्पर हैं। यह सुनकर शिखंडी द्विगुंणित* साहस के साथ युद्ध करने लगा। जिस प्रकार मेघमंडल से व्योम व्याप्त हो जाता है; उसी प्रकार शिखंडी ने पितामह को

अपने बाणों की वर्षा से पूर्णतः आच्छादित कर दिया। यद्यपि इतना होने पर भी पितामह को किंचित भी आघात नहीं लगा। दूसरी ओर दृष्टद्युम्न के बाण जिनको भी बिद्ध करते थे, उनके वक्षस्थल में भयंकर घाव हो जाते थे। इधर गांगेय भीष्म के बाणों का भी शिखंडी पर कोई अनिष्टकर प्रभाव नहीं हो रहा था। पितामह भीष्म ने जिन-जिन बाणों का प्रयोग किया, वे सब बीच में ही निष्क्रिय कर दिये गये। शिखंडी ने पितामह भीष्म के धनुष को नष्ट कर दिया। वह पितामह भीष्म के कवच को भी विच्छिन्न करने में समर्थ हो गया। इससे शिखंडी का साहस उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया व उसने शीघ्र ही पितामह के सारथी, उनके रथ एवं ध्वजा को भी नष्ट कर दिया। वाहनविहीन हो जाने पर भी भीष्म पितामह हाथ में खड़्ग लेकर युद्ध करते रहे। किन्तु अंत में शिखंडी ने भीष्म पितामह के एकमात्र अस्त्र खड़्ग को भी खंडित कर दिया एवं उनके वक्षस्थल को भी सरों से बिद्ध कर दिया। इस प्रकार वह पराक्रमी गांगेय भीष्म निरस्त्र आहत होकर धराशायी हो गये। परम आदरणीय पितामह भीष्म को इस दयनीय अवस्था में भूलुन्ठित देखकर सभी योद्धाओं ने युद्ध को स्थगित कर दिया।

दोनों पक्षों के सभी योद्धा निरस्त्र होकर पितामह के समीप एकत्रित हो गये एवं उनके उत्तम अनुकरणीय गुणों की प्रशंसा करने लगे। तभी अपना अंत सन्निकट समझकर भीष्म पितामह ने कौरवों और पांडवों को संबोधित करते हुए कहा– इस अंतिम समय में तुम लोगों से यही आशा करूंगा कि पूर्व बैर को भुलाकर इस युद्ध को स्थगित कर दो एवं परस्पर मित्रतापूर्वक निवास करो। नौ दिन के युद्ध से किसे क्या लाभ हुआ? हां, इतना अवश्य हुआ कि कितने ही वीरों की प्राण हानि हुई। उनके आश्रित परिवारों के लोग अनाथ एवं असहाय हो गये। युद्ध की विभीषिका सबने देख ली है। तथापि जो होना था सो हो गया। अब भी समय है कि सब लोग सचेत हो जावें एवं दशलक्षण धर्म को स्वीकार कर लें। उसी समय हंस व परम हंस नाम के दो चारण ऋद्धिधारी

मुनिश्वर आकाश मार्ग से वहां अवतीर्ण हुए एवं भीष्म पितामह के समीप जाकर उनसे कहने लगे– 'हे महाभाग्य! तुम उच्च कोटि के मनीषी एवं वीराग्रणी हो। तुम्हारे जैसा सत्पुरुष संसार में कोई अन्य दृष्टिगोचर नहीं होता है।' यह सुनकर भीष्म पितामह ने उन सर्वमान्य महामुनियों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर कहा– हे प्रभो! यद्यपि मैं अंतिम सांस ग्रहण कर रहा हूँ, परन्तु परम धर्म की शरण को मैं अब तक प्राप्त नहीं कर सका। इसे मेरे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। अब मैं आप लोगों की शरण में आया हूँ; अतः उत्तम उपदेश देकर मुझे भवसागर से उत्तीर्ण होने का मार्ग बतलाने का कष्ट करें।

यह सुनकर उनमें से एक मुनिश्वर बोले– हे भव्य! तुम सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके चार आराधनाओं को दत्त चित्त होकर ग्रहण कर लो– वे हैं 1. दर्शन आराधना, 2. ज्ञान आराधना 3. चारित्र आराधना, 4. तप आराधना। जिसमें सम्यक्त्व की आराधना की जाती है; उस तत्वार्थ श्रद्धान को दर्शन आराधना कहते हैं। जिसमें जिनदेवभाषित भावनाओं के ज्ञान की आराधना की जाती है; आत्मा के उस निश्चित ज्ञान को ज्ञानाराधना कहते हैं; जिसमें कर्मों की निवृति एवं आत्मा में प्रवृति की आराधना की जाती है; उस चैतन्य स्वरूप में प्रवृति करने को चारित्राराधना कहते हैं एवं जिसमें आंतरिक एवं बाह्य तपों का पालन किया जाता है एवं दो प्रकार के संयम ग्रहण किये जाते हैं, उनको तपाराधना करते हैं। इन उपर्युक्त आराधनाओं में निश्चय एवं व्यवहार का संबंध है। इस प्रकार इन आराधनाओं की विधि का उपदेश देकर वे मुनिश्वर व्योम मार्ग से प्रस्थान कर गये। भीष्म पितामह ने इन चारों आराधनाओं को श्रद्धापूर्वक धारण करके उनकी साधना आरंभ कर दी। वे चतुर्विधि आहार एवं अपनी देह से ममत्व त्याग कर संल्लेखना ग्रहण कर दर्शन चरित्र में लीन हो गये। उन्होंने संपूर्ण जीवों से क्षमा याचना की एवं समस्त प्राणियों को क्षमा भी प्रदान की। इसके पश्चात् 'पंच नमस्कार मंत्र' का स्मरण करते हुए आकुलता

रहित होकर अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया एवं स्वर्ग में जाकर आत्मिक सुखों का उपभोग करने लगे।

भीष्म पितामह के महाप्रयाण से कौरव एवं पांडव दोनों ही शोकाकुल हुए एवं उन्हें अश्रुजल समर्पित किया। ऐसा प्रतीत होता था कि भीष्म पितामह के महाप्रयाण की सूचनां पाकर शोकाभिभूत सूर्यदेव भी संपूर्ण रात्रिकाल में अश्रुधारा प्रवाहित करते रहे। इसीलिए उषाकाल में उनके नेत्र रक्तिम हो रहे थे।

उन पवित्र आत्मा भीष्म पितामह की जय हो, जो आजन्म अटल ब्रह्मचारी रहे। जिनकी बुद्धि सदैव विशुद्ध रही। जिन्होंने धर्म पालन की कठोर प्रतिज्ञा में अपनी आत्मा को सुसंयत बनाया और अंत में पंचम ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त किया।

प्रातःकाल हुआ। सभी सुभट नित्य कर्म से निवृत होकर समर क्षेत्र में एकत्र हो गये। कौरवों ने भीष्म पितामह की अंतिम सीख पर भी ध्यान नहीं दिया और उन्होंने समय पर युद्ध घोष कर दिया। पांडव पक्ष के लोग भी यह घोष सुनकर युद्ध क्षेत्र में पहुँच गये। शल्य पुत्र विश्वसेन ने आकर अभिमन्यु से युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। कुछ ही क्षणों में अभिमन्यु ने विश्वसेन के सारथी को निहित कर दिया। इस पर शल्य पुत्र स्वयं रथ का संचालन कर युद्ध करने लगा। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् अभिमन्यु ने शल्य पुत्र विश्वसेन का भी वध कर दिया। तत्पश्चात एक अन्य वीर लक्ष्मण आकर अभिमन्यु से युद्ध करने लगा। किन्तु वह भी अभिमन्यु के हाथों शीघ्र ही मारा गया। अभिमन्यु ने इस दिन भयानक बाण वर्षा कर चौदह हजार सैनिकों का संहार किया। अभिमन्यु की सामरिक निपुणता अद्‌भुत थी। कौरव सेना पलायन करने लगी। यह देखकर दुर्योधन ने आकर अपने सैनिकों को आश्वस्त कर उन्हें प्रोत्साहित किया। गुरु द्रोणाचार्य एवं कर्ण भी संग्राम में प्रवृत हो गये। जिससे कौरव सेना का मनोबल बढ़ गया। परिणामस्वरूप दोनों पक्षों की सेनायें पूरे जोश के साथ आपस में युद्ध करने लगीं। अभिमन्यु अभी भी अद्‌भुत रणकौशल प्रदर्शित कर रहा था।

उसने कर्ण के अभिमान को चूर्ण विचूर्ण कर दिया व कलिंग के हस्ती को मार दिया। गुरु द्रोणाचार्य भी अभिमन्यु के युद्ध कौशल को देखकर स्तंभित रह गये। तभी वीर अक्षयकुमार युद्ध क्षेत्र में अभिमन्यु के सामने आया व उसने दस भयंकर बाणों को निक्षेप कर अभिमन्यु को आहत कर दिया। किन्तु वह शीघ्र ही पुनः उठकर अश्वत्थामा से भिड़ गया व उसे क्लांत कर दिया। अभिमन्यु के इस अदभुत पराक्रम को देखकर कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य से जिज्ञासा की कि हे प्रभो– यह दुर्द्धर्ष वीर किसी के द्वारा परास्त हो सकता है या नहीं। तब द्रोणाचार्य बोले–जिस वीर ने अकेले ही हजारों वीर सैनिकों का संहार कर दिया, उसे भला कौन निहत कर सकता है।

इस प्रकार अभिमन्यु के रण कौशल की प्रशंसा करने के पश्चात् गुरु द्रोणाचार्य यह कहते हुए आगे बढ़े कि सब मिलकर बलपूर्वक इसे घेरकर इसके धनुष को खंडित कर निष्क्रिय कर दो। सावधान! कहीं हमारे घेरे से मुक्त होकर वह वीर पलायन न करने पावे। परिणाम स्वरूप एक चक्रव्यूह बनाकर सभी ने अभिमन्यु को चारों ओर से बेष्ठित कर लिया एवं सामूहिक रूप से उस पर आक्रमण कर दिया। उस समय उन लोगों ने न्याय-अन्याय का कुछ भी ध्यान नहीं रखा।

उन सभी का एक उद्देश्य था–अभिमन्यु का संहार। किन्तु फिर भी अभिमन्यु सबका आक्रमण प्रतिहत करता रहा। किन्तु शीघ्र ही उसकी ध्वजा विच्छिन्न कर दी गई एवं उसके रथ को नष्ट कर दिया गया। अभिमन्यु का सारथी भी निहत हो गया। इस सबके बावजूद अभिमन्यु हताश नहीं हुआ। उसने पदातिक सैनिक के रूप में बज्रदंड धारण कर उन नराधमों के आक्रमण को प्रतिहत किया। किन्तु अंत में जयाद्रि ने अगणित तीक्ष्ण बाणों के द्वारा अभिमन्यु को सरों से बिद्ध कर डाला; जिससे अभिमन्यु प्रति आक्रमण करते-करते भूलुण्ठित हो गया। उसके धराशायी होते ही देवों के हाहाकार से व्योम मंडल तक उद्वेलित हो उठा। तब सभी को निश्चय

हो गया कि अभिमन्यु के साथ घोर अन्याय किया गया है। भला एक वीर तरुण के ऊपर इतने बड़े-बड़े शूरवीरों का एक साथ आक्रमण क्या कभी उचित कहा जा सकता है? तभी अभिमन्यु को तृषा पीड़ित देखकर कर्ण ने उसे शीतल जल का पान कराया। पर उस वीर ने यह कहकर जलपान को अस्वीकार कर दिया कि मैं अब उपवास व्रत करूंगा व पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपने प्राण विसर्जित करूंगा। यह सुनकर द्रोणाचार्य आदि क्षमाशील लोग अभिमन्यु को एक पवित्र एवं निर्जन स्थान में ले गये। वहां पहुँचकर अभिमन्यु ने आत्म-स्वरूप का चिंतवन करते हुए सबसे क्षमा प्रार्थना की एवं सबको क्षमा प्रदान की। इस प्रकार द्वेष रहित होकर प्राणों का त्याग कर अभिमन्यु स्वर्ग लोक चला गया।

दुर्योधन आदि कौरव अभिमन्यु के निधन का समाचार सुनकर अति प्रसन्न हुए। पर सांयकाल हो जाने के कारण युद्ध स्थगित कर सभी अपने-अपने स्कंधावरों में चले गये।

अभिमन्यु के वध के समाचार से श्रीकृष्ण पांडवों की सेना में आतंक फैलकर शीघ्र ही शोक का साम्राज्य छा गया। युधिष्ठिर ने जब इस दु:खद समाचार को सुना तो वह उखड़े हुए वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़े। अर्जुन को इस समाचार से मर्मान्तक पीड़ा हुई। भला वह कौन सा वज्रहृदय पिता होगा; जिसका अंत:करण अभिमन्यु समान कुलदीपक पुत्र की मृत्यु से द्रवीभूत नहीं हो उठेगा? वह कई बार मूर्छित हुए। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से आकर कहा कि आज बड़ा ही खेद का विषय है कि आज केवल तुम्हारा पुत्र ही निहित नहीं हुआ प्रत्युत एक शूरवीर सेनापति का निधन हो गया। इससे हमारी सेना अनाथ सी हो गई है किन्तु हमें धैर्यपूर्वक इस भीषण आघात को सहन कर लेना चाहिए; क्योंकि हमारे विह्वल होने से दुश्मन की सेना का साहस बढ़ेगा। हमें तो अब सर्वप्रथम ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे कि अभिमन्यु के हंता को इस दुष्कर्म का भयंकर परिणाम भोगना पड़े। अभिमन्यु की माता सुभद्रा इस दु:संवाद को सुनते ही गंभीर आघात से विक्षिप्त सी हो गई। श्रीकृष्ण व अर्जुन ने उसे

सांत्वना दी; किन्तु अपने भाई श्रीकृष्ण व पति अर्जुन को देखकर वह अत्यन्त आर्त्त स्वर में विलाप करती हुई बोली– क्या मेरे एकमात्र पुत्र अभिमन्यु की रक्षा कोई भी न कर सका। अब मैं भी अभिमन्यु के पास जाऊंगी। मेरे परलोक प्रस्थान की व्यवस्था कर दो। मुझे इतने पराक्रमियों के होते हुए भी नितांत अनाथ की भांति विलाप करना पड़ रहा है। ऐसा कहकर वह बार-बार विक्षिप्त सी हो रही थी।

तभी अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि जिस नराधम जयाद्रि ने अन्याय पूर्वक मेरे प्रिय पुत्र अभिमन्यु का हनन किया है; उसको मैं कल अवश्य ही निहत करूंगा। या तो मैं उसका मस्तक विछिन्न कर डालूंगा, अन्यथा स्वयं अग्नि में निक्षेप कर प्राणान्त कर लूंगा। इस तरह के वचन कहकर अर्जुन ने सुभद्रा को धैर्य धारण करने के लिए कहा। श्रीकृष्ण ने भी उससे धैर्य धारण करने का निवेदन किया। जब अर्जुन की इस प्रतिज्ञा का पता जयाद्रि को चला तो वह घबड़ा गया व दुर्योधन के पास गया। गुरु द्रोणाचार्य भी वहीं थे। तब सभी ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा कि हम चक्रव्यूह की रचना कर तुम्हें उसमें शरण देंगे। अतः तुम निर्भय होकर युद्ध करो। यदि अर्जुन शाम तक तुम्हें परास्त न कर सका तो वह अग्नि में प्रवेश कर जायेगा। तब तो जीत हमारी ही होगी।

उधर अर्जुन वृक्ष के चबूतरे पर कुशासन बिछाकर स्थिरतापूर्वक शासन देवता की आराधना करने लगा। कुछ ही समय बाद शासन देवता प्रकट हो गये व बोले– मुझे क्या आज्ञा है। जब श्रीकृष्ण व अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा के बारे में उसे बतलाया तब वह देवता श्रीकृष्ण व अर्जुन को साथ लेकर एक वापी पर गया व बोला इसमें दो भयंकर विषधर रहते है। उनको पकड़ लाओ। तब शीघ्र ही अर्जुन ने वापी में प्रवेश कर उन्हें पकड़ लिया। तब वह देवता बोला कि इन विषधरों में से एक धनुष व दूसरा वाण के रूप में क्रियाशील होकर अनायास ही आपको विजय श्री दिला देंगे। किन्तु इस बात का ध्यान रखना कि जयाद्रि का

पिता विद्या साधन की अभिलाषा से वन में तपस्या कर रहा है। जयाद्रि के विछिन्न मस्तक को लेकर उसके पिता के हाथों में रख देना; तो उसका पिता भी तत्काल मरण को प्राप्त हो जायेगा। इतना कहकर शासन देवता चले गये।

प्रातः होने पर दोनों सेनायें आमने सामने थीं। गुरु द्रोणाचार्य जयाद्रि से बोले तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारी रक्षा का भार अब मेरे समर्थ कंधों पर है। ऐसा कहकर गुरु द्रोणाचार्य ने जयाद्रि को रक्षा के लिए चौदह हजार हाथियों के सुरक्षित घेरे में रख दिया। उन हाथियों के चहुँओर भी तीन घेरे थे। पहला अश्वों का, दूसरा साठ हजार रथों का व तीसरा बीस लाख पदाति सैनिकों का। इस प्रकार जयाद्रि की रक्षा का उत्तम प्रबंध कर गुरु द्रोणाचार्य स्वयं युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए। उधर अर्जुन ने युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम कर हर्षित चित्त से युद्ध की आज्ञा मांगी। जो युधिष्ठिर ने सहर्ष प्रदान कर दी। युद्ध प्रारंभ हो गया। अर्जुन के युद्ध कौशल को देखकर कौरव सेना पलायन की अवस्था में पहुँच गई। तब गुरु द्रोणाचार्य ने अपनी सेना में साहस का संचार किया। तभी अर्जुन ने गुरू द्रोणाचार्य के सामने आकर प्रणाम कर कहा– हे गुरुवर आप कृपा कर यहां से स्थानांतरण कर जाइये ताकि मैं शत्रु सेना का नाश कर सकूं। तब गुरू द्रोणाचार्य बोले कि बिना युद्ध किये मैं यहां से कैसे प्रस्थान कर सकता हूँ। यह सुनकर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर गुरू द्रोणाचार्य पर नौ बाण छोड़े, पर गुरू द्रोणाचार्य ने उन्हें बीच में ही नष्ट कर दिया। तब अर्जुन ने लक्षाधिक बाणों का प्रयोग कर गुरू द्रोणाचार्य पर छोड़े, पर गुरू द्रोणाचार्य ने उन्हें भी नष्ट कर दिया। यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि इस समर भूमि में गुरु शिष्य का बाण निक्षेप शोभनीय नहीं है। इससे हमने जो शत्रु नाश की योजना निश्चित की है, वह क्रियान्वित नहीं हो पा रही है। यह सुनकर अर्जुन ने अपने हाथ में असि धारण कर एक पार्श्व से आगे बढ़ना चाहा, तभी गुरू द्रोणाचार्य ने कहा कि उधर

कहां जा रहे हो। पहले मुझसे युद्ध करो। तब अर्जुन ने गुरू द्रोणाचार्य से निवेदन किया कि आप पिता तुल्य हैं। क्या यह उचित होगा कि मैं आपसे युद्ध करूं। तब अर्जुन की विनय से प्रभावित होकर गुरू द्रोणाचार्य अन्य दिशा की ओर प्रस्थान कर गये।

तब अर्जुन के वाणों से शत्रु सेना संहारित होने लगी। कौरवों की सेना त्रस्त हो उठी एवं सेना में हाहाकर का चीत्कार उठने लगा। तभी अर्जुन के सम्मुख शतायुध युद्ध करने लगा। उसने आते ही शस्त्रास्त्रों के प्रयोग से अर्जुन व श्रीकृष्ण को अग्रसर होने से रोक दिया। यह अर्जुन को असहय लगा। तब अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों के प्रयोग से शतायुध के अश्व, रथ व ध्वजा को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जब शतायुध के कर के सभी शस्त्रास्त्र नष्ट हो गये, तब उसने मन ही मन दिव्य गदा का स्मरण किया। गदा का स्मरण करते ही वह उसके हाथों में आ गई। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि इस प्रकार पग पग पर तुम प्रत्येक वीर से युद्ध करते रहोगे, तो लक्ष्य सिद्ध नहीं होगा; अतः अपने बुद्धि बल से इसका नाश करके मैं अग्रगति का मार्ग प्रशस्त करता हूँ। तब श्रीकृष्ण ने शतायुध से गदा से प्रहार करने को कहा। किन्तु जब शतायुध ने गदा से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया तो वह गदा श्रीकृष्ण के पुण्योदय से सुगंधित पुष्पों की एक सुन्दर माला बन गई। कुछ क्षण श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की शोभा बढ़ाने के बाद वह गदा पुनः शतायुध के पास आ गई व उसने उसे निष्प्राण कर दिया। शतायुध के मरण के पश्चात् अर्जुन निर्द्वन्द होकर शत्रु सेना का संहार करता हुआ निरंतर अग्रसर होता गया। तभी मध्यान्ह हो जाने पर पार्थ ने श्रीकृष्ण से कहा कि अश्व बहुत तृष्णार्त हैं, अतः पदातिक सैन्य द्वारा अनवरत युद्ध किया जावें। तब अर्जुन ने कहा कि मैं अभी अग्नि देव के दिव्य बाण से क्षण भर में ही चर्तुदिक जलमय प्रदेश स्थापित किये देता हूँ। ऐसा कहकर पार्थ द्वारा दिव्यास्त्र का निक्षेपण करते ही वहां पृथ्वी तल से पवित्र एवं निर्मल जल की

धवल धारा फूट पड़ी। जिससे सब अपनी-अपनी आवश्यकता अनुसार उस पुनीत जल को उपयोग में लेने लगे। यह देखकर व्योम से देवों ने कहा– कि जो महापुरूष अपने अद्‌भुत पराक्रम से क्षण भर में पाताल गंगा को भूतल पर ला सकता है, उसके संग युद्ध करके विजय की कामना करना मूर्खता नहीं, तो और क्या है?

इसके पश्चात् रथ आगे बढ़े व पुनः युद्ध प्रारंभ हो गया। इसके साथ ही कौरवों के सेना की विनाश लीला प्रारंभ हो गई। तभी पलायन करती हुई सेना को लक्ष्य कर दुर्योधन ने कहा कि क्या यही तुम्हारी वीरता है? दुर्योधन की इस बात को सुनकर संजयंत ने कहा कि हे राजन्! क्या आपने श्रीकृष्ण एवं पार्थ का प्रचंड रूप नहीं देखा है। महान वीर भी उनके सम्मुख जाने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं; फिर भी आप जानना चाहते हैं कि सेना क्यों पलायन कर रही है। ये अजेय वीर हैं। पार्थ की प्रशंसा सुनकर दुर्योधन उन्मत्त होकर गुरु द्रोण का तिरस्कार कर कहने लगा कि आपने यह क्या किया? पार्थ को बाधा रहित मार्ग प्रदान कर आपने हमारी सैन्य शक्ति का अपमान किया है । समझ में नहीं आता कि आपकी बुद्धि को यह क्या हो गया है। दुर्योधन के इस आक्षेप पूर्ण कथन को सुनकर द्रोणाचार्य खिन्न हो उठे व बोले कि मैं पार्थ के समकक्ष नहीं हो सकता हूँ। वह महापराक्रमी वीर है। तुम यह क्यों नहीं सोचते कि एक युवक का सामना एक वयोवृद्ध व्यक्ति कहां तक कर सकेगा। हां, तुम उसी के समान युवक हो, इसलिए पार्थ का सामना तुम्हें ही करना चाहिए। गुरु द्रोण के मुख से इस प्रकार के वचन सुनकर दुर्योधन ने एवमस्तु कहा व बोला कि अब आप केवल दर्शक बनकर देखते रहिये। ऐसा कहकर दुर्योधन पार्थ से युद्ध करने लगा। वह पार्थ से बोला कि तुम्हारा गांडीव धनुष अब तक किसी सुयोग्य वीर के सामने नहीं पड़ा है। यह सुनकर पार्थ द्विगुणित उत्साह के साथ दुर्योधन से युद्ध करने लगा। इसी समय श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख

ध्वनित किया; जिसके निनाद को सुनकर जयाद्रि का हृदय भयविह्वल हो गया तथा उसका मुखमंडल निष्तेज हो गया।

युद्ध समाप्त होने की आशंका से जब जयाद्रि अपने गुप्त स्थान से निकलकर बाहर आया, तो उसने पार्थ को बड़ी वीरता के साथ युद्ध करते देखा, उसने देखा कि पार्थ के चारों ओर विच्छिन्न नरमुंड एवं पशु शव पड़े हुए थे। उस दिवस कौरवों का ऐसा कोई भी सैनिक नहीं बचा था, जो रक्त स्नात न हो गया हो। तभी अर्जुन की दृष्टि जयाद्रि पर पड़ गई। उसे देखते ही अर्जुन क्रोधांत हो उठा व उसके नेत्रों से अग्नि वर्षा होने लगी। वह जयाद्रि से बोला कि हे नीच नराधम! तुम्हीं ने अन्यायपूर्वक वीर अभिमन्यु का बध किया है। प्रातःकाल से अब तक मैं तेरा ही अन्वेषण कर रहा था। ऐसा कहकर अर्जुन ने जयाद्रि के धनुष, रथ, अश्व एवं कवच को छिन्न-भिन्न कर डाला एवं शासन देवता प्रदत्त नाग रूपी धनुष बाण चालकर क्षण भर में ही जयाद्रि के मस्तक को उसकी देह से अलग कर दिया। जयाद्रि का छिन्न मस्तक अर्जुन की प्रेरणा से आकाश में उड़ता हुआ उसके पिता के कर में जा गिरा, जिसके अवलोकन मात्र से ही उसके पिता की भी मृत्यु हो गई। जयाद्रि के निहत होते ही पांडवों की सेना में जय जयकर होने लगी व कौरवों की सेना में हाहाकार मच गया। जयाद्रि के निहत होने से सर्वाधिक दुख दुर्योधन को हुआ, तभी अश्वत्थामा ने आकर दुर्योधन को सांत्वना प्रदान की व कहा कि मैं आपके चिर शत्रु पांडवों को युद्ध में विनष्ट किये देता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपने धनुष बाण से अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। शीघ्र ही अश्वत्थामा ने अर्जुन के धनुष की डोरी काट दी। अर्जुन अपने गुरू पुत्र की वीरता को देखकर अति प्रसन्न हुए। यदि अर्जुन चाहता तो वह ऐसी स्थिति में अश्वत्थामा को भी बंदी बना सकता था पर गुरू पुत्र समझ कर अर्जुन ने उसे उस समय क्षमा कर दिया। किन्तु अनेक वीरों को धराशायी अवश्य कर दिया। इस प्रकार युद्ध करते-करते सूर्यास्त हो जाने के

कारण युद्ध रोक दिया गया व सेनायें अपने-अपने शिविरों में चलीं गईं।

रात्रि में अस्थिर चित्त दुर्योधन पुनः गुरू द्रोणाचार्य के समीप जा पहुँचा व उनसे पुनः शिकायत की कि आप पार्थ को पूर्व में ही अग्रसर होने का मार्ग प्रदान नहीं करते; तो हमारे सैनिकों की ऐसी दुर्गति कदापि नहीं होती। इस पर गुरू द्रोणाचार्य ने उत्तर दिया कि तुम्हारी यह धारणा भ्रांत है। अर्जुन ने तो मुझे अपना गुरू एवं वृद्ध ब्राह्मण समझ कर मेरा वध नहीं किया, अन्यथा अन्य सैनिकों की भांति वह मेरी भी दुर्गति कर डालता। दुराग्रहवश अपने दोषों को अन्य पर आरोपित करने की चेष्टा करना क्या उचित है? तुम भी तो युद्ध के लिए गये थे। फिर पार्थ को तुमने क्यों मार्ग प्रदान किया। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। गुरू द्रोणाचार्य के इस उत्तर को सुनकर दुर्योधन विचलित हो उठा व फिर नम्रता पूर्वक बोला—हे गुरूवर, मेरे अपराधों को क्षमा करो। अब अनुग्रह पूर्वक कोई ऐसा उपाय करें, जिससे कि आज रात्रि में ही पांडवों का पूर्ण विनाश हो जावे। कर्ण से भी उसने ऐसा ही परामर्श किया। तत्पश्चात् रात्रि के अंधकार में ही कौरवों की सेना ने पांडवों की निद्रित सेना पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण के कोलाहल से पांडवों की सेना की निद्रा भंग हो गई। पांडवों के शस्त्रास्त्र संभालने के पूर्व ही कौरवों ने बाण वर्षा आरंभ कर दी। जिसके फलस्वरूप भील, भीम पुत्र घटक, नकुल, सहदेव, अर्जुन, शिखंडी, दृष्टद्युम्न व श्रीकृष्ण आदि बाण विद्ध हो गये। ऐसी भीषण परिस्थितियों में युधिष्ठिर युद्ध करने के लिए अग्रसर हुए, उन्होंने शीघ्र ही अनेकानेक बाणों से दुर्योधन को विद्ध कर डाला। वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दुर्योधन की इस दशा को देखकर गुरू द्रोणाचार्य युद्ध करते हुए पांडवों की सेना में प्रवेश कर गये। पांडवों की सेना को बलशाली गुरू द्रोणाचार्य ने अस्त-व्यस्त कर दिया। उसी समय प्रातःकाल हो गया। अपनी सेना का यह हाल देखकर घायल अर्जुन आगे बढ़ा

व ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर गुरू द्रोणाचार्य को पूर्ण विवश कर दिया। गुरू को विवश देखकर पार्थ गुरू द्रोणाचार्य के समीप गये एवं उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना की। पार्थ के सामने अपनी विवशता देखकर गुरू द्रोणाचार्य लज्जित हुए एवं युद्ध से उदासीन हो गये।

इसके पश्चात् पार्थ ने अपने सारथी को कर्ण, दुर्योधन एवं अश्वत्थामा आदि वीरों की ओर रथ संचालन का आदेश दिया। गुरू द्रोणाचार्य की दुर्गति देखकर दुर्योधन विचलित हो गया। तब कर्ण ने दुर्योधन को सांत्वना प्रदान की एवं स्वयं अर्जुन से युद्ध करने लगा। दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ। बाणों की अनवरत वर्षा से आकाश मंडल आच्छादित हो गया। परन्तु शीघ्र ही अर्जुन ने कर्ण के रथ एवं धनुष को नष्ट कर दिया। उधर घायल गुरू द्रोणाचार्य दृष्टद्युम्न से युद्धरत थे।

उन्होंने उसके रथ, ध्वजा, व अश्व को नष्ट कर दिया और पांडवों के बीस हजार क्षत्रिय राजाओं को नष्ट कर दिया। उन्होंने एक लाख सैनिकों, अनेक हस्तियों, अश्वों एवं रथों को भी नष्ट कर दिया। तभी आकाश वाणी हुई– हे द्रोण! तुम इस प्रकार अपार हिंसा द्वारा पापार्जन क्यों कर रहे हो। इन राजाओं से तुम्हारा क्या विरोध है। तुम तो व्यर्थ ही इस विवाद में पड़े हो। हिंसा का त्याग करो एवं अपने हृदय को पवित्र कर स्वर्ग का आतिथ्य स्वीकार करो। यह आकाशवाणी सुनकर भीम ने भी उन्हें युद्ध का त्याग करने को कहा। तब गुरू द्रोणाचार्य ने भीम से कहा– ऐसा कदापि नहीं हो सकता। जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक कौरवों के लिए लड़ता रहूँगा। यह कहकर द्रोणाचार्य पुनः दृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। दूसरी ओर अश्वत्थामा भीम पुत्र घटुक के साथ युद्ध कर रहा था। अश्वत्थामा ने घटुक को निहत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। घटुक की मृत्यु से पांडवों में शोक छा गया। परन्तु तभी श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा कि कहीं रणक्षेत्र में भी शोक किया जाता है। शोकमग्न न होकर तुम्हें उसका प्रतिशोध लेना चाहिए।

तभी भीम अश्वत्थामा को संबोधित कर बोला कि पहले तो हमने तुम्हें गुरु पुत्र समझकर अनाहत मुक्त कर दिया था, पर अब तेरी रक्षा हो पाना असंभव है। ऐसा कहकर भीम ने अश्वत्थामा पर गदा से तीव्र प्रहार किया; जिससे अश्वत्थामा वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा। भीम ने उसके हस्ती का भी संहार कर दिया। इसी समय कुछ लोगों ने युधिष्ठिर के पास जाकर निवेदन किया कि द्रोणाचार्य ने आज हमारी सेना का काफी संहार किया है; अतः उनके अवरोध का कोई उपाय करना चाहिए। हमारी दृष्टि में एक उपाय है। गुरू द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा से अत्यधिक स्नेह करते हैं। यदि हम प्रचारित कर दें कि अश्वत्थामा निहत हो गया, तो निश्चित ही गुरू द्रोण युद्ध स्थगित कर देंगे व इस तरह अपनी सेना की रक्षा हो जायेगी।

यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि तुम लोग मुझे असत्य कहने के लिए प्रेरित कर रहे हो, यह असंभव है। मिथ्या कथन करना महान पाप होता है। इससे कर्मों का बंध होकर दुख की ही प्राप्ति होती है। किन्तु स्वजनों के अत्यधिक आग्रह करने पर अंत में विवश होकर युधिष्ठिर ने गुरु द्रोण के पास जाकर कहा कि अश्वत्थामा निहत हो गया है। वह कुछ आगे कहते कि इसके पहले ही द्रोणाचार्य का धैर्य विलीन हो गया। उनके हाथ से धनुष छूट गया व नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। तभी युधिष्ठिर ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि जो अश्वत्थामा निहत हुआ है; वह मनुष्य नहीं हस्ती है। इस हस्ती का नाम भी अश्वत्थामा था। यह सुनकर गुरु द्रोण कुछ शांत हुए। इतने में अवसर पाकर दृष्टद्युम्न ने खड्ग के प्रहार से द्रोणाचार्य का मस्तक विच्छिन्न कर दिया, जिससे वे महाप्रयाण कर गये। द्रोणाचार्य के निहत होने से दोनों पक्षों में उदासी छा गई एवं सभी को गहन विषाद हुआ। अर्जुन को तो इस घटना का इसलिए भारी खेद हुआ कि उसके ही पक्ष के एक योद्धा ने अन्यायपूर्वक गुरु द्रोणाचार्य की इहलीला समाप्त कर दी। किन्तु इस बड़ी घटना के बाद भी युद्ध

अनवरत चलता रहा। युधिष्ठिर व शल्य के बीच युद्ध चल रहा था। अंत में युधिष्ठिर शल्य के मस्तक को धड़ से विच्छिन्न करने में समर्थ हुए। उधर अर्जुन ने भी कई प्रख्यात योद्धा राजाओं को निहत कर दिया। अब यह भीषण युद्ध अहर्निश चलने लगा। जब किसी को निद्रा की प्रबल इच्छा होती, तो वह कुछ क्षण के लिए तन्द्रालु होकर विश्राम करके लौट आता। इस प्रकार युद्ध प्रारंभ हुए सत्रह दिवस व्यतीत हो गये।

युद्ध का अठारहवां दिन प्रारंभ होने पर पुनः दोनों पक्षों में घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। इस बार दोनों पक्षों की सेनाओं में मकर व्यूह की रचना हुई। खड्ग चमकने लगे, नरसंहार होने लगा। सारा युद्ध-स्थल रक्तरंजित हो रहा था। इसी समय भीम अपने रथ पर सवार होकर आया व कौरव सेना का विध्वंस करने लगा। एक ओर अर्जुन व कर्ण के बीच युद्ध चल रहा था। जहां अर्जुन ने कर्ण के धनुष को भंग कर दिया था। कर्ण भी कम नहीं था। अतः उसने भी पूर्ण शक्ति से अर्जुन का प्रतिरोध किया एवं उसके छत्र को नष्ट कर दिया। तभी अर्जुन ने कर्ण से कहा कि तुम कुन्ती पुत्र होने के नाते मेरे ज्येष्ठ भ्राता हो, इस तथ्य को समस्त संसार जानता है। लेकिन युद्ध में परस्पर सहोदर का कोई संबंध नहीं होता। अतः अब तुम धैर्य पूर्वक मेरे भीषण प्रहारों का प्रतिरोध करो। मैंने इसके पूर्व तुम्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई किन्तु आज मैं तुम्हें निष्कृति नहीं दूंगा। इसीलिए या तो युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ, नहीं तो रणक्षेत्र को त्याग कर पृष्ठ प्रदर्शन करो। तब कर्ण ने भी पार्थ को ऐसा ही कटु उत्तर दिया व कहा कि स्वयं अपने मुख से अपना गुणगान क्या शोभनीय है। क्यों व्यर्थ विवाद कर रहे हो। अब मेरे कठोर प्रहारों को सहन करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।

इसी समय श्रीकृष्ण ने कर्ण को आकर सूचना दी कि उसका पुत्र विश्वसेन यमपुर को प्रस्थान कर गया है। इस दुखद समाचार को सुनते ही कर्ण शोकाकुल हो उठा व

विचार करने लगा कि यह कैसा अनर्थ है कि तुच्छ राज्य के लिए भ्रातागण एक दूसरे के लिए यमदूत सिद्ध हो रहे हैं। कर्ण को शोकमग्न देखकर दुर्योधन ने आकर उसे सांत्वना प्रदान की व कहा कि यह शोक प्रकट करने का समय नहीं है। हमें धैर्य धारण कर अर्जुन को निहत कर स्वपक्ष की विजय का मार्ग प्रशस्त करना है। यह सुनकर कर्ण साहस पूर्वक पुनः पार्थ से युद्ध करने लगा। दोनों धनुर्धरों की अनवरत बाण वर्षा से समस्त व्योम मंडल आच्छादित हो गया। युद्ध की विभीषिका को देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रोत्साहित किया। तब पार्थ ने द्विगुणित उत्साह से युद्ध कर कर्ण के धनुष बाण को नष्ट कर दिया। इसके पश्चात् पार्थ ने अपने धनुष पर एक दिव्यास्त्र का स्थापन किया एवं उस दिव्यास्त्र के रक्षक देव का स्मरण कर उसे कर्ण के ऊपर निक्षेपित कर दिया जिससे कर्ण का मस्तक भूलुण्ठित हो गया एवं क्षण भर में ही कर्ण का महाप्रस्थान हो गया।

चंपा नगरी के नृपति, अमित पराक्रमी, महारथी वीर कर्ण के निहत होने का समाचार जब कौरवों के पास पहुंचा तो उनके नेत्रों तले अंधेरा छा गया। सभी शोक में विह्वल होकर विलाप करने लगे व सोचने लगे कि इस युद्ध में भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य, शल्य व कर्ण जैसे योद्धाओं के मारे जाने के बाद अब हमें युद्ध की बागड़ोर अपने हाथों में ले लेनी चाहिए। इसके पश्चात् दुःशासन आदि कौरव समर भूमि में उपस्थित होकर युद्ध करने लगे। किन्तु एकाकी भीम ने ही उन सब वीरों का प्रतिकार किया एवं सबको निहत कर यमपुर का अतिथि बना दिया। भीम के इस भीषण रण तांडव को देखकर दर्शकगण आश्चर्य चकित रह गये थे।

जब दुर्योधन को यह सूचना मिली कि भीम ने उसके अनुजों का वध कर डाला है, तो वह स्तब्ध रह गया, मानों उस पर वज्रपात हो गया हो। चहुँओर उसे अंधकार ही अंधकार अनुभूत हो रहा था। रथारूढ़ होकर उसने उस

स्थान की ओर गमन किया; जहां उसके मृत भ्राताओं के शव लुंठित थे। उनकी वीभत्स स्थिति को देखकर उसको रोमांच हो आया। तब दुर्योधन के सारथी ने करबद्ध प्रार्थना कर कहा—हे महाराज! अब युद्ध करना उचित नहीं है। आप वैमनस्य के भाव का परित्याग कर अपने नगर लौट चलिये। सारथी के इस परामर्श को सुनकर दुर्योधन को क्रोध आ गया व वह सारथी से रोष पूर्ण स्वर में बोला—कायर! यह क्या अनर्गल प्रलाप कर रहा है। इस पर सारथी ने उत्तेजित होकर कहा—आपने ही पांडवों से शत्रुता कर इस आपत्ति को आमंत्रित किया है। समस्त कुल के सर्वनाश का कारण आप ही हैं। शताधिक भ्राताओं का प्राण नाश हो गया है। इतनी विशाल सेना विनष्ट हो गई है। सभी बड़े-बड़े वीर योद्धा काल कवलित हो गये हैं। आप दुराग्रह क्यों नहीं त्यागते। तब दुर्योधन ने स्पर्धा पूर्वक कहा— तो फिर अब देख मैं क्या करता हूँ। मैं अकेला ही पांडवों का विनाश कर दूंगा। यह निश्चित है।

यह कहकर दुर्योधन स्वयं पांडवों से युद्ध करने लगा। प्रबल उत्साह से दोनों ओर की सेनायें युद्ध करने लगीं। सैनिक परस्पर शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने लगे। युधिष्ठिर भद्र नरेश के साथ एवं भीम दुर्योधन से युद्ध करने लगा। नकुल कर्ण के तीन पुत्रों के साथ युद्ध करने लगा। इसी बीच दुर्योधन ने भीमसेन के धनुष को नष्ट कर दिया। तब भीमसेन ने शक्ति धारण कर उसी शक्ति से दुर्योधन के वक्षस्थल पर ऐसा प्रचंड आघात किया कि दुर्योधन वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा। जब उसे पुनः चैतन्यता प्राप्त हुई, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीमसेन पर प्रबल बाण वर्षा करने लगा एवं उसने भीम के कवच को विछिन्न कर दिया। अपनी दुर्गति होते देखकर भीम को क्रोध आ गया। उसने घमासान युद्ध कर कुछ ही समय में बीस हजार सैनिक, आठ हजार रथ, आठ हजार हस्ती एवं हजारों अश्व नष्ट कर दिये। यह देखकर उसके भय से शत्रु कांपने लगे। तभी दुर्योधन को सम्मुख देखकर युधिष्ठिर ने उससे कहा

कि क्यों व्यर्थ में हजारों सैनिकों को हताहत करने पर तुले हुए हो। उचित तो यह है कि मेरी अधीनता स्वीकार कर मुझसे संधि कर लो एवं पूर्ववत राजा बनकर सुख पूर्वक आनंदोपभोग करो। ऐसा करने से तुम्हारा अपयश भी नहीं होगा एवं तुम्हारी कीर्ति में भी वृद्धि होगी। तब दुर्योधन क्रोधित होकर युधिष्ठिर से बोला कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता है। मैं अकेला ही तुम सबको नष्ट करने में समर्थ हूँ। इसलिए व्यर्थ का वार्तालाप न कर रणस्थल में पदार्पण करो। ऐसा कहकर दुर्योधन ने युधिष्ठिर पर खड्ग से प्रहार किया; किन्तु युधिष्ठिर ने उसका योग्यता पूर्वक प्रतिकार किया। उसी समय भीम वहां पहुँच गया। उसकी गदा विद्युत किरण की तरह चमक रही थी। योग्य अवसर पाकर भीम ने दुर्योधन के मस्तक पर उस गदा से सशक्त प्रहार कर दिया; जिससे दुर्योधन आमूल विछिन्न वृक्ष की भांति वहीं पृथ्वी पर धरासायी हो गया।

तब दुर्योधन जीवन से हताश होकर क्षीण स्वर में बोला–'क्या कौरवों की सेना में अब ऐसा एक भी वीर नहीं शेष रहा जो पांडवों का सर्वनाश करने में समर्थ हो। तब समीप खड़े एक सैनिक ने दुर्योधन से कहा–'क्यों नहीं, गुरू द्रोणाचार्य का वीर पुत्र अश्वत्थामा अभी जीवित है। यह पांडवों का विनाश कर सकता है। अपने पिता की भांति वह महापराक्रमी व अजेय है।'

अश्वत्थामा ने जब सुना कि दुर्योधन मृत्यु शैया पर अंतिम क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है। तब उसे मार्मिक पीड़ा हुई। वह जरासंध के पास गया व बोला कि आज दुर्योधन भी अपने दस हजार सैनिकों के साथ धराशायी हो गया है। जरासंध यह सुनकर व्याकुल हो उठा, किन्तु यह सोचकर कि यह शोक करने का समय नहीं है, उसने अश्वत्थामा को पांडवों के साथ युद्ध करने का आदेश दिया। जरासंध की आज्ञा पाकर वह घायल दुर्योधन के पास गया व बोला–'हे वीर शिरोमणि आपके अभाव में मुझे समस्त संसार शून्वयत प्रतीत हो रहा है। आपकी उदारता के कारण

ही ब्राह्मणगण स्वच्छंदता पूर्वक राज्य सुखों का उपभोग किया करते थे। परन्तु अब हमारा भला कौन सम्मान करेगा? यह सुनकर दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा–मैं तुम्हारे मस्तक पर वीर पट्टक बांध रहा हूँ। तुम फिर युद्ध क्षेत्र में जाकर शत्रु सैन्य का संहार कर सबको यमराज के घर भिजवाने की व्यवस्था कर दो। उधर जरासंध ने भी राजा मधु के मस्तक पर-वीर पट्टक बांध कर उसे पांडवों से युद्ध करने भेजा। तब दोनों वीरों ने अति उत्साहित होकर पांडवों की सेना को घेर लिया। तभी अश्वत्थामा ने माहेश्वरी विद्या का स्मरण किया। जब वह विद्या हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए आई, तो उसके प्रखर प्रभाव को पांडवों की सेना में कोई सहन नहीं कर सका। समस्त पांडव सेना अस्त-व्यस्त हो गई। अश्वत्थामा ने भी बड़ी संख्या में पांडवों की सेना के हस्ती, अश्वों, रथों एवं पदातिक सैनिकों को नष्ट कर दिया और अंत में पांचाल देश के राजा का मस्तक विच्छिन्न कर दिया एवं उसे दुर्योधन के पास ले गया। पांचाल राजा के मस्तक को देखकर दुर्योधन कुछ संतुष्ट हुआ, फिर वह बोला–क्या संसार में ऐसा कोई शाक्तिशाली नहीं जो पांडवों को निहत कर सके। जब तक क्रूर पांडव जीवित हैं, तब तक अन्य राजाओं के संहार से कोई विशेष लाभ नहीं है। संहार तो पांडवों का होना चाहिए जो समस्त अनर्थ की जड़ हैं।

जब पांडवों को पांचाल सेना के नरेश व पांचाल सेना को अश्वत्थामा के द्वारा निहत हो जाने का समाचार मिला, तो उन्हें गंभीर विषाद हुआ। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि हमें शोकमग्न होकर समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। यदि पांचाल नरेश परलोक गमन कर गये तो क्या हुआ, हम सभी तो अभी जीवित हैं अभी जरासंध को निहत करना है। हम युद्ध रूपी महासागर को उत्तीर्ण कर तट पर पहुँचने ही वाले हैं। उधर जरासंध व इधर यादवों व पांडवों की सेनायें अपनी-अपनी व्यूह रचनाओं के साथ आमने-सामने थीं। उसी समय आकाश स्थित देवों ने श्रीकृष्ण को संबोधित

करते हुए कहा–'हे केशव! अब आप लोगों को किंचित भी विलंब करना उचित नहीं है। प्रतिपक्षी नरेशों में अब केवल मगध सम्राट जरासंध ही तो जीवित है। उसकी भी भवलीला समाप्त कर डालिये। आपके उत्कर्ष का योग्य अवसर उपस्थित हो गया है।' इस आकाशवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण ने जरासंध का युद्ध के लिए आह्वान किया। तभी जरासंध ने अपने एक चतुर सेनानायक से युद्ध के लिए समागत वीरों का उसे परिचय देने को कहा–तब वह जरासंध से बोला–यह गरूण ध्वज वाले श्वेत घोड़ों के साथ श्रीकृष्ण का रथ है। बैल की पताका वाला रथ नेमि का है। इसमें हरे रंग के घोड़े जुते हुए है। रीठा के समान वर्ण वाले घोड़ों से जुता रथ जिस पर तालकी ध्वजा है, वह बलदेव का है। वानर ध्वजा वाला कृष्ण वर्ण के घोड़ों से जुता रथ सेनापति का है। नीले गर्दन वाले घोड़ों का रथ युधिष्ठिर का है। श्वेत व वेगवती घोड़ों वाला हाथी की ध्वजा सहित रथ अर्जुन का है। नीले घोड़ों का रथ भीम का है व सेना के बीच लाल रंग के घोड़ों व सिंहध्वज वाला रथ समुद्रविजय का है।

इस प्रकार विरोधी सैन्य बल का परिचय प्राप्त कर जरासंध ने अपना रथ यादव सेना की ओर मोड़ा। जरासंध के सभी पुत्र उसके साथ थे। जरासंध का बड़ा बेटा कालयवन मलय हाथी पर सवार होकर युद्ध करने लगा। कालयवन ने कितने ही वीरों को युद्ध क्षेत्र में मार गिराया। यह देखकर सारण ने क्रोधित होकर एक ही प्रहार से कालयवन का मस्तक छेद कर उसे मार डाला। जरासंध के शेष पुत्रों को श्रीकृष्ण ने यमलोक पहुँचा दिया। तभी श्रीकृष्ण व जरासंध आमने-सामने आकर युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण ने एक अग्नि बाण का प्रयोग कर जरासंध की समस्त सेना में अग्नि दाह उत्पन्न कर दिया। तब अर्धचक्री जरासंध ने अग्निबाण के प्रभाव को नष्ट करने के लिए जलद बाण प्रयोग किया एवं अग्नि को निर्वापित कर अपनी सेना को आपत्ति से मुक्त कर दिया। जब जरासंध ने

नागपास का प्रयोग किया, तो श्रीकृष्ण ने गरुणास्त्र का प्रयोग कर उसके प्रभाव को विनष्ट कर दिया। इसके पश्चात् जरासंध ने बहुरुपिणी, स्तंभनी, चक्रिणी एवं शूला आदि बहुत सी विद्याओं का स्मरण कर एवं उनके आगमन पर उन्हें श्रीकृष्ण की सेना में प्रवेश कराकर संपूर्ण शत्रु सेना को चेतनाहीन करा दिया। तब श्रीकृष्ण ने णमोकार महामंत्र के प्रभाव से उन विद्याओं के प्रभाव को नष्ट कर दिया। जब जरासंध ने भयंकर वर्षा करने वाले संवर्तक अस्त्र को छोड़ा, तो श्रीकृष्ण ने उसका निवारण महाश्वसन नामक अस्त्र को छोड़कर कर दिया। जब जरासंध ने वायव्य अस्त्र छोड़ा, तो श्रीकृष्ण ने अंतरिक्ष अस्त्र से उसका निवारण कर दिया। जब जरासंध ने आग्नेय बाण छोड़ा तो श्रीकृष्ण ने वारुणास्त्र से उसे निष्क्रिय कर दिया। जब जरासंध ने वैरोचन अस्त्र छोड़ा, तो श्रीकृष्ण ने उसके प्रभाव को माहेन्द्र अस्त्र से निष्क्रिय कर दिया। इसी प्रकार जरासंध के राक्षस बाण को श्रीकृष्ण ने नारायण अस्त्र से, उसके तामस अस्त्र को भास्कर अस्त्र से तथा उसके अश्वग्रीव अस्त्र को अपने ब्रह्म शिरस अस्त्र से उसका निराकरण कर दिया।

जब जरासंध के सभी प्रयास विफल हो गये तो उसने अपना धनुष फेंक दिया एवं यक्षों द्वारा रक्षित चक्ररत्न का चिंतवन किया। चक्र रत्न तत्क्षण ही जरासंध के हाथों में आ गया। वह चक्ररत्न सूर्य के समान तेजस्वी था। उससे चतुर्दिक प्रकाशमयी किरणें विकीर्ण हो रही थीं। जरासंध ने उसके आगमन पर सर्वप्रथम उसकी पूजा की एवं तत्पश्चात उसको श्रीकृष्ण के ऊपर चला दिया। उस चक्ररत्न की प्रखर किरणों को कोई सहन नहीं कर सकता था। फलतः सभी भयभीत होकर पलायन करने लगे। इसके पहले उसे नष्ट करने के लिए श्रीकृष्ण के पक्ष के राजाओं ने अनेक चक्र छोड़े पर सब निष्फल हुए। तब वहां नैमिनाथ तीन ज्ञान के धारी निश्चल रूप से श्रीकृष्ण के पास खड़े रहे। जब चक्ररत्न बिना रूके धीरे-धीरे श्रीकृष्ण व नेमि प्रभु की

ओर आया, तो उस चक्ररत्न ने नेमि प्रभु के साथ-साथ श्रीकृष्ण की परिक्रमा दी एवं बाद में श्रीकृष्ण के दाहिने हाथ में स्थित हो गया। उसी समय आकाश में दुंदुभि बजने लगी एवं आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी व देवता कहने लगे कि यह श्रीकृष्ण के रूप में नौवां नारायण प्रकट हुआ है। यह सब देखकर यादवों की सेना ने हर्षोल्लास के साथ जय-जय ध्वनि की। तब यह सब देखकर जरासंध विचार मग्न होकर सोचने लगा कि आज मेरा पौरूष खंडित हो गया। तब यह सब कहकर वह लक्ष्मी को धिक्कारने लगा। तभी जरासंध ने श्रीकृष्ण से चक्र चलाने को कहा। तब श्रीकृष्ण ने जरासंध से कहा– हे जरासंध! यदि तुम चाहो तो मैं अब भी तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ। अपनी पराजय स्वीकार कर लो तो परस्पर संधि स्थापित हो जायेगी। तुम्हारे राज्य सुख में किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया जायेगा।

श्रीकृष्ण के ये मर्मभेदी वचन सुनकर जरासंध ने गर्वोक्ति पूर्वक कहा– तुम यह तथ्य क्यों भूल रहे हो कि तुम एक गोपालक हो एवं मैं एक राजा हूँ। स्वयं मुझे नमस्कार करने के विपरीत तुम मुझे ही नमस्कार करने को कहते हो। यह सर्वथा असंभव है। क्या हुआ, जो मेरे द्वारा निक्षिप्त चक्ररत्न तुम्हारे हस्तगत हो गया। उसका उपयोग करना तुम क्या जानो। चक्री तो कुम्हार भी कहलाता है। परन्तु युद्ध में उस चक्र की क्या सार्थकता हो सकती है। मैं तुम्हें सभी यादवों, चक्र व राजाओं के साथ शीघ्र ही समुद्र में फेंकता हूँ। तब श्रीकृष्ण ने जरासंध का चक्र जरासंध के ऊपर ही चला दिया। जिसने शीघ्र ही जरासंध के मस्तक को विछिन्न कर दिया व उसके वक्षस्थल को चीर डाला। यह देखकर देवों ने आकाश से जयध्वनि कर पुष्प वर्षा की। तभी श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख फूंका। नेमिनाथ, सेनापति व अर्जुन आदि ने भी अपने-अपने शंख फूंककर युद्ध में विजयश्री की घोषण की। तब सभी विरोधी सेना श्रीकृष्ण की आज्ञाकारी हो गई।

दुर्योधन भी वहीं एक स्थान पर धराशायी था एवं उसका अंतिम क्षण सन्निकट था। उसे ऐसी विपन्नावस्था में देखकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा–'हे बंधु! तुम्हारे जीवन का यह अंतिम मुहूर्त है अब दयामयी जैनधर्म का स्मरण करो, द्वेष की भावना को त्याग कर अपने हृदय को पवित्र कर लो। धर्म के ही प्रभाव से जन्म-जन्मांतर में जीवों को सुख प्राप्त होता है। इसलिए धर्म की ओर अपनी प्रवृत्ति उन्मुख करो। इसी मार्ग का अनुसरण करो। इसी मार्ग का अनुसरण करने से तुम्हारा कल्याण होगा। परन्तु दुरात्मा दुर्योधन को श्रीकृष्ण के ये वचन कर्णप्रिय नहीं लगे। वह बोला– 'तुम मेरी इस प्रकार दुर्गति को देखकर प्रफुल्लित मत होना। मेरा मरण हो ही नहीं सकता। तुम निश्चित समझ लो कि तुम सभी का सर्वनाश मेरे ही द्वारा होगा। तुम मुझे चाहे जितना भी परामर्श दो, मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता।' दुर्योधन के इस अप्रिय उत्तर को सुनकर श्रीकृष्ण ने निश्चित कर लिया कि यह घोर पापात्मा है। तभी तो जीवन के अंतकाल में भी धर्म का उपदेश इसे रूचिकर प्रतीत नहीं हो रहा है। इसके पश्चात् दुर्योधन ने अशुभ लेश्या से मृत्यु का आलिंगन किया एवं पाप बंध के कारण दुर्गति को प्राप्त हुआ। ऐसा पांडव पुराण कथन करता है। किन्तु वहीं दूसरी ओर हरिवंश पुराण लिखता है कि दुर्योधन, कर्ण, गुरु द्रोणाचार्य एवं दुःशासन ही युद्ध में जीवित बचे थे। उन सभी ने युद्ध के पश्चात् प्रायश्चित रूप संसार से विरक्त होकर विदुर मुनिराज के पास दीक्षा ग्रहण कर ली थी। वे सभी मुनि बन कर तपस्या करने लगे थे। कर्ण ने भी सुदर्शन उद्यान में विराजमान दमवर मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ले ली थी।

दूसरे दिन सुभटों के घाव ठीक किये गये व जरासंध आदि सभी मृत व्यक्तियों की चंदन, अगुरू आदि सुंगधित द्रव्यों से दाह क्रिया सम्पन्न हुई। जरासंध आदि का भी सम्मानपूर्वक दाह संस्कार किया गया। एक दिन जब श्रीकृष्ण सभा मंडप में बैठे थे, तभी अनेक विद्याधारियां वेगवती

नागकुमारी के साथ वहां पहुँच कर कहने लगीं कि आप लोगों को गुरुजनों ने जो आशीर्वाद दिये थे, वे सब आज सफल हो गये। इधर आप लोगों ने जरासंध पर तो उधर वसुदेव ने सभी विद्याधरों पर विजय प्राप्त की है। अतः वसुदेव ने ज्येष्ठ जनों के चरणों में प्रणाम व पुत्रों के प्रति आलिंगन का संदेश कहा है। इतना कहते ही वसुदेव विजित विद्याधरों ने आकाश मार्ग से आकर बलदेव व श्रीकृष्ण को नमस्कार किया व अनेक उपहार उन्हें भेंट किये। जरासंध के मारे जाने पर यादवों ने जहां खुशी से नृत्य किया था, उस स्थान को आनंदपुर कहा जाने लगा। इसके बाद यहां अनेक जैन मंदिर भी निर्मित किये गये।

तदनंतर श्रीकृष्ण ने शेष भरत क्षेत्र को जीता तथा वे कोटिशिला की ओर गये। कोटिशिला से करोड़ों मुनि मोक्ष गये थे, इसीलिए उसे कोटिशिला कहते हैं। श्रीकृष्ण ने वहां कोटिशिला की पूजा की व उस शिला को चार अंगुल ऊपर उठाया। तत्पश्चात श्रीकृष्ण तीन खंड़ के अधिपति होकर राजकीय उत्सव व समारोह के साथ उल्लासपूर्वक अपनी सेना सहित द्वारिकापुरी में प्रविष्ठ हुए। वहां सभी राजाओं ने श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। तभी जरासंध के एक मंत्री ने जरासंध के दूसरे पुत्र सहदेव को श्रीकृष्ण की शरण में सौंप दिया। तब श्रीकृष्ण ने अपनी महत्ता प्रदर्शित कर उदारता से कार्य किया व सहदेव को उसके राज सिंहासन पर अभिसिक्त कर उसे मगध देश का राजा बना दिया। सत्पुरुषों में शत्रुता की भावना तभी तक रहती है, जब तक कि उनका शत्रु नम्र नहीं हो जाता। शत्रु के नम्र होते ही शत्रुता स्वयं समाप्त हो जाती है। वीर पुरुष पांडवों के लिए श्रीकृष्ण ने उनका प्रिय राज्य हस्तिनापुर दे दिया। राजा रुधिर के नाती रुक्मनाभ को उन्होंने कौशल नरेश बना दिया। अपने शेष साथियों को भी उन्होंने यथायोग्य स्थानों का राजा बनाकर सबको खुशी-खुशी विदा कर दिया।

सुदर्शन चक्र, सारंग धनुष, सौनंदन खड़ग, कौमुदी

गदा, अमोघमूल शक्ति, पांचजन्य शंख, कौस्तुभ मणि ये श्रीकृष्ण के सात रत्न थे। श्रीकृष्ण की आयु 1000 वर्ष की थी। उनके शरीर का उत्सेध 10 धनुष था। उनके शरीर का वर्ण नील कमल सदृश्य था। उनके सात रत्नों की देवता रक्षा करते थे। रूक्मणि, सत्यभामा, जाम्बवती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गांधारी, गौरी एवं प्रिया पद्मावती ये उनकी आठ पटरानियां थीं। श्रीकृष्ण की कुल 16000 रानियां थीं। 16000 नरेश उनकी सेवा करते थे। वहीं बलदेव के अपराजित नामक दिव्य हल, दिव्य गदा, दिव्य मूसल, दिव्य शक्ति व दिव्य माला ये पांच रत्न थे। बलदेव के 8000 रानियां थीं।

पांडवगण अपनी सेना के साथ हस्तिनापुर चले गये। जहां वहां की प्रजा ने उनका आत्मीय स्वागत किया। वे राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। वे सर्वरूपेण वैभव से सम्पन्न एवं परम आनन्दित थे। वहां की प्रजा शीघ्र ही दुर्योधन को भूल गई। जिन पांडवों ने शत्रुओं का विनाश कर विजय यश प्राप्त किया, व इन्द्र के समतुल्य ऐश्वर्यशाली हुए। संसार के लिए भयनाशक सिद्ध हुए एवं धर्म के धारक हुए, उन पांडवों की जय हो।

द्रौपदी का हरण व वापिसी

एक बार हस्तिनापुर में राज्य सभा के दौरान नारद जी पधारे। युधिष्ठिर नारद जी को अंतःपुर की ओर ले गये। उस समय द्रौपदी शृंगार करने में लीन थी। उसने नारद जी को नमस्कार नहीं किया। नारद जी इसे अपना तिरस्कार समझ कर वहां से चले गये। वे प्रतिशोध लेने की सोचकर द्रौपदी को दुखित करने के निर्णय पर पहुँचे। जब नारद जी को संपूर्ण जम्बूद्वीप में कोई परस्त्री रत राजा नहीं मिला, तब वे घातकीखंड द्वीप की अमरकंकापुरी के राजा पद्मनाभ के पास पहुँचे। यह राजा स्त्री लम्पट था। राजा पद्मनाभ ने नारद जी को अपना रनिवास दिखाकर पूछा कि क्या इससे भी सुन्दर स्त्रियां कहीं पर हो सकतीं हैं। तब नारद जी ने द्रौपदी का एक सुन्दर चित्र उस राजा को उपहार स्वरूप भेंट किया व द्रौपदी के रूप-लावण्य का वर्णन विस्तार से किया। इससे राजा पद्मनाभ के मन में द्रौपदी के प्रति लालसा जाग गई। तब राजा पद्मनाभ ने नारद जी से निवेदन किया कि वह मुझे कैसे प्राप्त होगी? इतना सुनकर नारद जी वहां से चले गये।

तब पद्मनाभ ने पहले द्रौपदी प्राप्ति की इच्छा से संगम नामक देव को सिद्ध किया। जब वह संगम देव प्रकट हो गया, तब राजा ने उससे द्रौपदी को लाने को कहा। वह देव शीघ्र ही व्योम मार्ग से हस्तिनापुर आ गया व सुप्त अवस्था में द्रौपदी का हरण कर निद्रितावस्था में ही उसे पद्मनाभ के महलों में ले आया। उसे निद्रित अवस्था से बाहर लाने के लिए राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी से कहा– कि हे विश्वसुन्दरी! निद्रा त्याग कर अपने शरीर को वस्त्रों से ढक लो। वह द्रौपदी के अप्रतिम सौंदर्य को देखकर मदहोश सा हो गया था। द्रौपदी ने जब पुनः सोने का प्रयास किया, तो राजा पद्मनाभ द्रौपदी से पुनः बोला–मैं यहां का राजा पद्मनाभ हूँ, आपकी प्राप्ति के लिए घोर दुख सहन कर आपको प्राप्त किया है। अब आप प्रसन्न होवें व यहीं सुखपूर्वक रहें व मेरी कामपीड़ा को शांत करने का कष्ट करें।

द्रौपदी उस राजा की इन बातों को सुनकर अपने को असहाय समझकर रोने लगी व सोचने लगी कि यदि मुझे अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण भी देना पड़ें, तो मैं सहर्ष दे दूंगी। पर मैं इस पापी के साथ नहीं रहूँगी। तब द्रौपदी ने साहस बटोरकर उस पद्मनाभ से कहा– 'रे अधम! क्या तुझे नहीं मालूम कि मेरे रक्षक पांच शूरवीर पांडव हैं। बलदेव व श्रीकृष्ण मेरे भाई हैं। धनुर्धारी अर्जुन मेरे पतिदेव हैं। देवर भीम अतिशय वीर हैं व नकुल व सहदेव यमराज के समान हैं। समस्त पृथ्वी पर थल व जल की बाधा बिना उनके रथ विचरण करते हैं। इसलिए तेरा भला इसी में है कि तू मुझे पांडवों के पास वापिस भिजवा दे। अन्यथा तुम्हारा क्या होगा? तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। जब इतना कहने पर भी पद्मनाभ वहां से नहीं गया, तो द्रौपदी ने कहा– कि हे राजन्! यदि मेरे स्वजन एक माह के भीतर यहां नहीं आते हैं? तो फिर तुम अपनी इच्छानुसार कार्य करना। इतना कहने के बाद द्रौपदी ने अर्जुन के दर्शन न होने तक आहार का त्याग कर दिया। द्रौपदी के यह वचन सुनने के बाद पद्मनाभ वहां से चला गया। फिर द्रौपदी निश्चिंत होकर रहने लगी व अपने पति की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर प्रातःकाल होने पर द्रौपदी हरण की सूचना से संपूर्ण हस्तिनापुर में खलबली गच गई। इसी बीच एक अपरिचित व्यक्ति ने द्वारिका में श्रीकृष्ण को द्रौपदी हरण की सूचना दी। तब श्रीकृष्ण ने सेना को युद्ध के लिए तैयार कर लिया। तभी नारद द्रौपदी की हालत से दुःखी होकर पश्चाताप करने लगे व सीधे द्वारिका श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। उन्होंने श्रीकृष्ण को द्रौपदी हरण का सारा वृतांत विस्तार से बता दिया व फिर श्रीकृष्ण से बोले कि सेना को तैयार करना व्यर्थ है। घातकीखंड द्वीप यहां से पहुँचा ही नहीं जा सकता। तब श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर जाकर विस्तार से द्रौपदी के हरण की घटना से उन्हें अवगत कराया और बतलाया कि द्रौपदी घातकीखंड द्वीप की अमरकंकापुरी नगरी में राजा पद्मनाभ के यहां हैं। वह वहां अत्यन्त दुःखी है व उसने शीलव्रत

धारण कर भोजन का भी त्याग कर दिया है। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण व पांडव सागर तट पर पहुँचे व वहां तीन उपवास का व्रत रखकर व्रतोद्यापन द्वारा समुद्राधिपति स्वस्तिक देव को प्रसन्न कर लिया। उस देव ने श्रीकृष्ण व पांडवों को समुद्री जल पर चलने वाले अनेक रथ प्रदान किये। इन रथों पर सवार होकर श्रीकृष्ण के साथ सभी पांडव महासमुद्र को पार कर शीघ्र ही अमरकंकापुरी के उद्यान में जा पहुँचे। तब राजा पद्मनाभ के दूत ने अपने नरेश को जाकर बतलाया कि श्रीकृष्ण व पांडव यहां आ पहुँचे हैं तो उसने अपनी भारी सेना को उनके विरूद्ध युद्ध करने भेज दिया। पर वह सेना श्रीकृष्ण आदि से पराजित होकर शीघ्र ही अपने नगर में जा घुसी। तब पद्मनाभ नरेश ने नगर के कपाट बंद करवा दिये तथा स्वयं राजमहल में कहीं जाकर छिप गया। तब श्रीकृष्ण व पांडवों ने नगर के कोट व द्वार को भंग कर दिया तथा वे सभी नगर में प्रविष्ट कर गये।

यह देखकर राजा पद्मनाभ अपना विनाश नजदीक जान कर द्रौपदी की शरण में पहुँच गया व उससे क्षमा याचना करने लगा। तभी पांडवों सहित श्रीकृष्ण भी वहां पहुँच गये। उन्हें देखकर राजा पद्मनाभ रक्ष-रक्ष कहता हुआ श्रीकृष्ण व पांडवों की शरण में पहुँच गया एवं द्रौपदी से क्षमा याचना पूर्वक अभय दान ले लिया। पांडवों व श्रीकृष्ण ने भी शरणागत को क्षमा दान दे दिया। सभी लोग द्रौपदी को पाकर अति प्रसन्न हुए। तब सभी ने मिलकर द्रौपदी को पारणा कराया। सभी पांडव श्रीकृष्ण का आभार मानकर घातकीखंड द्वीप से रवाना होने ही वाले थे कि तभी श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख की गंभीर ध्वनि की। तब समीप स्थित घातकीखंड के चंपापुर के नरेश जो नारायण भी थे एवं जिनका नाम कपिल था, ने समवरण में विराजमान मुनिसुव्रत स्वामी से यह जानकर कि यह शंख ध्वनि जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के नारायण श्रीकृष्ण ने की है। तो कपिल के मन में श्रीकृष्ण से मिलने की जिज्ञासा प्रकट हुई। तब भगवान मुनिसुव्रत ने कपिल को बतलाया कि चक्री का चक्री, नारायण का

नारायण, तीर्थंकर का तीर्थंकर एवं वलभद्र का वलभद्र से आपस में मिलन नहीं होता व वे एक दूसरे को देख नहीं सकते, ऐसा नियम है। तब दोनों नारायण आपस में दोनों की ध्वजा को देखकर संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानों को गमन कर गये।

पांडव श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर आ गए। पर रास्ते में यमुना पार करते समय भीम ने श्रीकृष्ण की नौका को छिपा दिया। जिससे श्रीकृष्ण को अपने बाहुबल से यमुना नदी को पार करना पड़ा था। इससे श्रीकृष्ण रूष्ट हो गये। अतः उन्होंने हस्तिनापुर आने पर यहां का राज्य अभिमन्यु के पुत्र जो विराट की पुत्री उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे एवं अर्जुन के पौत्र थे एवं जिनका नाम परीक्षित था, को दे दिया। और पांडवों से मथुरा जाकर रहने को कह दिया। तब सभी पांडव परिवार सहित मथुरा जाकर बस गये। यहां पर हरिवंश पुराण में उल्लेख है कि श्रीकृष्ण की आज्ञा से पांडव दक्षिण की ओर जाकर एक मथुरा नाम की नगरी बसाकर चंदन व लवंग के वृक्षों से घिरे मलयगिरि के आसपास रहने लगे।

महाबली नेमिनाथ का वैराग्य

हरिवंश पुराण में उल्लेख है कि—एक दिन नेमिप्रभु व श्रीकृष्ण राज्य सभा में विराजमान थे, इस राज्यसभा का नाम कुसुमचित्रा था। वहीं यह चर्चा चल पड़ी कि नेमिनाथ व श्रीकृष्ण में कौन महाबली है। तब सभी उपस्थित सभासदों ने श्रीकृष्ण को अधिक ताकतवर बतलाया। उसी समय नेमिनाथ ने अपने हाथ को श्रीकृष्ण की गोद में रख कर एक अंगुली को टेढ़ाकर श्रीकृष्ण से कहा कि इस अंगुली को सीधा कर दो पर श्रीकृष्ण उस अंगुली को सीधा न कर सके। तब नेमिनाथ ने अपनी भुजा ऊपर उठा ली, जिससे श्रीकृष्ण उनकी अंगुली पर ही लटक गये। नेमिनाथ के अपार बल को देखकर श्रीकृष्ण ने नेमिनाथ से कहा कि हे प्रभो! आपका बल लोकोत्तर व आश्चर्यकारी है। तब से श्रीकृष्ण नेमिनाथ की पूजा करने लगे। किन्तु तभी से उनके मन में यह शंका भी घर कर गई कि क्या इनके रहते हमारा राज्य स्थिर रह सकेगा। किन्तु नेमिनाथ इस घटना के बाद से राज्य कार्यों से अन्यमनस्क से रहने लगे।

विजयार्ध पर्वत की उत्तरी श्रेणी में श्रुतशोणित नाम का नगर है। वहां के नरेश का नाम वाण था। वाण नरेश की एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। उसका नाम ऊषा था। वह बचपन से ही प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध पर आसक्त रहती थी। एक दिन जब यह बात ऊषा की सखी को मालूम चली तो वह सखी अनिरूद्ध का हरण कर लाई व ऊषा का विवाह अनिरूद्ध से करा दिया। जब श्रीकृष्ण को अनिरूद्ध के हरण का पता चला तो वे बलदेव, शम्ब व प्रद्युम्न को साथ लेकर श्रुतशोणित नगर जा पहुँचे व वहां के नरेश बाण को युद्ध में परास्त कर ऊषा सहित अनिरूद्ध को पुनः द्वारिका वापिस ले आये।

एक समय शरद ऋतु में सभी यादव नरेश नेमिनाथ के साथ अपने अंतःपुर को साथ लेकर मनोहर नाम के सरोवर में जल क्रीड़ा हेतु गये। जब वे उस सरोवर में जल क्रीड़ा कर रहे थे, तो वहीं जल उछालते समय नेमिनाथ व सत्यभामा के

बीच चतुराई से भरा मनोहर वार्तालाप हुआ। सत्यभामा के यह कहने पर कि आप मेरे साथ अपनी प्रिया के समान क्रीड़ा क्यों करते हैं। इसके उत्तर में नेमिनाथ बोले कि क्या तुम मेरी प्रिया/इष्ट नहीं हो। तब सत्यभामा ने प्रति उत्तर में कहा कि यदि 'मैं आपकी प्रिया हूँ, तो आपके भाई श्रीकृष्ण किसके पास जायेंगे। उत्तर में नेमिनाथ ने कहा कि वे कामिनी के साथ जायेंगे। जब सत्यभामा ने पूछा कि वह कामिनी कौन है, तब नेमिनाथ बोले कि क्या आप नहीं जानतीं। तब सत्यभामा ने नेमिनाथ से कहा कि आपको सभी सीधा कहते हैं, पर आप तो बड़े कुटिल हैं। विनोद करते-करते स्नान के पश्चात् नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा कि हे नील कमल से नेत्रों वाली– मेरा यह स्नान वस्त्र ले और इसे धो डाल। तब सत्यभामा बोली कि मैं महान पुरुष श्रीकृष्ण की स्त्री हूँ, किसी की दासी नहीं। जब वे भी मुझे ऐसा आदेश नहीं देते, तो आप मुझे ये आदेश कैसे दे सकते हैं। क्या आप श्रीकृष्ण हैं? क्या आपमें उन जैसा साहस है? ऐसा उल्लेख उत्तर पुराण में है। किन्तु इसके विपरीत हरिवंश एवं पांडव पुराण के अनुसार यह मधुर चर्चा सत्यभामा के साथ नहीं, बल्कि श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी जाम्बवती के साथ हुई थी।

सत्यभामा/जाम्बवती के ये कटु वचन सुनकर नेमिनाथ सीधे नगर की ओर गमन कर गये। वे सीधे श्रीकृष्ण की आयुधशाला में गये व वहां जाकर नागशैया पर चढ़ गये। उन्होंने उनका सारंग नाम का धनुष चढ़ा दिया व नासिका से उनके पांचजन्य शंख को फूंक दिया। तब सभी घबरा गये। श्रीकृष्ण ने अपनी तलवार निकाल ली, किन्तु जब वे अपनी आयुधशाला में पहुँचे, तो उन्होंने नेमिनाथ को नागशैया पर चढ़ा देखा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने नेमिनाथ का आलिंगन किया व उन्हें प्रणाम कर उनके बल-पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। इसके बाद, घटना का विस्तार से पता करने पर श्रीकृष्ण को मालूम चला कि नेमिनाथ का चित्त राग से युक्त हुआ है। उन्हें कामोद्दीपन हुआ है, अतः अब नेमिनाथ का विवाह करना चाहिए। उन्होंने नेमिनाथ से चर्चा कर उन्हें विवाह हेतु तैयार कर लिया।

श्रीकृष्ण अपने कुछ विश्वास पात्रों को लेकर नेमिनाथ के विवाह का प्रस्ताव लेकर भोजवंशी नरेश राजा उग्रसेन जो जूनागढ़ के अधिपति थे एवं जिनकी धर्मपरायणा महारानी का नाम जयावती था, के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिए उनकी पुत्री राजुल/राजमती की याचना की। राजा उग्रसेन ने अपनी पत्नी से चर्चा कर श्रीकृष्ण को इसकी स्वीकृति प्रदान कर दी एवं उन्हें अन्यान्य कीमती उपहार देकर विदा कर दिया। दोनों पक्षों में शादियों की तैयारियां होने लगीं। नेमिनाथ प्रभु के विवाहोत्सव में पांच प्रकार के रत्नों का विवाह मंडप बनाया गया। विवाह मंडप के बीच वेदिका एवं चारों ओर मोतियों की लटकने लगाईं गईं। फूलों की माला बांधकर सोने की चौकी पर बैठकर नेमिकुमार ने राजमति के साथ गीले चावलों पर बैठने का विवाह पूर्व का नेग किया।

वर के जलधारा के दिन (दूसरे दिन) श्रीकृष्ण को लोभ आया कि कहीं नेमिनाथ हमारा राज्य न ले लें। राज्य लोलुपता के कारण नेमिनाथ को संसार से विरक्त कराने के उद्देश्य से उन्होंने बारात के मार्ग में एक बाड़े में मृगों व अन्य पशुओं को बंधवा दिया। जब बारात के रास्ते में नेमिनाथ ने मूक पशुओं को बंधे व चीत्कार करते हुए सुना, तो जिज्ञासावश उन्होंने सारथी से पूछ लिया कि यह निरीह पशु क्यों बांधे गये हैं। तब रक्षकों के यह उत्तर देने पर कि बारात में पधारे मांसाहारी राजाओं एवं मेहमानों के भोजन की व्यवस्था हेतु इन्हें वध हेतु बांधा गया है। इस पापपूर्ण उत्तर को सुनते ही नेमिप्रभु गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गये। वे विचारने लगे कि यह निरपराध तृण खाकर जीने वाले, दूसरों को रंचमात्र भी पीड़ा न पहुँचाने वाले सीधे-सादे पशुओं को मेरे विवाह के निमित्त मार दिया जायेगा। प्राणी वध का फल तो निश्चित ही पाप का बंध है। चार प्रकार के बंधों से भयभीत होकर व अपने पुराने भवों की याद कर वे कांप गये व उन्हें वैराग्य उत्पन्न होने लगा। तभी लोकांतिक देवों ने आकर उनसे वैराग्य हेतु वैराग्य वचन कहकर उनके वैराग्य को दृढ़तम बना दिया। नेमिप्रभु ने बंधन युक्त पशुओं को छुड़वा दिया व

राजकुमारों के साथ नगर प्रवेश किया। तब इन्द्रों ने आकर उन्हें सिंहासन पर विराजमान कर उनका अभिषेक कर वस्त्र आभूषणों से विभूषित किया।

इस समय श्रीकृष्ण, वलभद्र व अनेक राजा नेमिप्रभु के सिंहासन को चारों ओर से घेरकर खड़े थे। नेमिप्रभु को श्रीकृष्ण, भोजवंशी, यदुवंशी आदि सभी राजाओं ने दीक्षा लेने से रोकने का प्रयास किया पर सभी असफल रहे। तब नेमिप्रभु ने अपने माता-पिता को अच्छी तरह समझाया व उन्हें धार्मिक उद्बोधन दिया। तत्पश्चात नेमिप्रभु देवों द्वारा लाई गई उत्तर कुरु/देवकुरु नामकी पालकी में सवार होकर गिरनार पर्वत पर पहुँच गये एवं सहस्त्र वन में जाकर तेला का नियम लेकर एक शिला पर विराजमान हो गये। उन्होंने वहां पहुंचकर आभूषण व वस्त्र त्याग दिये, पंचमुष्टि केशलौंच किया व 1000 राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर तपस्या में लीन हो गये। इन्द्र ने उनके केशों को क्षीर सागर में क्षेप दिया।

नेमिनाथ प्रभु ने श्रावण शुक्ला 6 को सायंकाल की बेला में मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। उन्हें दीक्षा ग्रहण करने के तुरंत पश्चात् चौथे मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उधर जब राजमती/राजुल को नेमिनाथ के वैराग्य का पता चला तो वह संतापित होकर विलाप करने लगी। तदनंतर तप धारण करने के प्रेरणादायक गुरु वचनों से जब उसका शोकभार कुछ कम हो गया, तो उसने भी जीवन की असारता को समझ कर संयम धारण करने का निश्चय कर लिया तथा वह भी गिरनार पर्वत की प्रथम टोंक के पास जाकर एक गुफा में तप-लीन हो गई। उसने आर्यिका दीक्षा धारण कर ली।

गिरनार की प्रथम टोंक के पास आज भी राजुल की गुफा में उनकी मूर्ति बनी है। इसके पहले राजुल को उसके माता-पिता व रिश्तेदारों ने रोकने के अथक प्रयास किये, किन्तु उसने दृढ़तापूर्वक उन सभी के अनुराध को विनम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया। दीक्षा के पश्चात् श्रीकृष्ण, बलदेव, इन्द्र व देवताओं ने आकर नेमिनाथ तीर्थंकर के दीक्षा कल्याणक की पूजा की।

तीर्थंकर नेमिनाथ को केवलज्ञान प्राप्ति व धर्मोपदेश

षष्टोपवास के बाद तीर्थंकर नेमिनाथ अपनी प्रथम पारणा हेतु द्वारावती नगरी पधारे। वहां राजा प्रवर दत्त/वरदत्त ने उनका पड़गाहन कर उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक आहार दान दिया। जिसके प्रभाव से उनके घर पंच-आश्चर्य हुए, 72 करोड़ 50 लाख रत्नों की दैवीय वृष्टि हुई। तत्पश्चात व्रत, गुप्ति एवं समितिओं से उत्कृष्टता को प्राप्त और परीषहों को सहन करने वाले नेमिनाथ महामुनि रत्नत्रय व तप रूपी लक्ष्मी से सुशोभित होने लगे। वे धर्म-ध्यान व शुक्ल-ध्यान धारण करने को उद्यत हुए। तीर्थंकर नेमिनाथ ने 56 दिन छदमस्थ अवस्था में व्यतीत किये। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रातःकाल चार घातिया कर्मों के महावन को जलाकर गिरनार पर्वत पर बांस के वृक्ष के नीचे उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। यह क्रिया गिरनार पर्वत पर सम्पन्न हुई। तब भगवान के केवलज्ञान हो जाने की जानकारी लगने पर इन्द्र लोक से इन्द्र व देवताओं का समूह गिरनार पर्वत पर आया व भगवान नेमिनाथ के केवलज्ञान की प्राप्ति की उन्होंने भक्तिभाव पूर्वक पूजा-अर्चना की। उन्होंने गिरनार पर्वत की तीन प्रदक्षिणायें भी दीं।

इसी बीच इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने गिरनार पर्वत पर विशाल एवं भव्य समवशरण की रचना की। उनके समवशरण में सुर, असुर, तिर्यंच, मनुष्य सभी एकत्रित हुए। ग्यारह गणधर उनके समवशरण में विराजमान थे। वरदत्त उनके प्रमुख गणधर थे। श्रीकृष्ण आदि जगत प्रसिद्ध नृपतियों ने आकर प्रभु की वंदना, पूजा व अर्चना की। इस समवशरण के मध्य में स्थित गंधकुटी में विराजमान होकर भगवान नेमिनाथ ने दिव्य ध्वनि के माध्यम से संसारी जीवों के कल्याण हेतु अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया। उनके समवशरण में 400 पूर्वधारी, 11800 शिक्षक, 1500 अवधिज्ञानी, 1500

केवलज्ञानी, 900 विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी, 800 वादी, 1100 विक्रिया ऋद्धिधारी महामुनिराज विराजमान होकर धर्म श्रवण करते थे। प्रमुख गणिनी राजमती/राजुल के साथ 40000 आर्यिकायें, यक्षी, कात्यायनी आदि देवियां मिलकर 169000 श्रावक व 336000 श्राविकायें धर्मामृत का पान किया करते थे। असंख्यात देवी-देवता भी एवं संख्यात तिर्यंच जीव भी उनकी धर्मसभा में उपस्थित रहते थे। बारह सभाओं से घिरे सभामंडप के मध्य में विराजमान होकर भगवान नेमिनाथ ने अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया था।

उन्होंने अपनी दिव्य ध्वनि से बतलाया कि कथायें चार प्रकार की होती हैं– आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनि एवं निर्वेदनी। उन्होंने बताया कि यह जीव स्वयं कर्म करता है एवं उसका फल भी स्वयं भोगता है। स्वयं ही संसार में घूमता है और स्वयं ही उससे मुक्त होता है। अविद्या व राग से संक्लिष्ट होता हुआ यह जीव संसार सागर में बार-बार भ्रमण करता है और विद्या तथा वैराग्य से शुद्ध होकर सिद्ध भी हो जाता है।

संसार के जीवादि समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली भगवान की दिव्य-ध्वनि लोगों के अंतःकरण में आवरण सहित ज्ञानांधकार को खंड-खंड कर रही थी। उन्होंने कहा कि प्रमाण, नय निक्षेप, सतसंख्या और निर्देश आदि से संसारी-जीव का तथा अनंत ज्ञान आदि आत्मगुणों से मुक्त-जीव का निश्चय करना चाहिए। वस्तु के अनेक स्वरूप हैं। उनमें से किसी एक निश्चित स्वरूप को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय कहलाता है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत यह सात नय हैं। इनमें से प्रारंभ के तीन नय द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं व शेष चार पर्यायार्थिक नय के। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुदगल यह पांच अजीव तत्व हैं। तथा सम्यग्दर्शन के विषयभूत हैं। मन, वचन व काय की क्रिया को योग कहते हैं। यह योग ही आश्रव कहलाता है। जो शुभ व अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है। आश्रव के दो स्वामी हैं– सकषाय और अकषाय।

आश्रव के दो भेद हैं– सांपरायिक आश्रव व ईर्यापथ आश्रव। मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्म कषाय गुणस्थान तक के जीव सकषाय हैं व वे सांपरायिक आश्रव के स्वामी हैं। जबकि उपशांत कषाय से लेकर संयोग केवली तक के जीव अकषाय हैं तथा वे ईर्यापथ आश्रव के स्वामी हैं। चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली भी अकषाय हैं। पर योग के अभाव से उन्हें आश्रव नहीं होता। पांच इंद्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत व पच्चीस क्रियायें सांपरायिक आश्रव के द्वार हैं।

तभी श्रीकृष्ण ने जीव तत्व के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। तब दिव्य ध्वनि से नेमिप्रभु ने बतलाया कि जीव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप गुणवान, सूक्ष्म, ज्ञाता, दृष्टा, कर्ता, भोक्ता, ग्रहण किये शरीर के बराबर सुख दुःख का संवेदन करने वाला कर्मबद्ध होकर चारों योनियों में भ्रमण करने वाला भी है। यही जीव अपने गुणों व तत्पश्चरण से अष्ट कर्मों का नाश कर चरम शरीरी हो जाता है।

तभी देवकी ने वरदत्त गणधर से पूछा– मेरे यहां छह मुनिराज आहारचर्या हेतु पधारे थे, उनके प्रति मेरे हृदय में अपार प्रेम उमड़ा। इसका क्या कारण है? तब गणधर स्वामी ने बतलाया कि तेरे छै युगलियां पुत्रों को भद्रिलपुर नगर की अलका सेठानी ने पालपोष कर बड़ा किया था। वही आपके यहां आहार को पधारे नव दीक्षित मुनि थे। इसलिए इनके प्रति तेरा इतना प्यार उमड़ा। ये सभी इसी भव से मोक्ष जायेंगे। तब देवकी ने बड़े ही भक्तिभाव से नेमिप्रभु की वंदना की। सत्यभामा, रूक्मणी, जाम्बबंती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गांधारी, गौरी व पदमावती जो श्रीकृष्ण की पटरानियां थीं, ने भी क्रम-क्रम से अपने पूर्वभव पूछे व जानकर संतुष्ट हुईं तथा उन्होंने भगवान नेमिप्रभु का धर्म अंगीकार कर लिया। सभी सभासदों ने भी धर्म स्वीकार किया। अनेकों ने महाव्रतों व श्रावक व्रतों को अंगीकार किया।

नेमिप्रभु ने अपनी दिव्यवाणी से धर्म का मर्म बतला कर मोक्ष प्राप्ति का उपाय बतलाया। उन्होंने श्रावक व मुनिधर्म के भेद से धर्म के दो भेद बतलाकर उनकी विशेषताओं का

विस्तार से वर्णन किया। कर्म के भेद बतलाकर कर्मों को कैसे नष्ट किया जाता है इसके उपाय बतलाये। गिरनार पर प्रथम उपदेश देकर भगवान ने पर्वत से उतरकर धर्मचक्र को आगे-आगे चलाकर संपूर्ण पृथ्वी पर विचरण कर अपार देव व जनसमूह जिनके साथ-साथ चलता था। यतियों, ऋषियों व मुनियों की भीड़ जिनके साथ चलती थी, जिनकी चरण रज को पाने के लिए लोग कुछ भी करने को तत्पर थे, ऐसे प्रभु ने अपार व अनंत विभूतियों के साथ छत्र, चंवर, भामंडल, अष्ट-प्रतिहार्य व अष्ट-मंगल द्रव्य सहित होकर मलय देश के भद्रिलपुर नगर के आदि अनेक स्थानों पर भगवान का समवशरण गया व सभी जगह उन्होंने अपनी अमृतमयी वाणी से लोगों के हृदयों में बसे गहन अंधकार को दूर किया।

देवकी ने श्रीकृष्ण के बाद एक और पुत्र को जन्म दिया था। नामकरण संस्कार में इस पुत्र का नाम गजकुमार रखा गया। एक बार जब भगवान नेमिनाथ का समवशरण द्वारिका आया तो श्रीकृष्ण के साथ गजकुमार भी भगवान के दर्शनों व उपदेश सुनने के लिए वहां गये। वहां श्रीकृष्ण ने तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, अर्धचक्रियों, बलभद्रों व प्रतिनारायणों की उत्पत्ति व उनके अंतराल को जानना चाहा। तब भगवान नेमिनाथ ने अपनी दिव्यवाणी से विस्तार से उनका वर्णन किया। उन्होंने श्रीकृष्ण की आयु दस हजार वर्ष बतलाई। उन्होंने ग्यारह रूद्रों के बारे में भी बतलाया तथा भावी तीर्थंकरों के बारे में भी बतलाया। गजकुमार को भगवान की देशना सुनने के पश्चात् वैराग्य हो गया। जब यह बात सोमशर्मा को विदित हुई तो उसे काफी क्रोध आया; क्योंकि उसकी पुत्री का परिणय गजकुमार से होना तय हो गया था। उधर गजकुमार मुनि बनकर तपस्या करने लगे। प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए सोमशर्मा ने ध्यानावस्था में गजकुमार मुनिराज के शिर पर अग्नि प्रज्वलित कर दी। तभी गजकुमार मुनिराज को शुक्ल ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई तथा वे अंतःकृत केवली होकर मोक्ष गमन कर गये।

देवकी व रोहणी को छोड़कर वसुदेव की सभी स्त्रियों ने भगवान नेमिनाथ की दिव्य देशना से प्रभावित होकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। श्रीकृष्ण की पुत्रियों ने भी दीक्षा धारण कर ली। इसके बाद नेमिप्रभु ने उत्तर, मध्य व पूर्व दिशा के अनेक स्थानों पर विहार कर धर्मामृत की वर्षा की जिससे प्रभावित होकर अनेक राजाओं ने मुनिधर्म स्वीकार कर लिया व अनेकों ने श्रावक धर्म अपना लिया। काफी समय पश्चात् भगवान नेमिनाथ का समवशरण पुनः गिरनार पर्वत पर आया। वे समवशरण के मध्य विराजमान हो गये। तब प्रद्युम्न आदि पुत्रों सहित वसुदेव, बलदेव व श्रीकृष्ण भी प्रजाजनों के साथ धर्मलाभ लेने के लिए गिरनार स्थित समवशरण में गये। वहां पहुँचकर बलदेव ने नेमिप्रभु से द्वारिकापुरी का भविष्य जानना चाहा। उन्होंने श्रीकृष्ण के भविष्य के बारे में भी प्रश्न किया। उन्होंने पूछा कि द्वारिकापुरी की समृद्धि एवं श्रीकृष्ण का साम्राज्य कब तक रहेगा एवं यह भी जानने की जिज्ञासा प्रकट की कि श्रीकृष्ण के मोह से बंधे मुझे संयम की प्राप्ति कब होगी।

बलदेव के प्रश्न सुनकर भगवान नेमिनाथ की दिव्यध्वनि खिरने लगी। उन्होंने कहा आज से बारहवें वर्ष में मदिरा के निमित्त से द्वीपायन मुनिराज के क्रोध से द्वारिका भस्म हो जायेगी। अंतिम समय में श्रीकृष्ण कौशांबी के वन में जरतकुमार के कारण विनाश को प्राप्त होंगे। श्रीकृष्ण की मृत्यु के निमित्त से आप विरक्त होकर तपस्या कर ब्रह्म स्वर्ग में उत्पन्न होंगे। चूंकि द्वीपायन कुमार वसुदेव की पत्नी रोहणी का भाई था एवं बलदेव का मामा था। अतः वह दिव्यध्वनि के माध्यम से यह जानकर कि मेरे कारण द्वारिका भस्म होगी। वह संसार से विरक्त होकर मुनि बन गये एवं बारह वर्ष की अवधि पूर्ण करने हेतु द्वारिका से काफी दूर पूर्व देशों की ओर गमन कर गये और वहां तपस्या करने लगे। जरतकुमार यह सोचकर काफी दुःखी हुआ कि उसके निमित्त से श्रीकृष्ण का विनाश होगा। अतः वह भी दुखी होकर ऐसी जगह चला गया, जहां श्रीकृष्ण दिखाई भी न दें। जरतकुमार

श्रीकृष्ण को बहुत प्यारा था। अत: वे उसके चले जाने से काफी दु:खी हुए। बलदेव व श्रीकृष्ण ने द्वारिका में आकर यह घोषणा करवा दी कि सभी मदिरा बनाने के साधन एवं समस्त मदिरा जो उनके राज्य में है, उसे शीघ्र ही नष्ट कर दिया जावे। राज्य की संपूर्ण मदिरा कदंब वन के कुंडों में फेंक दी गई। किन्तु वह मदिरा अश्यपाक विशेष के कारण उन कुंडों में भरी रही। श्रीकृष्ण ने अपने राज्य में यह घोषणा भी करवा दी कि जो भी भगवान नेमिनाथ के मत में दीक्षित होकर तप करना चाहें वे ऐसा कर सकते हैं। श्रीकृष्ण की इस घोषणा को सुनकर प्रद्युम्न कुमार, भानु कुमार आदि को लेकर अनेक यादव कुमार भगवान नेमिनाथ की शरण में जाकर दीक्षित होकर मुनि बनकर तप करने लगे। रूक्मणि, सत्यभामा आदि आठ पटरानियों ने भी अपने पति से आज्ञा प्राप्त कर अपनी पुत्रवधुओं एवं सौतों के साथ आर्यिका दीक्षा धारण कर ली तथा वे भी तपस्या में लीन हो गईं। बलदेव का भाई जो उनका सारथी भी था, ने भी मुनिदीक्षा धारण कर ली। बाद में भगवान नेमिनाथ भी पल्लव देश की ओर विहार कर गये।

द्वारिका का भस्म होना

बारह वर्ष बीत चुके हैं, इस भ्रम में पड़ कर द्वीपायन मुनि कठोर तपश्चरण करते हुए बारहवें वर्ष में ही द्वारिका की ओर आ गये एवं द्वारिका से कुछ दूर स्थित पर्वत पर आतापन योग धारण कर प्रतिमा योग से विराजमान हो गये। उसी समय वन क्रीड़ा से थके प्यास से पीड़ित शंब आदि यादव कुमारों ने कादंब वन में स्थित उन्हीं कुंडों में स्थित जल को पी लिया जिसमें श्रीकृष्ण व बलदेव ने शराब फिकवाई थी। उस शराब युक्त जल को पीकर यादव कुमार विकार को प्राप्त हो गये एवं द्वारिका की ओर चले। तभी उन्होंने मार्ग में तपस्यारत मुनि द्वीपायन को देखा तथा नशे को प्राप्त होकर तब तक उनके ऊपर पत्थर बरसाये, जब तक कि वे घायल होकर पृथ्वी पर गिर नहीं पड़े। यह सब देखकर द्वीपायन मुनि अति क्रोध को प्राप्त हो गये व उन्होंने अपनी भृकुटि चढ़ा ली। तभी किसी ने श्रीकृष्ण व बलदेव के पास जाकर इस घटना के बारे में उन्हें विस्तार से बतलाया। तब श्रीकृष्ण व बलदेव किसी अनहोनी घटना से आशंकित होकर द्वीपायन मुनि का क्रोध शांत कराने हेतु उनकी ओर दौड़े व उनसे जाकर कुमारों द्वारा किये गये कृत्य के लिए क्षमा याचना की। पर मुनि द्वीपायन अपने निश्चय से पीछे नहीं हटे। तब उन्होंने दो अंगुलियों का इशारा करते हुए कहा अब तो केवल तुम दोनों ही बच सकते हो, और कोई नहीं। तभी मुनि द्वीपायन क्रोध से अपने मूल शरीर को छोड़ मिथ्यादृष्टि अग्नि कुमार देव हुए एवं विभंगावधि ज्ञान से अपने मरण को निश्चित जानकर रौद्र ध्यान धारण कर संपूर्ण द्वारिका नगरी को भस्म कर दिया।

इसी बीच शंबूकुमार द्वारिका से निकल कर मुनि दीक्षा धारण कर गिरनार पर्वत की गुफा मे तप करने लगे थे। द्वारिका को जलती देखकर श्रीकृष्ण व बलदेव ने द्वारिका का कोट तोड़ डाला एवं समुद्र के जल से अग्नि को बुझाने का प्रयास करने लगे। पर जब उन्होंने अपने आपको द्वारिका में

लगी आग को बुझाने में असमर्थ पाया, तो वे दोनों अपने माता-पिताओं के साथ कुछ अन्य श्रेष्ठीजनों को भी रथ में बिठाकर द्वारिका से बाहर जाने लगे। पर तभी रथ कीलित हो गया। और नगर के दरवाजे स्वतः बंद हो गये। तब अग्निदेव ने केवल श्रीकृष्ण व बलदेव को द्वारिका से बाहर जाने दिया। शेष सभी द्वारिका में ही भस्मीभूत हो गये। श्रीकृष्ण व बलदेव द्वारिका से निकलकर दक्षिण की ओर चले गये। द्वीपायन मुनि का क्रोधभाव बाद में उन्हीं के संहार का कारण बना; ऐसे क्रोध को धिक्कार है।

श्रीकृष्ण व बलदेव द्वारिका नगरी से चलकर हस्तबप्र नगरी पहुँच गये। वहां धृतराष्ट्र वंश के अच्छदंत राजा का शासन था। वह नरेश यादवों के छिद्र ढूंढता रहता था। जब बलदेव नगर से भोजन सामग्री लेकर वापिस श्रीकृष्ण के पास लौट रहे थे, तभी राजा के पहरेदारों ने बलदेव को पहचान लिया व इस बात की सूचना राजा तक पहुँचा दी। तब राजा अपनी सेना लेकर श्रीकृष्ण व बलदेव से युद्ध करने पहुँच गया। जिसके परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण, बलदेव का राजा की सेनाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ, पर राजा की सेना उन दोनों योद्धाओं से परास्त हो गई। बाद में श्रीकृष्ण व बलदेव उस नगर से चलकर समीप स्थित विजय नाम के वन मे पहुंचे जहां उन दोनों भाइयों ने भोजन-पानी ग्रहण किया। वे चलते-चलते कौशांबी नाम के भयंकर वन में जा पहुँचे, जहां भीषण गर्मी से वहां के पेड़ जल से गये थे। यहां पहुँचने पर श्रीकृष्ण ने प्यास से व्याकुल होकर अपने बडे भाई बलदेव से पानी लाने को कहा। बाद में श्रीकृष्ण एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे।

उसी वन में शिकार व्यसन का प्रेमी जरतकुमार शिकार की तलाश में वहां घूम रहा था। यह वही जरतकुमार था, जो नेमिप्रभु की दिव्य वाणी से यह जानकर कि मेरे द्वारा ही श्रीकृष्ण का विनाश होग, गहन कौशांबी के वन में आकर विचरण करने लगा था। यहां जरतकुमार ने दूर से जब आगे की ओर देखा तो उसे कुछ अस्पष्ट सी कोई चीज दिखाई

दी। उस समय श्रीकृष्ण के वस्त्र का एक भाग हवा से हिल रहा था, जिसे जरतकुमार ने समझा कि यह मृग के शरीर का कोई भाग/कान है। उसने उसी सीध में एक विष में बुझा तीर छोड़ दिया। वह तीर सीधे जाकर श्रीकृष्ण को लगा। तीर लगने पर श्रीकृष्ण ने जोर से कहा कि किसने मुझे तीर मारा है, सामने आये।

तब जरतकुमार ने सामने आकर अपना परिचय देते हुए कहा कि मै हरिवंश नरेश वसुदेव का पुत्र एवं श्रीकृष्ण का भाई हूँ। कायर मनुष्य इस वन में प्रवेश नहीं कर सकते, अतः मैं अकेला ही वीर बनकर इस वन में घूमता फिरता हूँ। मुझे अपना छोटा भाई श्रीकृष्ण बहुत ही प्यारा है। मैं 12 वर्ष से इस वन में इसलिए रहता हूँ ताकि मेरे द्वारा श्रीकृष्ण का मरण न हो। जरत कुमार से यह सब सुनकर श्रीकृष्ण ने उसे पास बुलाया। तब दोनों एक दूसरे को तुरन्त पहचान गये। यह देखकर जरतकुमार श्रीकृष्ण के चरणों में गिर गया व अपने भूल से हुए कृत्य के लिए उनसे क्षमा मांगी। तब कृष्ण ने जरतकुमार को गले लगाया व मन में यह सोचकर कि बलदेव इसे कभी माफ नहीं करेंगे, जरत कुमार को अपनी कौस्तुभ माणि प्रदान की एवं उससे शीघ्र ही यह कहकर चले जाने को कहा कि तुम यह मणि दिखलाकर पांडवों के साथ जाकर रहना। तब जरत कुमार ने श्रीकृष्ण के पैरों से वाण निकाला एवं श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर वहां से चला गया।

जरतकुमार के चले जाने के पश्चात् वाण की तीव्र वेदना से श्रीकृष्ण ने पंच परमेष्ठी भगवंतों का स्मरण कर नेमिप्रभु को अंतःमन से स्मरण किया व उन्हें बारंबार नमस्कार किया। बाद में वे शुभ्र वस्त्र ओढ़कर लेट गये। उन्होंने शुभ भावों पूर्वक अपने शरीर का त्याग किया व तीसरी पृथ्वी में चले गये। जहां से चयकर वे भविष्यकाल के तीर्थंकर के रूप में भरत क्षेत्र में ही जन्म लेंगे।

उधर जब बलदेव पानी की तलास में निकले, तो उन्हें काफी दूर जाना पड़ा। तब कहीं उन्हें एक सरोवर दिखाई

दिया। जहां पहुँचकर बलदेव ने पहले अपनी प्यास बुझाई व बाद में एक कमलपत्र में जल लिया व उसे अपने अंग वस्त्र से ढककर श्रीकृष्ण की ओर जल्दी-जल्दी भागे। उन्होंने दूर से ही श्रीकृष्ण को एक श्वेत वस्त्र से ढका देखा व पास जाकर उनके समीप बैठ गये व उनके जागने का इंतजार करने लंगे। पर काफी देर तक श्रीकृष्ण के न जागने पर वे उन्हें जगाने लगे। पर वस्त्र हटाने पर उन्हें मृत देखकर वे चीख पड़े व उनके शरीर पर गिर पड़े। श्रीकृष्ण के मोह से उन्हें तत्काल मूर्छा आ गईं। तंद्रा टूटने पर शरीर में लगे तीर के घाव को देखकर वे मारने वाले की तलास में उसे ललकारने लगे। श्रीकृष्ण बलदेव को प्राणों से अधिक प्यारे थे इसलिए मोह वश उन्होंने श्रीकृष्ण को जगाने के सैंकड़ों प्रयास किये। अनेक दिन-रात व्यतीत होने पर भी वे श्रीकृष्ण के शरीर को लिए वन में इधर-उधर घूमते रहे। वर्षा ऋतु आने पर जरतकुमार पांडवों की नगरी दक्षिण मथुरा पहुँचा व वहां पांडवों को द्वारिका के भस्म हो जाने एवं कुटुंबी जनों के उसमें जल मरने की खबर दी। इसके बाद जरतकुमार ने पांडवों को श्रीकृष्ण द्वारा दिया हुआ कौस्तुभी मणि दिखाया एवं स्वयं जोर-जोर से रोने लगे, और सबको श्रीकृष्ण के अंत का समाचार सुना दिया।

यह समाचार सुनकर माता कुन्ती सहित सभी पांडव व उनके परिवारजन जोर-जोर से रूदन करने लगे। तब कुछ शांत होने पर वे सभी बलदेव की खोज में जरतकुमार द्वारा बतलाये वन की ओर गमन कर गये। उस वन में पहुँचने पर उन्होंने बलदेव को श्रीकृष्ण के मृत शरीर को अपने कंधे पर लादे हुए देखा। यह देखकर कुन्ती सहित सभी पांडवों ने बलदेव को समझाया कि श्रीकृष्ण मर चुके हैं। तुम व्यर्थ ही उसके मृत शरीर को क्यों अपने कंधे पर लादे यहां-वहां फिर रहे हो। तुम्हें श्रीकृष्ण के देह की अत्येष्टि क्रिया करनी चाहिए। पर बलदेव ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया व उल्टे कुन्ती सहित पांडवों आदि से बोले कि श्रीकृष्ण बहुत दिनों से भूखा प्यासा है, तुम लोग उसके लिए अच्छे

भोजन की तैयारी करो। संपूर्ण वर्षा ऋतु बीत गई, पर कुन्ती व पांडव बलदेव को कृष्ण की अंत्येष्टि करने के लिए राजी नहीं कर पाये।

शरद ऋतु प्रारंभ हो गई। श्रीकृष्ण के मृत शरीर से दुर्गंध भी आने लगी, पर बलदेव उसे मृत मानने को तैयार ही नहीं होते थे। तब बलदेव का भाई सिद्धार्थ जो पहले बलदेव का सारथी था एवं बाद में मरण कर स्वर्ग चला गया था, उसने वहां आकर नाना प्रकार से बलदेव के श्रीकृष्ण के प्रति मोह को दूर किया। तब जाकर बलदेव श्रीकृष्ण की अंत्येष्टि को तैयार हुए। फिर जरतकुमार एवं पांडवों ने मिलकर तुंगीगिरि के शिखर पर श्रीकृष्ण का अंतिम संस्कार किया व श्रीकृष्ण का राज्य जरतकुमार को दे दिया। बलदेव ने उसी स्थान पर भगवान नेमिप्रभु को साक्षी मानकर दीक्षा ग्रहण कर ली तथा वे मुनि बनकर बारह भावनाओं का चिंतवन कर घोर तपश्चरण करने लगे।

पांडवों का वैराग्य व मोक्षगमन

इसके पश्चात् सभी पांडव द्वारिका नगरी आये। किन्तु यहां आकर श्रीकृष्ण के विनाश, उनके साम्राज्य के वैभव के पराभव एवं महाबलियों के युद्ध में विनाश ने उन्हें विरागी बना दिया। तब वे सभी पांडव द्वारिका से चलकर पल्लव देश आये व वहां भगवान नेमिनाथ के समवशरण में पहुँच गये। उन्होंने यहां पर समवशरण में भगवान नेमिप्रभु के दर्शन किये व उनकी वंदना की एवं उनकी दिव्यदेशना सुनी। अपनी दिव्यदेशना में उन्होंने कहा कि सुख का मुख्य साधन धर्म है और जीव दया ही सच्चा धर्म है। उन्होंने दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार और बारह प्रकार के तप-तपचार व बलवीर्य को प्रकाशित करने वाला वीर्याचार इस प्रकार पंचाचारों का महत्व प्रतिपादित किया। सम्यक्त्व पर आधारित तीन प्रकार के धर्मों– सम्यकदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का विवेचन किया। इसके बाद अपनी देशना में उन्होंने दस धर्मों का वर्णन किया एवं कहा कि निर्मलतापूर्वक मोह से उत्पन्न विकल्प जालों को त्याग कर आत्म-स्वरूप चिंतवन में लीन होकर आत्मधर्म प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने अपनी देशना में आगे बतलाया कि वास्तव में चिद्रूप, शुद्ध, शांत, केवलज्ञान स्वरूप, सर्वार्थ वेदक तथा उपयोगमय आत्मा ही धर्म है। व्यवहार धर्म की साधना से ही निश्चय धर्म की प्राप्ति होती है यह एक ध्रुव सत्य है। तब धर्मभीरू पांडवों ने अपने भवांतरों एवं द्रौपदी आदि के बारे में पूछा। तब केवली भगवान ने उन सभी के पूर्व भवों का वर्णन कर उन्हें संबोधित किया। अपने पूर्व भवों का केवली भगवान के मुख से वृतांत सुनकर सभी पांडवों ने घर जाकर राज-सत्ता अपने पुत्रों को सौंप दी।

इसके बाद समवशरण में आकर भगवान से दीक्षा देने हेतु प्रार्थना की। इसके बाद सभी पांडवों ने भगवान के श्री चरणों में क्षेत्र, वस्तु आदि बाहरी तथा मिथ्यात्व आदि आंतरिक परिग्रहों का त्याग कर केशलोंच करने के पश्चात् मुनि दीक्षा धारण कर ली। पांडवों के साथ ही कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी

आदि संभ्रांत नारियों ने भी आर्यिका प्रमुख राजुल/राजमति के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। सभी पांडव नासिका के अग्रभाग पर ध्यान केंद्रित कर उग्र तपश्चरण में लीन हो गये व अपने पूर्व संचित कर्मों का तेजी से विनाश करने लगे। सभी नवदीक्षित आर्यिकायें भी तपश्चरण में लीन रहने लगीं व समवशरण में बैठकर धर्मपान करने लगी। सभी पांडवों ने द्वादश प्रकार के तपों की साधना से विविध समृद्धियां/ऋद्धियों-सिद्धियों को अनायास ही शीघ्र प्राप्त कर लिया। वे सभी द्वादश भावनाओं का चिंतवन करते थे व घोर उपसर्गों को समतापूर्वक सहन कर परीषहों पर विजय प्राप्त करते थे।

सभी पांडव विहार करते-करते सौराष्ट्र देश जा पहुँचे। वे वहां शत्रुंजय पर्वत पर जाकर ध्यान में लीन हो गये व कायोत्सर्ग करने लगे। वे सभी परम तपस्वी व परम योगी बन गये। एक दिन वहां पर दुर्योधन का भांजा कुमुर्धर/क्षुयवरोधन आया। वह पांडवों का घोर विरोधी एवं अत्यन्त क्रूर स्वभावी था। वहां पहुँचकर उसने वहां के कुछ तपस्वियों को तपस्यारत देखा। वहीं पर वह पांडवों को तपस्यारत देखकर उन्हें शीघ्र ही पहचान गया। यह सोचने लगा कि इन पांडवों ने ही मेरे मामा दुर्योधन को यमलोक पहुँचाया था। इसलिए पांडवों को देखते ही इसके मन में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी।

उसने अपने मन में विचार किया कि यह पांडवों से बदला लेने का सर्वश्रेष्ठ अवसर है। ध्यान में मग्न होने के कारण ये पांडव युद्ध भी नहीं कर सकेंगे। ऐसा मन में विचार कर उसने बहुत सारे लोहे के आभूषण बनवाये। बाद में उसने उन आभूषणों को अग्नि समान गर्म करके उन गहनों को पांडवों के अंग-प्रत्यंगों में पहना दिये। इससे पांडवों की देह काष्ट की भांति जलने लगी। पांडवों ने उस उग्र उपसर्ग की वेदना को भी अपने कर्मों का फल मानकर बड़े ही शांत भावों के साथ सहन किया एवं गहन ध्यान का आश्रय लिया। जैसे-जैसे उनके शरीर में निरंतर दाह बढ़ रही थी, वैसे-वैसे उनके ध्यान में उग्रता बढ़ती जा रही थी। वे सोचते कि यह अग्नि केवल इस मूर्तिमान शरीर को ही नष्ट कर सकती है,

आत्मा को नष्ट नही कर सकती। क्योंकि आत्मा तो निराकार, निर्विकार व निरंजन है तथा अमर भी। अतः वे अनित्यानुप्रेक्षा का चिंतवन करने लगे। उन पांडवों का वैराग्य स्थिर व अचल होने लगा।

अब वे कर्मों का क्षय करने में समर्थ थे। मनोयोग के एकांत आश्रय से अत्यन्त अल्पकाल में ही तीनों ज्येष्ठ पांडव–युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर अधःकरण की आराधना करते हुए अपूर्वकरण पर जा पहुँचे। तत्पश्चात उन्होंने अनिवृत्तिकरण को प्राप्त किया तथा शुक्ल-ध्यान के माध्यम से समस्त कर्म प्रकृतियों एवं अघातियां कर्मों का भी नाशकर केवलज्ञानी बन गये तथा अंत में इस नश्वर शरीर को छोड़कर मोक्ष पद को प्राप्त हो गये। वे संसार चक्र की पंच बाधाओं व क्षुधा आदि अठारह दोषों से विमुक्त हो सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये। तब इन्द्र व देवताओं ने शत्रुन्जय पर्वत पर आकर उन तीन पाण्डवों का केवलज्ञान महोत्सव एवं निर्वाण महोत्सव मनाया।

शेष दोनों लघु भ्राताओं– नकुल व सहदेव के चित्त में अपने बड़े भाइयों पर उपसर्ग के परिणाम स्वरूप कुछ आकुलता एवं अस्थिरता रह जाने के कारण उन्होंने इस घोर उपसर्ग को सहन कर देह का परित्याग किया। जिससे वे दोनों सर्वार्थसिद्धि देवलोक में जाकर वहां उत्पन्न होकर देव बने। वे भविष्य में वहां से चयकर मनुष्य भव धारण कर आगे मोक्ष की ओर जायेंगे।

इसी प्रकार राजमती, कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी, इत्यादि पवित्रात्मा नारियों ने भी दीर्घकाल तक धर्म-साधन में तत्पर रहकर सम्यकत्वपूर्वक अनेकविधि व्रतों को धारण कर आयु पर्यंत चारों आराधनाओं का अनुष्ठान किया व देह त्याग कर एवं स्त्री लिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव पद प्राप्त किया। वे सामानिक देव बनीं। वे बाईस सागर पर्यंत वहां देवोपुनीत स्वर्गीय सुखों को भोगकर मनुष्य भव धारण कर तप व ध्यान के बल से कर्मों का नाश कर शिवधाम को प्राप्त करेंगे।

तीर्थंकर नेमिनाथ का मोक्षकल्याणक

विविध देशों में अपने समवशरण के साथ दिव्य देशना देते हुए केवली भगवान नेमिनाथ रैवतक/ऊर्जयंत/गिरनार पर्वत पर जा पहुँचे। इसके पूर्व उन्होंने 699 वर्ष 9 माह तक केवली के रूप में विहार कर धर्मोपदेश दिया। भगवान नेमिनाथ के आयु कर्म का अब मात्र एक माह शेष बचा था। यहां भी उन्होंने समवशरण में विराजमान होकर अपनी दिव्य ध्वनि के माध्यम से अपना अंतिम धर्मोपदेश दिया। उन्होंने यहीं योग निरोध किया व पर्यंकासन में निष्क्रियरूपेण अवस्थित हो गये तथा अंत में गुणस्थान की 85 प्रकृतियों का नाश कर संपूर्ण अघातियां कर्मों का नाश कर आसाड़ शुक्ला सप्तमी के दिन चित्रा नक्षत्र में रात्रि के प्रारंभ में 586 मुनिवरों के साथ मुक्तिधाम/मोक्ष पधार गये। तब चतुर्निकाय के देवों ने आकर भगवान के अंतिम शरीर से संबंध रखने वाली निर्वाण कल्याणक की पूजा की। तभी क्षणमात्र में उनका शरीर बिजली के समान संपूर्ण आकाश को दैदीप्यमान करते हुए विलीन हो गया। तब इन्द्र ने गिरनार की पांचवी टोंक पर वज्र के माध्यम से पवित्र सिद्ध शिला को उकेर कर निर्माण किया। आज भी पांचवी टोंक पर भगवान के चरण चिन्ह अंकित हैं तथा उनकी भव्य मूर्ति भी उनकी निर्वाण भूमि पर मूल शिला में उत्कीर्ण है।

पांडव पुराण में भगवान नेमिनाथ के पूर्व भवों का भी वर्णन किया गया है। इसके अनुसार वे पहले विंध्याचल पर्वत पर भील थे। फिर क्रमशः श्रेष्ठ गुणवान वणिक, इमकेतु देव, चिंतामणि नाम के विद्याधर नरेश, फिर सुमंत, महेंद्र, तत्पश्चात राजा अपराजित फिर अच्युतेंद्र देव हुए। इसके पश्चात् वे सुप्रतिष्ठित नाम के नरेश हुए। वहां से जयंत विमान में अहमिन्द्र पद के धारी देव हुए। फिर वहां से चयकर भरत क्षेत्र में तीर्थंकर नेमिनाथ हुए। वे नेमिनाथ भगवान हम सब की रक्षा करें।

पांडव पुराण में आगे उल्लेख मिलता है कि सभी पांडव

पूर्वभव में अभ्युदयशील ब्राह्मण थे। जिन्होंने तप कर अच्युत स्वर्ग को प्राप्त किया व फिर वहां से चयकर पांच पांडव बने। उनमें से ज्येष्ठ तीन पांडवों ने तो इसी भव से मोक्ष प्राप्त किया व शेष दो पांडव आगे जाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। नकुल व सहदेव अपने पूर्व भव में धनश्री व मित्रश्री नाम की बहनें थीं जिन्होंने तपश्चरण के प्रभाव से स्त्री लिंग को छेदकर देवलोक में देव का पद धारण किया व वहां से चयकर वे नकुल व सहदेव नाम के पांडव बने थे।

उधर तुंगीगिरि के समीप वन में बलदेव तपश्चरण करते हुए विहार करने लगे। वहां कुछ उपद्रवी लोगों ने उनके ऊपर अनेक परीषह करने की सोची। पर उन्हीं के भाई जो देवलोक में सिद्धार्थ बने थे, ने उन मुनिराज के चरणों में सिंहों के समूह रच दिये। उसी समय से बलदेव मुनिराज नरसिंह इस नाम की प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। एक सौ वर्ष तपश्चरण करने के पश्चात् समाधिमरण कर बलदेव ने ब्रह्मलोक में इन्द्र के पद को प्राप्त किया था, ऐसा हरिवंश पुराण में उल्लेख आता है। इसके बाद वरदत्त नाम के मुनि को भी केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी।

जरतकुमार हरिवंश की संतति को धारण कर द्वारिकापुरी के राज्य का भार संभालने लगा था। कलिंग नरेश की पुत्री उसकी पटरानी थी। इन दोनों के बसुध्वज नाम का पुत्र हुआ। जो जरतकुमार के बाद द्वारिकापुरी का महाराजा बना। राजा बसुध्वज के बाद सुबसु व सुबसु के पश्चात् भीमवर्मा हरिवंश में नरेश हुए। तत्पश्चात इसी वंश में अनेक राजा हुए। बाद में इसी वंश में कापिष्ट नरेश हुए। कापिष्ट के बाद इस वंश में क्रमशः अजातशत्रु, शत्रुसेन जितारी, जितशत्रु नाम के नरेश हुए। राजा जितशत्रु के साथ भगवान महावीर स्वामी के पिता राजा सिद्धार्थ की छोटी बहन का विवाह हुआ था। इसका नाम यशोदया था। इनकी यशोदा नाम की पुत्री थी। महाराज सिद्धार्थ इसी यशोदा नाम की कन्या से भगवान महावीर के साथ विवाह की इच्छा रखते थे। जो महावीर स्वामी के वैराग्य धारण कर लेने के कारण संभव

नहीं हो सका था। बाद में राजा जितशत्रु ने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। हरिवंश नरेश जितशत्रु ने घोर तत्पश्चरण कर संपूर्ण पूर्व संचित कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया था। वे इसी भव से मोक्ष चले गये थे। इस प्रकार हरिवंश की कथा पूर्ण होती है।

लेखक का मत– समुद्रविजय आदि 9 भाई, देवकी के युगलिया 6 पुत्र, शंबू कुमार, प्रद्युम्न कुमार एवं अनिरूद्ध आदि मुनिश्वर भी गिरनार/उर्जयंत पर्वत से मोक्ष गये थे। इन सभी मुनिश्वरों के चरणचिह्न पर्वत की दूसरी, तीसरी व चौथी टोंक पर आज भी स्थित हैं। किन्तु विगत कुछ वर्षों से वहां हिंदू संप्रदाय के साधुओं ने इन टोंको पर व अन्यत्र भी अनेक अनाधिकृत नवीन निर्माण कर वहां देवी-देवताओं को विराजमान कर दिया है। वे गिरनार क्षेत्र के मूल इतिहास को बदलने का प्रयास कर रहे हैं। लेखक ने जब 1960 में गिरनार तीर्थ क्षेत्र की यात्रा की थी, तब तक गिरनार तीर्थ क्षेत्र पर इन साधुओं ने किसी प्रकार का निर्माण नहीं किया था और न ही इनका इस तीर्थ क्षेत्र पर कोई हस्तक्षेप था किन्तु आज लगभग सभी टोंकों पर इनका अनाधिकार कब्जा है। वे जैन तीर्थ यात्रियों को यहां इन टोंकों पर विधि-विधान पूर्वक दर्शन एवं पूजन करने से रोकते हैं। ऐसा लेखक ने सन् 2010 में अपनी चौथी यात्रा के दौरान स्वयं महसूस किया।

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

जैन वाङ्मय रत्न कोश

सं.- आचार्य अशोक सहजानन्द

ग्रंथराज वही है जो हमारी आत्मचेतना को जगा दे, जिसमें उच्च-चिंतन हो और जीवन-सत्य का प्रकाश हो। जैन धर्म-दर्शन की वास्तविकता को समझने के लिए मात्र यही एक कोश पर्याप्त है। इसमें चारों वेदों का सार है। आप घर बैठे चारों धाम की यात्रा का आनन्द ले सकते हैं। गृहस्थ में रहते हुए भी संन्यास को यथार्थ रूप में अनुभव कर सकेंगे। हर मुमुक्षु के लिए आवश्यक रूप से पठनीय ग्रंथराज।

जैन कथा साहित्य

जैन साध्वी प्रवर्तनी डॉ. चंदना

एक विशिष्ट लीक से हटकर गहन चिंतन-मनन परक मौलिक शोध प्रबंध जिसके महत्वपूर्ण अध्याय हैं– जैन कथा साहित्य की पृष्ठभूमि, कथा तत्व और जैन कथा साहित्य का वस्तुपक्ष, शिल्प का सैद्धांतिक स्वरूप तथा विशेषताएं, जैन कथाओं का वर्गीकरण, जैन कथा साहित्य में भाषा प्रयोग, मूल्यांकन की उपयुक्तता तथा प्रयोजन, निष्कर्ष (उपसंहार)। शोधार्थियों के लिए मील का पत्थर। एक संग्रहणीय कृति।

जैन वाङ्मय में तीर्थंकर एवं अन्य महापुरुष

प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन

इस कृति में सृष्टि-क्रम एवं काल-विभाजन के वर्णन के साथ ही जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध किया गया है। चौदह कुलकर, बारह चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रति-नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव आदि के वर्णन के साथ चौबीस तीर्थंकर एवं उनके माता-पिता का प्रामाणिक वर्णन है। एक विशिष्ट संदर्भ ग्रंथ।

जैन वाङ्मय में भूगोल

प्रो. प्रकाश चंद्र जैन

इस पुस्तक के लेखक देश के जाने-माने भूगोलविद् हैं। इस पुस्तक में उन्होंने जैन ग्रंथों में उल्लिखित ब्रह्माण्ड-विज्ञान व भूगोल की सामग्री को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझाने का स्तुत्य प्रयास किया है। अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ।

तीर्थ वंदन संग्रह

सं.– कुसुम जैन

जैन तीर्थों के इतिहास से सम्बद्ध 40 स्वनामधन्य लेखकों के विशिष्ट साहित्यिक उल्लेख इस कृति में संकलित किये गए हैं। सभी लेखकों के विवरण भी इस ग्रंथ में उपलब्ध हैं।

आत्मा का वैभव

दर्शन लाड़

इस ग्रंथ में जैनाचार्य कुंदकुंद के अमर ग्रंथों समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय के सरल, सुबोध भावार्थ को बड़ी ही रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। अध्यात्म-प्रेमियों के लिए अमृत-कलश के समान उपयोगी कृति।

बोधिसत्व उवाच

डॉ. प्रद्युम्न जैन 'अनंग'

प्रस्तुत कृति में जानेमाने अग्रणी विचारक डॉ. अनंग ने पहली बार हिन्दी साहित्य में सुकरातीय संवाद शैली में बोधिसत्व के माध्यम से वर्तमान दर्शन और साहित्य का रचना-संसार मुखर किया है, जो दार्शनिक सृजनशीलता का बेजोड़ उदाहरण है। हिन्दी साहित्य की अपने ढंग की पहली रचना जिसमें साहित्य, दर्शन और इतिहास का सम्यक् मूल्यांकन है जो पाठक को नये ढंग से सोचने का अवसर उपलब्ध कराती है।

स्वर योग : एक दिव्य साधना

आचार्य अशोक सहजानन्द

स्वर योग पर लेखक के शोध-निष्कर्षों का सार इस ग्रंथ में है। वैदिक, जैन और बौद्ध स्वर शास्त्रों के सिद्धांतों का प्रामाणिक अनूठा संकलन। साथ ही 'कुंडलिनी शक्ति' और 'ग्रंथि भेद' पर दुर्लभ सामग्री का संकलन कर लेखक ने इस ग्रंथ को अद्‌भुत बना दिया है।

ज्ञान प्रदीपिका

आचार्य अशोक सहजानन्द

यह पुस्तक प्रश्न ज्योतिष का एक प्राचीन ग्रंथ है। इसका उल्लेख अनेक ग्रंथों में प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में 27 कांड हैं। पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कृति में जैन ज्योतिष के संबंध में शोधपूर्ण मौलिक सामग्री भी प्रकाशित की गई है।

वास्तु दोष - आध्यात्मिक उपचार

आचार्य अशोक सहजानन्द

वास्तु शास्त्र का सम्यक् ज्ञान कराने वाली एक विशिष्ट कृति जो फेंगशुई एवं पिरावास्तु के विषय में भी सरल, सुबोध, सरस भाषा-शैली में प्रामाणिक ज्ञान उपलब्ध कराती है। वास्तुदोषों के ये आध्यात्मिक उपचार न केवल आवास के दोषों को दूर करते हैं, वरन् वे एक सार्थक, सुखी और संतुष्ट जीवन का मार्ग भी प्रशस्त करते है।

ब्रजभाषा गद्य का विकास

डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खंडेलवाल

प्रस्तुत ग्रंथ में इतिहासकारों एवं आलोचकों की भ्रांतियों का निराकरण करते हुए कुछ मौलिक और नूतन स्थापनाएं प्रस्तुत की गयी हैं। ब्रजभाषा गद्य साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास का प्रेरक स्त्रोत, प्रमुख प्रवृत्तियां, सापेक्षिक साहित्यिक स्थिति,

कालक्रम के आधार पर काल-विभाजन, अनेकों ऐसे अज्ञात अथवा अल्पज्ञात गद्यकारों की साहित्यिक विशेषताओं का उद्घाटन जिनके विषय में हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहास ग्रंथ या तो मौन हैं अथवा भ्रांतिपूर्ण परिचय प्रस्तुत करते हैं। आठ शताब्दियों की विपुल गद्य-सम्पदा का अनेक परिप्रेक्ष्यों में निरीक्षण, परीक्षण और मूल्यांकन। खड़ी बोली गद्य के भाव, भाषा और शैली पर ब्रज भाषा-गद्य के प्रभाव का विस्तृत विवेचन।

प्राकृत-संस्कृत का समानांतर अध्ययन

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

इस कृति में प्राकृत-संस्कृत के समानांतर तत्वों का सांगोपांग अध्ययन है। प्राकृत वाङ्मय में प्राप्त उन सारस्वत तत्वों की ओर संकेत है, जिनसे संस्कृत वाङ्मय के समानांतर अध्ययन में तात्विक सहयोग की सुलभता सहज संभव है।

सप्तसंधान महाकाव्य : समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

सप्तसंधान श्लिष्ट काव्य की अद्भुत रचना है। सात भिन्न कथाओं का प्रवाह एक साथ अविच्छिन्न गति से प्रवाहित है। ग्रंथ में सात अध्याय हैं—सप्तसंधानान्तर्गत भौगोलिक, धार्मिक एवं दार्शनिक शब्दावली, सप्तसंधान-ऐतिहासिक विवेचन, ग्रंथ और ग्रंथकार, कथावस्तु, कथास्त्रोत, साहित्यिक परिशीलन, कौशल वर्णन, तुलनात्मक अध्ययन। एक विशिष्ट संग्रहणीय शोध-प्रबंध।

शताब्दी पुरुष सहजानन्द वर्णी - व्यक्ति और विचार

आचार्य अशोक सहजानन्द

पूज्य सहजानन्द वर्णी जी ने अपनी विराट् साहित्यिक साधना के माध्यम से जो विरासत समर्पित की है वह केवल जैन साहित्य के लिए ही गौरवास्पद नहीं है, अपितु संस्कृत-प्राकृत भाषाओं के विपुल रत्न भंडार में प्रतिनिधि रत्नों के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत ग्रंथ में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पचास से अधिक मूर्धन्य विद्वानों के आलेख संकलित हैं।

सत्य सुदर्शन

प्रणाम मीना ओम्

प्रस्तुत कृति ओजस्वी, सकारात्मक और प्रेरक उद्बोधनों का विशिष्ट संकलन है। इस कृति की पंक्ति-पंक्ति पठनीय है। लेखिका का आह्वान है—'मानव जीवन एक उत्सव है। इसे चिरस्थायी उल्लास में परिवर्तित कर दे।' पुस्तक पढ़ने के बाद आप भी यही कहेंगे।

आख्या

डॉ. अपर्णा सारस्वत

साहित्यिक शोध लेखों का एक विशिष्ट संकलन। इसमें प्रबुद्ध लेखिका ने भक्तिकाल

से लेकर आधुनिक काल तक के काव्य जगत पर अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से चिंतन-मनन किया है। निश्चित ही यह पाठकों के लिए एक पठनीय एवं संग्रहणीय कृति है।

गोविन्द उवाच

मध्यम पुरुष

प्रत्येक पसन्दीदा लेखक के बारे में अधिकाधिक जानने की इच्छा रहती है। इसमें सामीप्य सुख मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि जिसने एक बार गोविन्द शास्त्री को पढ़ा, वह उनका हो गया, एक बार जो उनसे मिला वह भूल नहीं सका। उनका साक्षात्कार एक घटना बन गई। हर विषय पर उनके अन्तरंग चिंतन की छवि इस पुस्तक में आपको मिलेगी।

आओ, जरा सोचें!

आचार्य अशोक सहजानन्द

आचार्य अशोक सहजानन्द जी एक वरिष्ठ पत्रकार और यशस्वी लेखक हैं। इस पुस्तक में उनकी चर्चित संपादकीय टिप्पणियों एवं लेखों का अनूठा संकलन है। यथार्थ के धरातल पर जिंदगी जीने वाले और दशकों से विद्यमान सामाजिक विसंगतियों और शोषण तथा अन्याय के साथ-साथ जीवन के मानवीय मूल्यों के चतुर्दिक ह्रास का संत्रास भोगते आम आदमी को ये निबंध अच्छे ही नहीं लगेंगे, उसे संबल भी प्रदान करेंगे।

कबिरा खड़ा बाजार में

डॉ. प्रद्युम्न अनंग

इस महत्वपूर्ण काव्य संग्रह के सहज, सरल भाव बोध और निर्भीक बेबाक तेवर हमें बरबस फक्कड़ कवि कबीर की याद दिलाते हैं। कबीर की तरह ही कवि अनंग अपनी रुलाइयों के माध्यम से जहां एक ओर विभिन्न सम्प्रदायों के अलमबरदारों की खबर लेते हैं वही दूसरी ओर व्यवहारिक दिशा-निर्देश भी देते हैं। एक पठनीय एवं उपयोगी कृति।

पंच काव्यामृत

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के जीवन बोध की दो रेखाएं बड़ी स्पष्ट हैं। मानवतावादी और आध्यात्मिक। मानवता के कल्याण के लिए वे उन तमाम विरोधी शक्तियों से लड़ते रहे, जो मानवता की अवरोधक थी। इस क्रम में वे उन शक्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं जो मनुष्य का शोषण करती हैं। यही डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन का यथार्थवादी रूप है। 'पंच काव्यामृत' के रचनाकार ने मानव मंथन कर एक निष्ठावान सरस्वती के आराधक का कर्त्तव्य निभाया है। 'तप्तलहर', 'जनमानस' से 'साक्षात्कार' करती है। अपने ही अंदर 'खुद की तलाश' करती है तब कहीं जाकर 'अस्मिता' निखरती है।

हमारे अन्य बहुचर्चित प्रकाशन

1.	तंत्र दर्शन	पं. गोविन्द शास्त्री
2.	अंक दर्शन	पं. गोविन्द शास्त्री
3.	साधना और संस्कार	पं. गोविन्द शास्त्री
4.	अदृश्य रहस्यों की कुंजी	डॉ. एम.यू. बहादुर
5.	पद्मावती अर्चना	आचार्य अशोक सहजानन्द
6.	मणिभद्र साधना (घंटाकर्णकल्प सहित)	आचार्य अशोक सहजानन्द
7.	जैन गीता	आचार्य विद्यासागर
8.	इतिहास के अनावृत पृष्ठ	आचार्य सुशील कुमार
9.	पुण्य विवेचन	पं. रतनचंद्र मुख्त्यार
10.	जिन सहस्त्रनामकल्प	सं.– कुसुम जैन
11.	मध्यभारत के जैन तीर्थ	प्रो. प्रकाश चंद्र जैन
12.	संक्षिप्त जैन रामायण	प्रो. प्रकाश चंद्र जैन
13.	त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरितम्	आचार्य हेमचन्द
14.	नेमिनिर्वाणम् : एक अध्ययन	डॉ. अनिरूद्ध शर्मा
15.	मध्यप्रदेश के प्राचीन कीर्तिस्थल	डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'
16.	भारतीय संस्कृति व कला : विविध आयाम	डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'
17.	आस्था के प्रतिमान	डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'
18.	सफलता या असफलता - चुनाव आपका	दुर्गा प्रसाद शुक्ल
19.	सफलता आपकी मुट्ठी में	डॉ. गोपाल शर्मा
20.	सार्थक समाधान क्यों नहीं?	गंगा प्रसाद मिश्र
21.	विश्व के महान् साहित्यकार	डॉ. जगदीश चंद्र जैन
22.	सूरदास (व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व)	डॉ. जे.पी. खण्डेलवाल
23.	भारतीय नाट्य सौन्दर्य	डॉ. मनोहर काले
24.	राह अपनी तरफ (जैन उपन्यास)	दर्शन लाड़
25.	जनम जली (कहानी संग्रह)	राधाकांत शर्मा
26.	उमस (कहानी संग्रह)	देवेन्द्रकुमार मिश्र
27.	इच्छा मृत्यु (कहानी संग्रह)	देवेन्द्रकुमार मिश्र
28.	मौन ताड़ता सच (कहानी संग्रह)	द्वारका लाल गुप्त
29.	वाह रे हाथी (नाटक)	बालाजी तिवारी
30.	मेरा गांव होशियारपुर (एकांकी)	डॉ. आशा रावत
31.	खाओ और खाने दो (व्यंग्य)	डॉ. हरभजन सिंह 'हंसपाल'
32.	मेमसाब का दस्ताना (व्यंग्य)	शरदेन्दु
33.	शब्दों के संवाद (दोहा-संग्रह)	आचार्य भगवत दुबे
34.	जागे शब्द गरीब (दोहा-संग्रह)	दिनेश शुक्ल
35.	मौसम तनी गुलेल (गजल-संग्रह)	दिनेश शुक्ल
36.	आपकी राहों पर (गजल-संग्रह)	दर्शन लाड़
37.	मन-उपवन (गीत-संग्रह)	दर्शन लाड़
38.	मैं अभी मौजूद हूं (गजल-संग्रह)	अशोक वर्मा

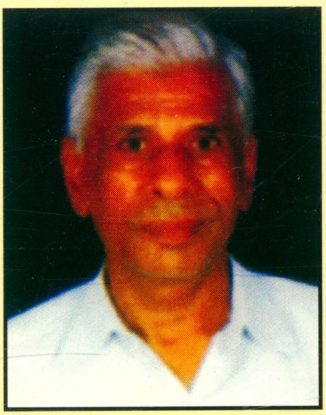

प्रोफेसर प्रकाश चन्द्र जैन

जन्म : 04.11.1945 वामौरकलां (चंदेरी के पास), शिवपुरी (म.प्र.)

शिक्षा : एम.ए. (भूगोल) -1967 जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर से प्रथम स्थान

अध्यापन : सन् 1967 से सन् 2007 तक टीकमगढ़, भिण्ड एवं छतरपुर के महाविद्यालयों में भूगोल के प्राध्यापक। एक दर्जन से अधिक राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों में भागीदारी। अनेक-शोध पत्र पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित।

लेखन : 1. विकिसित एवं विकासशील देशों का तुलनात्मक अध्ययन-ब्राजील एवं सं.रा. अमेरिका (म.प्र. हिन्दी ग्रंथ-अकादमी से प्रकाशित), 2. मध्यभारत के जैन तीर्थ, 3. संक्षिप्त जैन रामायण, 4. जैन वाङ्मय में तीर्थंकर एवं अन्य महापुरुष, 5. जैन वाङ्मय में भूगोल अनेकों महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद में श्री दशरथ जी जैन एडवोकेट, छतरपुर को सहयोग।

- विलुप्त हो रहे प्राचीन एवं अधुनातन मौलिक साहित्य को विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रतिबद्ध।
- पाठकों की रूचि का संस्कार एवं स्तर-निर्माण के लिए मार्गदर्शक ग्रंथ प्रस्तुति के लिए समर्पित।
- देशगत किंवा जातिगत आग्रहों एवं व्यामोहों से मुक्त रहकर विश्वजनीन शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा देने वाले चिंतन को प्रसारित करने के लिए संकल्पशील।
- स्वस्थ परम्परा और उदान्त आचार-व्यवहार की स्थापना के लिए एक शालीन सारस्वत प्रयास की ओर अग्रसर।